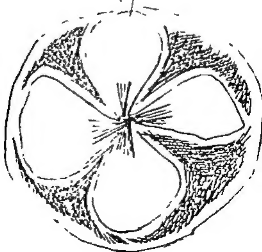
विपाशा

आशुतोष मुखर्जी



एक

नहीं, नारायणी सिर्फ चौंकी ही नहीं, उसे मानो जोरों का झटका लगा हो !

लोहे के विशालकाय गेट से, करीब बीस गज दूर'''लैंप-पोस्ट के नीचे खड़ा-खड़ा, वह आदमी'''लोहे के गेट के पार ''उस महल को घूर रहा था''' एकटक !

यूं देखने को तो सैकड़ों लोग टकटकी बांधे देखा करते हैं। शहर के इस इलाके में, खूबसूरत चहारदीवारी में घिरा हुआ, पूरे दो बीघे जमीन पर खड़ा ऐसा आलीशान महल। आदमी अगर गेट के बिल्कुल सीध में न खड़ा हो, तो उसकी निगाहें सबसे पहले सिर्फ दीवारें और दीवारों के पार पेड़ों की कतारों में ही उलझकर रह जाएगी। ऊंची-ऊंची दीवारों से सटे हुए कतार-दर-कतार ऊंचे-ऊंचे पेड़—मानो आकाश भेदकर, सिर ऊंचा किये खड़े हों। आम या जामुन के मामूली पेड़ों के बजाय काफी एहतियात और मेहनत से सवारे हुए पेड़ों की बहार ! पाम, बॉटल-पाम, विपिंग-विलो, झाऊ—दूर से, सबसे पहले, खूबसूरत दरख्तों की कतारें ही आंखों को खींचती हैं। उनकी दरारों से, दूधिया-सफेद महल की बस, एकाध झलक भर मिलती है।

वैसे यह जगह अपेक्षाकृत निर्जन और सुनसान है। शहर के शोरगुल से और हंगामों से दूर ! दिन के वक्त राह चलते अजनबी राहगीर, गेट के सामने ठिठक-कर एकाध पल के लिए उसकी खूबसूरती में खो जाते हैं—एक ओर हरे रंग की कालीन की तरह बिछी हुई कच्ची मुलायम घास का हरा-भरा लॉन, दूसरी तरफ आंखें जुड़ा जाने लायक खिला-खिला बाग ! शिल्पीसुलभ तन्मयता से पेड़-पौधों की काट-छांट में व्यस्त माली ! बीच में लाल मिट्टी की लम्बी-चौड़ी सड़क के आखिरी छोर पर संगमरमरी महल ! लाल मिट्टी की सुर्ख मखमली सड़क सीधे महल की संगमरमरी सीढ़ियों से जा मिली है; और वहां पूरे महल को गोलाकार समेटे हुए, दो अलग-अलग दिशाओं में घूम गयी है। उस हिस्से को देखकर लगता है, मानो सफेद दूधिया रंग के चारों ओर किसी ने लाल रंग की खूबसूरत धारियां

खींच दी हों। कद्रदान लोगों की निगाहें, सफेद और लाल रंगों के इस अद्भुत मिलन पर, अनायास ही ठिठक जाती हैं। देखने वाला अगर फुरसत में हो तो अनजाने में एकाध लंबी उसांस भरकर, उस महल में रहनेवाले चिर-सुखी लोगों के बारे में भी जलपना-कल्पना करने लगता है, जिन्हें प्रभु का इतना बड़ा आशीर्वाद मिला है। राहगीरों का आकर्षित होना, ठिठककर देखना, महल में रहने वालों के बारे में कल्पना करना—कहीं कुछ अस्वाभाविक भी नहीं लगता।

लेकिन यह सब तो दिन के वक्त संभव है। रात के सन्नाटे में, किसी लैंप-पोस्ट के नीचे खड़े-खड़े, महल को घूरना, खासा अजीब लगता है। देखनेवाले पर अनायास ही नजर पड़ जाती है।

जहाजनुमा गाड़ी मानो हवा में तैर रही हो ! वैसे नारायणी बाहर की तरफ देख भी नहीं रही थी। वह तो गाड़ी के एक कोने में, आराम से पीठ टिकाये बैठी हुई थी। उसके होठों की कोरों में, हंसी की एक महीन-सी रेखा, काफी देर से आंखमिचौनी खेल रही थी। गाड़ी में बैठते ही उसके होठों पर एक व्यंग्यभरी मुस्कान उभर आयी थी। उसके बगलवाले व्यक्ति को भी इसका अन्दाजा हो गया था, शायद इसीलिए वह अपने काम में जरा ज्यादा डूबा हुआ दिखाई दे रहा था। कम-से-कम आज उसकी यह तन्मयता, उसे कहीं से बनावटी भी नहीं लग रही थी। उसकी तन्मयता तोड़ने के लिए, नारायणी ने जोरदार ठहाका भी नहीं लगाया। हालांकि एकाध बार उसके मन में हंसने की तीखी चाह जरूर जागी थी।

गेट तक पहुंचते-पहुंचते गाड़ी की स्पीड कम हो आयी। सामने की सीट पर चमचमाते तमगे और पगड़ी में चुस्त-दुरुस्त बूढ़ा ड्राइवर, गुरु-गंभीर मुद्रा में गाड़ी चला रहा था। किसी कोमल संगीत की तरह उसने हॉर्न बजाकर, अपने आने की पूर्व सूचना दी। दूर से ही, गाड़ी देखकर, भारी-भरकम वर्दीधारी दरबान हड़बड़ा कर दौड़े और दोनों तरफ से गेट खोलकर, सलाम की मुद्रा में तनकर खड़े हो गये।

लेकिन गाड़ी गेट के अंदर दाखिल होने के पहले ही नारायणी बुरी तरह चौंक गयी। पल-भर के लिए उसके अंग-अंग में मानो भयंकर झटका लगा हो। उसकी बौखलाहट इतनी स्पष्ट थी कि फाइल में डूबे हुए बगलवाले व्यक्ति की तन्मयता भी टूट गयी। उसने कागजों से सर उठाकर, उसकी तरफ ईषत विस्मय और संदेह से देखा। खामोश आंखें, मानो इस बौखलाहट का जवाब मांग रही हों। थोड़ा ठहरकर उसने जवाबतलब की मुद्रा में सवाल किया, "क्या बात है ?"

"कुछ नहीं !" नारायणी ने गरदन घुमाकर, पीछेवाले कांच से, गेट के बाहर देखने की कोशिश की। लैंप-पोस्ट के नीचे, वह आदमी शायद अभी भी···उसी तरह खड़ा था। लेकिन बाहर सिर्फ गेट, और सामने का सुनसान रास्ता भर नजर आया। इसके अलावा चारों तरफ आदमकद ऊंचे-ऊंचे प्राचीर !

बगलवाले व्यक्ति का खटका अभी दूर नहीं हुआ था। उसका पीछे मुड़कर

देखना और फिर नीचे होकर बैठना उसकी आंखों से छिपा नहीं था। उसने दुबारा सवाल किया, "क्या देख रही हो? तबीयत तो नहीं खराब लग रही?"

"नहीं! भला तबीयत क्यों खराब होने लगी?" नारायणी फौरन संभल गयी। जबरन सहज दिखने की कोशिश में, वह एकदम से तनकर बैठ गयी और किंचित हंसने की भी कोशिश की। लैंप-पोस्ट के नीचे हठात जिस आदमी को देखा था, उसके बारे में सोच-सोचकर उनकी छाती अभी तक धड़क रही थी।

उसे जबरन हंसते देखकर, विपुलानंद की निगाहें दुबारा अपने कागज-पत्रों में गड़ गयीं। वे लोग घर के करीब आ गये, तब भी वह कागजों में खोया रहा। गाड़ी में बैठे-बैठे ही, उसने दो-चार लाइनें और घसीट डालीं। उसके बाद चमड़े की फाइल पीछे की तरफ डालकर, कलम बंद की और उतरने के लिए तैयार हो गया। मौका पाते ही उसने नारायणी पर दुबारा एक चोर निगाह डाली। गाड़ी अभी पोर्टिको में ठीक तरह रुकी भी नहीं, दोनों तरफ से दो बैरे गाड़ी का दरवाजा खोलने के लिए दौड़े आये।

लेकिन ''नारायणी ने जिसे देखा, वह क्या भ्रम था?

गेट के पार'''काफी दूर पर, जिस व्यक्ति को खड़े देखा था, वह मानो डेढ़ युगों का जाना-पहचाना चेहरा था। अच्छा सच ही, क्या वह आंखों का भ्रम था? या मन का? हां, बहुत मुमकिन है, भ्रम ही हुआ हो'''खासकर आज! लेकिन ऐसी अजीबोगरीब भूल आखिर कैसे संभव है? जो यादें पूरे डेढ़ युग की धूल भरी परतों तले दबकर निश्चिह्न हो चुकी हैं? पल भर का भ्रम हो सही'''भ्रम की दरारों में कोई व्यक्ति इस तरह बिलकुल आंखों के सामने आ खड़ा हो, भला यह कैसे संभव है? ऐसा भ्रम आखिर उसे हुआ ही क्यों?

सच ही क्या उसने लैंप-पोस्ट के नीचे किसी को खड़ा देखा था?

लौटते वक्त नारायणी के दिमाग में ढेर सारी चिंता-फिक्र और कई-कई चेहरों की भीड़ थी। पार्टी में पूरे समय टुकड़ा-टुकड़ा हंसी, कटी-कटी बातें, सौजन्य, विनय, प्रशंसा, हलके हंसी-मजाक, गिलासों की टकराहट, खाने की प्लेटें, दो-एक बढ़िया फिल्मों का जिक्र, ऐसी दो-एक बढ़िया किताबों की चर्चा, जो उसने न पढ़ी हों, दो-एक कारोबारी बातें, पति की अतिशय व्यस्तता का जिक्र—ऐसी ही छोटी-मोटी हजारहा बातें उसके दिमाग में मानो एक साथ खौल रही थीं! इनमें से कोई एक बात भी नारायणी की पकड़ में नहीं आ रही थी; कोई एक बात भी अपने से कटकर नहीं सोच पा रही थी। तमाम बातें ''तमाम चेहरे एकाकार होकर गडमड हो गये थे।

हालांकि लौटते वक्त काफी भला-भला लग रहा था। देह भी काफी हलकी-हलकी लग रही थी, लेकिन सर बहुत भारी हो आया था। शायद इसीलिए नारायणी जबरन सिर उठाने की कोशिश में एकाध बार हंस भी पड़ी। अजीब बात

है न···अंदर से विलकुल हलकी, लेकिन देह कैसी भारी-भारी-सी। अंत में हारकर उसने सिर उठाने की कोशिश भी छोड़ दी और अलस भाव से गुदगुदी सीट के सहारे पीठ और सिर टिकाकर, अपने को वेसहारा छोड़ दिया।

शायद इसीलिए वगलवाले व्यक्ति को खटका लगा था। उसने दो-चार वार उसकी तरफ मुड़कर देखा भी, एकाध वार पूछा भी—कहीं उसकी तवीयत तो खराव नहीं। वैसे नारायणी अपने को इतनी चतुर भी नहीं समझती थी कि उस इंसान की आंखों को धोखा दे सके। शायद इसीलिए उसकी हंसी की आड़ में थोड़ी वहुत परेशानी भी झलक उठी।

लेकिन, सचमुच, नारायणी को कुछ वुरा नहीं लग रहा था। वल्कि उसे काफी अच्छा लग रहा था। अपने ही अंदर कहीं कुछ नया-नया लग रहा था। आज वह जहां गयी थी, वहां भी नयेपन की ही सवसे ज्यादा कद्र होती है। कहीं कुछ नया करना, नया कहना, नया सोचना—अगर कुछ नया न भी हो, तो भी उस पर नयेपन की पर्त चढ़ा देना—वस कद्र वढ़ जाती है!

आज नारायणी भी कहीं कुछ नया दिखाने में कामयाव हुई थी। लोग एकवारगी झटका खा जाएं, ऐसी कोई नयी वात कर दिखाई थी उसने! वस, यह नया तमाशा दिखाते समय उसका दिमाग और दोनों पैर मानो वश में नहीं रहे, इसीलिए तो उसे और ज्यादा खुशी हो रही थी। यह वात विलकुल अलग है कि उसकी खुशी पर, वगलवाले व्यक्ति को ठीक-ठीक यकीन नहीं आया था। पार्टी में या गाड़ी में उसे यूं हंसते देखकर वह अंदर ही अंदर चकित हो उठा था। नारायनी को कहीं दुवारा हंसी का दौरा न पड़ जाए, शायद इसीलिए, गाड़ी में वैठते ही उसने अपनी आंखों के आगे फाइल खोल ली थी। कम से कम नारायणी को यही लगा था। हालांकि वह जानती है, उसका अंदाज गलत भी हो सकता है। ऐसे भी, सभी गाड़ियों में एकाध फाइल हमेशा ही पड़ी रहती है! यूं भी उसके पास एक-दो नहीं, पांच-छह गाड़ियां हैं और फाइलों की संख्या कितनी गुनी ज्यादा है इसका नारायणी को शायद अंदाजा भी नहीं! हां, क्लर्कों को जरूर मालूम है। वही इसका हिसाव-किताव रखते हैं। साहव कव, किस गाड़ी में वाहर जाएंगे और वाहर उन्हें कव किस फाइल की जरूरत हो सकती है, उन्हें यह भी मालूम है। वे लोग ठीक-ठीक फाइल यथास्थान रख देते हैं।

शुरू-शुरू में नारायणी को वहुत अचरज होता था। उसे समझ ही नहीं आता था कि सारा काम यूं मशीनवत सिलसिले में वंधा-वंधा, आखिर पूरा कैसे हो जाता है! लेकिन अव उसे विलकुल अचरज नहीं होता। इंसान आखिर कव तक अचरज कर सकता है? सालों से कामों का वही कमोवेश सिलसिला चलता रहे तो इसमें अचरज करने को आखिर वचता ही क्या है? एयर-कंडीशंड, लाइट-कंडीशंड···यानी ताप-लाइट कंडीशंड गाड़ियां—कहीं हलका-सा झटका भी न लगे,

इसके लिए ड्राइवरों के मंजे हुए हाथ, हर वक्त सजग रहते हैं।

वे लोग इस हिसाब से गाड़ी चलाते हैं, कि कहीं अचानक ब्रेक न लगाना पड़े। हिसाब में कहीं भूल-चूक हो जाए, तो घबराकर, सामने लगे आईने में, पिछली सीट पर आसीन मालिक का चेहरा देखने लगते हैं! काम में डूबे हुए मालिक के चेहरे पर कहीं कोई विरक्ति की छाया तो नहीं उभरी।

अस्तु, गाड़ी में बैठे-बैठे कागज-पत्र देखने-पढ़ने या दस्तखत करने में कहीं कोई असुविधा नहीं होती। बहुत सारे जरूरी काम गाड़ी में बैठे-बैठे ही निपट जाते हैं। यहां तक कि गाड़ी में बैठे-बैठे उसे एक के बाद एक चेकों पर दस्तखत करते हुए देखा है! मोटी रकमवाले चेक! उसके दस्तखत किये हुए ये चेक कभी वापस भी नहीं लौटते। वरना गाड़ी में दस्तखत करने का सवाल ही नहीं उठता।

इसके बावजूद, नारायणी आज हैरत में पड़ गयी थी। जैसे कोई बच्चा नया-नया चलना सीख रहा हो, अचानक किसी तेज रफ्तारवाले को देखकर एकदम से अचकचा जाए! नारायणी भी आज अचकचायी हुई-सी बगलवाले व्यक्ति की तरफ गौर से देख रही थी। हां, आज शाम की पार्टी में, गौर करने लायक ही कोई घटना घटी थी। नारायणी के मन में रह-रहकर यह सवाल उठ रहा था, जब उसके भीतर अहसासों की ऐसी तेज-तेज लहरें उठ रही हों, बगलवाले व्यक्ति के मन में भी ऐसा कुछ क्यों नहीं हो रहा? इतने सहज भाव से वह कागज-पत्र कैसे उलट-पलट रहा है?

आज पार्टी में नारायणी कुछ ज्यादा ही चहकती रही ''शायद कुछ ज्यादा ही हंसती रही। इस मामले में वह खुद ही काफी सजग थी। मिस्टर और मिसेज दत्त जो प्रस्ताव लेकर उसके पास आये थे, उसे सुनकर, बेभाव हंसने या बोलने के अलावा वह और कर भी क्या सकती थी? आज जो औरत मिसेज दत्त या दत्ता है, वक्त अगर मेहरबान होता तो वह मिसेज विपुलानंद भी बन सकती थी।

ऐसा होना कोई विचित्र बात भी नहीं थी। कहते हैं, बहुतों ने तो यही उम्मीद भी लगा रखी थी।'''मिसेज दत्ता मन ही मन क्या अभी तक वह दर्द पाले हुए है? नहीं, कुछ समझ नहीं आता। यहां किसी के भी चेहरे से उसके मन की बातें बिल्कुल पता नहीं चलतीं।

खैर, उन दोनों का अद्भुत प्रस्ताव सुनकर वह बेतहाशा हंस पड़ी थी। इससे पहले भी वह हंस-बोल रही थी। लेकिन उसकी हंसी ऐसी बेभाव नहीं थी, उसकी बातें भी खास मिसफिट नहीं लगी थीं! बल्कि उसके हंसने-बोलने से लोगों के चेहरे खिल जाते हैं! अन्य महिलाएं और शरीफ लोग, उससे कहीं ज्यादा हंस-बोल रहे थे। लेकिन उन लोगों की तुलना में, उसकी हंसी और बातें कहीं ज्यादा कीमती थीं। इसलिए नहीं कि वह विपुलानंद की बीवी है, इस सौभाग्य का रोब-

दाव तो खैर है ही। लेकिन इसके अलावा उसमें निजी खूवियां भी हैं। अपनी उन खूवियों के वारे में आजकल वह कुछ ज्यादा ही सजग हो उठी है। सालों से वह देख रही है, दुनियावालों की निगाहों में कम से कम इन खूवियों की वेहद कद्र है। यूं घरवालों की निगाहों में भी इसकी कद्र कुछ कम नहीं। लेकिन यह सब वहुत पहले की वात है···। अव वह वखूवी जान गयी है, अपनी इन खूवियों के दम पर, अपनी हंसी और वातों के जोर पर वह इंसान के···खास तौर पर मर्दों के सात-सात पर्दों के अंदर छिपे अंतरमहल के तमाम वंद खिड़की-दरवाजे वह अनायास ही खोल सकती है। किसी जमाने के पद्मापाड़ा की एक मामूली-सी लड़की नारायणी चक्रवर्ती, अपने इन्हीं गुणों की वदौलत आज वगल में वैठे इत्ते वड़े आदमी की वीवी है। मिसेज रीना वागची, लेडी वागची; मिसेज विपुलानंद!

लेकिन आज वह इतना ज्यादा हंस-वोल रही थी; इसलिए नहीं कि वह लोगों को खुश करना चाहती थी या मर्दों के अंतरमहल के खिड़की-दरवाजे खोलना चाहती थी; आज तो वस, उसकी जुवान से खुद-व-खुद ही वातें झर रही थीं; हंसी का दौरा पड़ रहा था! मुमकिन है, वह वातों की एकवारगी झड़ी लगा देती या उसकी हंसी और गहरा जाती, क्योंकि ऐसी मजेदार अर्जी पेश करते हुए, मिस्टर और मिसेज दत्ता, किसी प्रार्थी की तरह, यूं हाथ पसारे खड़े हो जाएंगे, इसकी उसने कल्पना तक नहीं की थी। इसीलिए नारायणी को घेरे हुए, महफिल काफी जम गयी थी। लेकिन अचानक इस वगलवाले व्यक्ति के साथ, वहां दूर से ही निगाहें मिल गयी थीं। मानो वह इसी मौके के इंतजार में था। उनकी निगाहें मिलते ही, सवसे नजरें वचाकर, अचानक उसके पति ने इशारा किया था। शायद वह उसे निषेध करना चाहता था! शरीफ, मर्यादित, रुचिसंपन्न निषेध!

वस्स! उसी पल से नारायणी ने लगातार अपनी हंसी, अपनी वातें पी जाने की कोशिश की!

लेकिन कोशिश करना और सफल होना एक वात नहीं! वातें किये विना, शायद रहा जा सकता है, लेकिन हंसी, महज चाहने भर से नहीं दव सकती। नारायणी ने सोचा था, वह गाड़ी में वैठकर जी भरकर हंस लेगी। वहुत दिनों का जमा हुआ अवरोध मानो आज हंसी वनकर पिघल आना चाहता हो। यहां तक कि अपने वगलवाले व्यक्ति की चिर-परिचित तन्मयता भी मानो हंसने लायक कोई तमाशा-सी जान पड़ी। वेशक, वह किसी जरूरी काम में उलझा हुआ था। उस व्यक्ति के लिए तो पूरी की पूरी दुनिया ही, मानो जरूरत की डोर में वंधी हुई थी। लेकिन नारायणी को तो यह सोच-सोचकर ताज्जुव हो रहा था कि थोड़ी देर के लिए अगर काम वंद ही कर दिया जाय, तो उस हादसे में वक्त दम तोड़ देगा या यह आदमी?

गाड़ी में भी उसे जवरन अपनी हंसी दवाने की कोशिश करनी पड़ रही थी।

उसकी बगल में जो शख्स बैठा था, उसकी गंभीरता की आड़ में ईषत् परेशानी और कौतूहल भी झांक रहा था।

ना! उसका ध्यान कागज-पत्र की तरफ बिलकुल नहीं था। शायद वह सोच रहा था कि वह जो इस कदर बहक गयी है, वह उस रंगीन पानी का असर है। गाड़ी का बूढ़ा ड्राइवर बंगाली था। कहीं कोई शर्मनाक बात हो जाए और उसकी नाक कटे, इसी डर से वह फाइल में खोया हुआ था। अपनी बे सिर-पैर की हंसी और बातों से उसे बुरी तरह परेशान कर डालने के ख्याल से, कई बार उसका ठहाका लगाने का भी मन हुआ। अभी वह बेहद गंभीर मुद्रा में फाइल उलट-पलट रहा है, लेकिन घर पहुंचकर, सबकी आड में, उसे कहने या सुनाने से बाज नहीं आएगा। निस्संदेह उससे जवाबतलब भी करेगा।

वैसे नारायणी को यह भी अंदाज लग चुका था, कि घर पहुंचकर उनका मालिक चाहे जो कहे या पूछे, लेकिन मन ही मन वह कहीं खुश भी हुआ है। लो, फिर हंसी आने लगी। उस शख्स को मालिक क्यों कह रही है? अग्निदेवता को साक्षी मानकर मंत्र पढ़कर उसका ब्याह हुआ था। वह उसकी ब्याहता बीवी है, कोई माल-असबाब नहीं! वह किसी क्षणिक अनुबंध या समझौते का सहारा लेकर भी नहीं आयी। फिर भी, इस शख्स के प्रसंग में अनायास ही उसके मालिक होने का ख्याल आने लगता है।'''नारायणी का ख्याल था कि आज वह व्यक्ति काफी खुश होगा, क्योंकि आज उसने सचमुच खुश कर देने लायक काम किया है। मानो वह कोई बहुत बड़े इम्तहान में पास हो गयी हो। मिसेज रीना बागची उर्फ लेडी बागची, अपने माहौल के आकाश में, किसी तारे की तरह सिर्फ टिमटिमा ही नहीं रही थी, पूनम के पूरे चांद की तरह, समूचे आकाश में छा गयी थी, लोगों के दिल में बेचैनी की लहरें उठाने में कामयाब हो गयी थी। यह सब उसे जानबूझकर या सायास नहीं करना पड़ा। सारा मामला, मानो नितांत सहज भाव से, खुद ही घट गया।

"'''शी इज वंडरफुल! अद्‌भुत है!"

किसी ने जुबान से कहा, किसी ने सिर्फ आंखों से! जुबान की तारीफ उसके कानों तक भी पहुंची है, आंखों की तारीफ भी उसने महसूस की है। औरतों की बात अलग है, लेकिन मर्दों की तारीफ में कहीं कोई बनावट नहीं थी। उस वक्त उसका मालिक कोनेवाली मेज पर मिस्टर सरखेल के आमने-सामने बैठे-बैठे, शायद किसी जरूरी बातचीत में मशगूल था। सुह, कैसी अंधी जरूरतों का पहाड़ उठाये फिरते हैं ये लोग! उठते-बैठते, नहाते-खाते भी, यह बोझ मानो कंधे से उतारना ही नहीं चाहता! वे लोग बातचीत में कुछ यूं मस्त हो गये थे कि सामने पड़े गिलास की भी सुध नहीं रही। गिलास करीब-करीब ज्यों के त्यों भरे हुए थे।

लेकिन उस एकाग्र तन्मयता के बावजूद, सरखेल की गरदन और निगाहें कई-

कई बार, पांच-छह मेज लांघकर इस ओर नारायणी की तरफ आ पड़ी। उसके बाद, उसने हलके-से मुस्कराकर, उसी तरह धीमी आवाज में उसके मालिक से कुछ कहा। उसके मालिक की भी हंसती हुई आंखें नारायणी की तरफ घूम गयीं। नारायणी ने सुना तो नहीं, लेकिन सरखेल ने क्या कहा होगा, इसका निःसंशय अनुमान कर सकती थी! ···उसने कहा होगा, "योर वाइफ इज इन हर वेस्ट टुनाइट! तुम्हारी बीवी आज बिल्कुल जानमारू लग रही है! खुशकिस्मत हो, यार।" हां, इसी तरह की कोई बात कही होगी।

नारायणी इस किस्म की हजारहा तारीफें पहले भी सुन चुकी थी। सुन-सुनकर उसके कान पक गये। लेकिन पहले और आज में कहीं कोई फर्क जरूर था।

आज नारायणी किसी बहुत बड़े इम्तहान में बिलकुल अनायास और अचानक पास हो गयी थी। चूंकि वह कामयाब हुई थी, इसलिए उस शख्स की निगाहें बार-बार उसके चेहरे पर टिक गयीं। कम से कम पांच-सात बार। सरखेल से जरूरी बातचीत की तन्मयता में बाधा पड़ी। उसके बाद ही, परीक्षार्थी का इतना आग्रह या जोश देखकर, शायद उसे कुछ शक भी होने लगा। लोगों से नजरें बचाकर, उसने उसे खामोश हो जाने का इशारा किया।

नारायणी ने फौरन गिलास नीचे रख दिया। उसका हंसना-बोलना भी थम गया। यह बात बिलकुल अलग है कि वह अपना हंसना-बोलना एकबारगी नहीं रोक पायी, लेकिन उसने कोशिश जरूर की। नहीं, उसकी अवमानना नहीं की। कम से कम उसने भरसक कोशिश की कि अपना राग-रंग बदल दे। लेकिन लेडी बागची उर्फ रीना बागची के अंदर छिपी हुई नारायणी नहीं बदलीं। अब उनके साथ उस पुरानी-धुरानी पद्मा नदी का कोई वास्ता नहीं। लेकिन जहां तक लेडी बागची या रीना बागची का सवाल है, उसने अपने पति-परमेश्वर की अनकही बातों का इशारा भी, कभी नामंजूर करने की हिम्मत नहीं की—यह तो खैर, बिलकुल स्पष्ट इशारा था।

नारायणी का ख्याल था, गाड़ी में कुछ बातें होंगी, उसकी खिंचाई होगी। लेकिन उसका ख्याल गलत साबित हुआ। काश, उसमें थोड़ी-सी भी अक्ल होती। यहां, सामने की सीट पर, ड्राइवर भी तो मौजूद था! हैरत है! ये लोग दूसरों की आंख-कान की तरफ भी, ऐसी सजग आंख-कान लगाये चल सकते हैं! वाकई यह बहुत बड़ा गुण है। नारायणी चाहे खुद गुणवती न हो, लेकिन गुणों की क़द्र जरूर करती है। वैसे गुणों का कहीं कोई अंत नहीं। यह आदमी मानो गुणों का साक्षात् पहाड़ हो!

लेकिन नहीं, नारायणी झूठा इल्जाम नहीं लगायेगी। आज भी, इस इम्तहान में पास होने के लिए उससे किसी ने कहा नहीं था। बैरा जब ट्रे लेकर आया तो अपने पूरे होशो-हवास में उसने खाली गिलास रखकर एक और गिलास उठा

लिया था। परीक्षा देने की ख्वाहिश अचानक उसी के दिमाग में उभरी थी। सिर्फ आज ही क्यों, किसी दिन, किसी इम्तहान में बैठने या पास करने के लिए, किसी ने उस पर जोर-जुल्म नहीं किया।

फिर भी नारायणी को लगता है, मानो पिछले कई युगों से वह एक के बाद एक, सिर्फ परीक्षा ही देती आयी है। इस घर में दाखिले की परीक्षा, यहां दिन गुजारने की परीक्षा, करीब आने के लिए कितनी सारी परीक्षाएं। लेकिन मंजिल फिर भी दूर की दूर! ऐसा ही तो होता है। मंजिल खुद चलकर कब पास आती है? वह तो जहां की तहां खड़ी रहती है—अचल! अडिग! वह खुद हमारे करीब नहीं आती, हमें खुद चलकर जाना पड़ता है। नारायणी भी आगे बढ़ रही है! मंजिल को पाने के लिए, उसकी अविराम तलाश बहुत जरूरी है। उसी तरह इस व्यक्ति की हलकी-सी इच्छा का भी उस पर जबरदस्त असर होता है। उसका हलका-सा इशारा भर ही काफी है, सैकड़ों फरमाबरदार लोग, मशीन की तरह उठते-बैठते, घूमते-फिरते उसका हुक्म बजा लाते हैं। नारायणी के मामले में भी खास कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ। उससे भी कुछ कहने की जरूरत नहीं हुई। पति के हलके-से इशारे भर का, उस पर गहरा असर हुआ है; होता है। अपने मन के तकाजे पर, वह खुद ही इम्तहान दे डालती है, पास भी हो जाती है।

लेकिन आज का इम्तहान काफी मुश्किल था! इसके लिए वह खुद भी तैयार नहीं थी! अन्य दिनों की तरह आज भी, अपने कमरे में बैठे-बैठे उसने साज-शृंगार में काफी वक्त लगाया। उसके बाद हमेशा की तरह ही घर के मालिक के साथ पार्टी में आयी। महीने में उसे ऐसी कई पार्टियों में शरीक होना पड़ता है। हमेशा की तरह आज भी बातचीत, परिचय, बहसें, हंसी-ठहाकों का दौर चल रहा था। तमगे लटकाये बैरे घूम-घूमकर ड्रिंक्स सर्व करते रहे! अधिकांश औरतों के हाथों में सॉफ्ट ड्रिंक के गिलास थे।

सुदूर किसी मेज से मिस्टर और मिसेज दत्ता ने किसी खास इरादे से, नारायणी पर बिलकुल अचानक हमला किया। उन दोनों की गिलासों में खालिस रंगीन पानी! खैर, पीने-पिलाने में उन दोनों का खासा नाम भी था। नारायणी यह भी सुन चुकी है कि मिसेज दत्ता का यह सुरा-प्रेम भी किसी हताशा और दिल के दर्द का नतीजा है! हां, यह किस्सा सुनाते हुए मिसेज कमला सक्सेना के चेहरे पर एक व्यंग्यभरा कटाक्ष उभर आया था।

उन्होंने ही बताया, मिस्टर दत्ता के प्रति मिसेज दत्ता की कृतज्ञता का कोई अंत नहीं। शराब की नदी बहाकर, बीवी के दिल के रेगिस्तान का आत्मघाती उत्ताप, उन्होंने काफी कुछ दूर कर दिया है। इसी कृतज्ञतावश उनकी बीवी, मिस्टर दत्ता के साथ अब काया-छाया बनी घूमती हैं। दोनों यूं सटे-सटे फिरते हैं कि उनके बीच शायद दस हाथ का फासला भी बहुत कम दिखाई देता है।

अब तक नारायणी ने सॉफ्ट ड्रिंक के अलावा और किसी तरह की शराब होठों से नहीं लगायी थी ! वह शराब पियेगी उसने कभी सोचा भी नहीं था। मिस्टर और मिसेज दत्ता अपनी मेज पर किसी गहरी बातचीत में मगन थे। वे दोनों हंसते हुए साथ-साथ उठ खड़े हुए और अपने-अपने हाथों में गिलास पकड़े हुए वे लड़-खड़ाते कदमों से आगे बढ़े। नारायणी के आगे उन्होंने एक अनोखा प्रस्ताव रखा और सक्रिय सहयोग और अनुग्रह की प्रार्थना की।

हां, वाकई अनोखा प्रस्ताव था। बाकायदा हैरतअंगेज ! अचरज में डालने-वाला।

आजकल देश के दुर्दिन की फिक्र में, दत्त दंपति की छाती मानो दर्द से छलनी हुई जा रही है और अब यह यातना बरदाश्त-बाहर हो गयी है। एक तरफ पड़ोसी राष्ट्र की लाल-लाल आंखें, मानो किसी भी पल टूट पड़ेंगे ! खैर, जहां-तहां हमले भी शुरू हो गये हैं, दूसरी तरफ समूचे देश में मोहताजी और अकाल का हाहाकर! हथियार नहीं, सरंजाम नहीं, कपड़ा नहीं, खाना नहीं। इस दुर्दिन में देश-रक्षा का तकाजा लिये, जाने कितने-कितने प्रतिष्ठान, कितनी गर्मजोशी से आगे बढ़ आये थे; वे लोग भी किसी से कम नहीं। अतः वे लोग भी पीछे नहीं रहेंगे। वे भी नया कुछ करना चाहते हैं ! बाकी लोग जो कर रहे हैं, वे तो सड़ी-गली पुरानी लीक को दोहरा रहे हैं।

देश की सहायता के लिए उन लोगों ने एक ऐसी राह खोज निकाली है, जिसे देखकर लोग दंग रह जाएंगे। वे लोग एक फिल्म बनायेंगे ! खुद ही आपस में सलाह करके, कहानी तय करेंगे, खुद ही एक्टिंग भी करेंगे—नायक-नायिका से लेकर नौकर-नौकरानी की भूमिका भी खुद ही निभायेंगे। कोई बाहरी आर्टिस्ट चाहे वह कितना भी मशहूर हो, अपनी फिल्म में नहीं लेंगे। बाहर से सिर्फ किसी मशहूर डाइरेक्टर को चुन लेंगे, जो उनके नेक इरादे सुनकर एकदम खुशी के मारे उछल पड़ेगा और बिना रुपये-पैसे लिये, मुफ्त ही उनकी फिल्म डाइरेक्ट करने का जिम्मा ले लेगा। इसके अलावा वे कुछ बाहरी तकनीकी लोगों को भी अपनी फिल्म में शामिल करेंगे, जो बिना कुछ लिये, उनकी फिल्म पूरी कर दें। स्टूडियो तो खैर, मुफ्त मिल ही जायेगा। उनका नेक उद्देश्य सुनकर, हर कोई मदद करने को आगे बढ़ आयेगा। लेकिन फिर भी, एक ऐसी फिल्म बनाने में, जिसे देखकर सब लोग दांतों तले उंगली दबायें, करीब दो-तीन लाख रुपये तो जरूर लगेंगे। वैसे खर्च में किसी तरह की कंजूसी करके, वे लोग अपनी शानदार फिल्म बिगाड़ने को राजी नहीं ! शहर में तहलका मच जायेगा कि देश की सहायता के लिए, महानगर के तमाम एलीट और मैगनेट अमीरों ने ऐसा आश्चर्यजनक काम कर दिखाया है ! इस मामले में अगर पहले से ही थोड़ी पब्लिसिटी हो जाए, तो सारा हिंदुस्तान, यहां तक कि दुनिया के लोग अधीर मन से इस फिल्म के रिलीज होने

के दिन गिनेंगे। अगर उनकी फिल्म बंगला में 'हिट' हो गयी, तो वे उसे हिंदी में भी बनायेंगे। उस वक्त तो रुपयों की भी कोई कमी नहीं होगी। उसके बाद वह फिल्म विदेशों में भी भेजी जायेगी। खुद अपनी सरकार ही सारा इंतजाम कर देगी। अरे, भई, डॉलर-डॉलर रुपये आने की ऐसी अछोर नहर सामने हो, तो भला वे नाक-कान में तेल डाले सोते रहेंगे? किसी को धर-पकड़कर, इस फिल्म का मनोरंजन कर भी माफ करा लिया जाएगा। सिर्फ एक फिल्म बनाकर करोड़ों रुपये का मुनाफा हो सकता है।

गिलास का रंगीन पानी, अपने गले में उड़ेलते हुए, मिसेज डट्टा ने अपने पति को बीच में डपट दिया, "हो सकता है, ऐसा क्यों कहते हो? यह कहो कि करोड़ों-करोड़ रुपये उठ आयेंगे!—श्योर एंड सर्टेन! यकीन उठ आयेंगे।"

मिस्टर डट्टा ने फौरन अपनी भूल सुधारते हुए कहा "येस! श्योर एंड सर्टेन! रुपयों की बिलकुल झड़ी लग जाएगी, इसमें कोई शक नहीं!"

लेकिन लेडी बागची से वे क्या चाहते हैं?

नहीं, लेडी बागची के पास वे दो-तीन लाख रुपयों जैसी मामूली प्रत्याशा लेकर नहीं आये। इतनी छोटी-मोटी रकम तो हाथ झाड़ने भर से इकट्ठी हो सकती है। लेकिन लेडी बागची अगर मेहरबान हुईं, तो वे इससे कहीं ज्यादा ही दे डालेंगी। मिस्टर डाटा प्रशस्ति-गायन की कला में खासे निपुण थे, रुपये के अलावा उन लोगों को उनसे और क्या उम्मीद हो सकती है, यह बात क्या लेडी बागची नहीं समझती? हाउ एबसर्ड! हां, हंसी आती है! उन्होंने आईना देखना क्या सचमुच छोड़ दिया है? खैर, यहां भी इधर-उधर कई आईने टंगे हैं, लेडी बागची क्या बराए-मेहरबानी, एक बार उस आदमकद शीशे के सामने खड़ी होंगी?

अस्तु, नायिका की भूमिका निभाने की जिम्मेदारी उन्हें लेनी ही होगी। देश के संकट का ख्याल करके यह महान जिम्मेदारी उन्हें निभानी ही होगी! बस, वे राजी हो जाएं, तो उनका संकल्प रुपये में बारह आने सफल! नहीं, नहीं, मिस्टर डाटा किसी तरह का उज्र या एतराज सुनने को राजी नहीं, काफी दिनों की जल्पना-कल्पना और सलाह-मशविरे के बाद वे उनके पास यह प्रस्ताव लेकर आये हैं! उनकी यह सूझ जिसने भी सुनी, खुशी से उछल पड़ा, 'अगर आप यह काम कर सकते हैं, तो आज ही कर डालिए, कल पर हरगिज न टालें।' अतः इतना-सा अनुग्रह लेडी साहिबा को करना ही होगा। लेडी बागची के रहते, नायिका का मुख्य भूमिका के लिए किसी और की कल्पना भी सरासर बेवकूफी होगी।

नारायणी पहले तो सकपका गयी, उसके बाद हैरत से गूंगी हो आयी और फिर झेंप गयी। अचानक उसने जोर का ठहाका लगाया। उसकी उस हंसी के दौरे पर सब के सब एकबारगी अचकचा गये। जो लोग दूर बैठे थे, वे पास आ

आकर्षण को और रंगीन बना गया। काफी देर से, बहुतों की उत्सुक निगाहें उन पर लगी हुई थीं। बहुत से लोग हंसते-हंसते अपनी-अपनी मेज से उठकर, मिस्टर डाटा की खुशी में हिस्सा बंटाने चले आये।

आज की इस घटना का पूरा-पूरा श्रेय मिस्टर डाटा को जाता था। लेडी बागची की यह खामख्याली उनके लिए मानो कोई अनोखा पुरस्कार थी।

पूरी घटना को लेकर काफी हंसी-मजाक भी चलता रहा। समूचे हाल में तरल खुशी की सरगर्मी फैल गयी। जिन औरतों को इस रंगीन पानी का खास शौक भी नहीं था, लोगों की जोर-जबरदस्ती में पड़कर लेडी बागची के सम्मान में उन्हें भी अपने-अपने गिलास बदलने पड़े। उनकी उत्साहित आवाजों पर करीब आधे दर्जन बैरे, हाथों में ट्रे संभाले दौड़े आये। कुल मिलाकर काफी नयनाभिराम दृश्य था। इस दृश्य की केंद्र-बिंदु थी—नारायणी। वह हंस रही थी। एक ही घूंट में पूरा गिलास खाली करके मानो वह किसी मुश्किल परीक्षा में सफल हुई हो! उसका गिलास कब दुबारा बदल दिया गया, किसने सोडा मिलाया, उसको इसका भी होश नहीं रहा। उसने आपत्ति भी नहीं की। वह तो सिर्फ ठहाके पर ठहाके लगाये जा रही थी। मानो कोई मजेदार अजूबा हुआ हो। अपने इर्द-गिर्द की भीड़ को वह मिस्टर और मिसेज डाटा का अजीबोगरीब प्रस्ताव सुना-सुनाकर, जोर-जोर के ठहाके लगाने लगी। अब उसे फिल्म में भी ऐक्टिंग करनी होगी! नायिका बनेगी—हाउ फनी! उसकी बातें सुन-सुनकर समूची भीड़ भी उसके ठहाकों में साथ देती रही और सबने सर्व-सम्मति से इस प्रस्ताव का समर्थन किया। नारायणी की नजरें रह-रहकर, कई मेजों के पार उस खास मेज की तरफ जाकर ठहर गयीं।

विपुलानंद भी वहीं से मुड़-मुड़कर अपनी बीवी की तरफ देखते हुए मुस्कराये जा रहा था। अभी थोड़ी देर पहले मिस्टर सरखेल ने ही उस 'चार्मिंग लेडी' की तरफ उसका ध्यान आकर्षित किया था। मिस्टर डाटा का प्रस्ताव या परिकल्पना, अभी तक उसके कानों तक नहीं पहुंची थी। उसने सीधे-सीधे नारायणी की आंखों में झांका, नारायणी के हाथों में गिलास देखकर, उसकी निगाहें कुछेक पलों के लिए उसके चेहरे पर ठिठक गयीं। उसके देखते ही देखते, नारायणी ने दूसरा गिलास भी खाली कर डाला। विपुलानंद की निगाहें दुबारा उसके चेहरे पर गड़ गयीं। सबसे नजरें बचाकर उसने नारायणी को कुछ इशारा भी किया। नारायणी का लालभभूका चेहरा देखकर,उसे मना करना जरूरी हो गया था। उसने नारायणी को इशारे-इशारे में पीने से रोक दिया।

नारायणी उसका हलका-सा इशारा भी बखूबी समझ गयी। उसका सिर चाहे जितना चकरा रहा हो, वह चाहे जितने नशे में हो, लेकिन अपने पति-परमेश्वर का इशारा समझने में उसे एक पल भी नहीं लगा। इस बार जब लोग उसका गिलास बदलने को आगे बढ़े, उसने सिर हिलाकर मना कर दिया—'अब, बस'!

नारायणी कभी उनके निषेध के खिलाफ नहीं जा सकती। उसके निषेध के बारे में सही-सही अंदाजा न लगा पाने के कारण, उसने सहमकर अपनी हंसी और बातों पर भी हलकी-सी रोक लगाने की कोशिश की। लेकिन अनजाने में ही, रह-रहकर उसे ठहाकों का मानो दौरा पड़ रहा था, बातों की लहर उमड़ पड़ती थी। जिन लोगों में वह घिरी हुई थी, वे लोग आसानी से उसका पीछा छोड़ने वाले नहीं थे। उनकी आरजू-मिन्नतों का दौर उसी तरह जारी था, यह देख-देखकर नारायणी और हंसे जा रही थी, और-और चहकती जा रही थी। ठीक उसी वक्त उसकी निगाहें दुबारा उस मेज से जा टकरायीं। एक जोड़ी निगाहें उसे घूर रही थीं। हालांकि इस बार उन निगाहों में किसी तरह का निषेध या इशारा नहीं था, लेकिन फिर भी नारायणी ने बेहद सहज भाव से अपने को संयत कर लिया। अपने पर कम से कम काबू तो जरूर पा लिया।

इसीलिए उसने सोचा था गाड़ी में बैठते ही वह जी भरकर हंस-बोलकर जरा हलकी हो लेगी! अभी भी उसके अंदर ढेर सारी हंसी और बातों का पहाड़ जमा हुआ है। लेकिन जी खोलकर हंसने-बोलने का मौका ही नहीं आया। गाड़ी में बैठते ही बगलवाले व्यक्ति ने झटपट अपने आगे फाइल खोल ली। लेकिन उसकी तन्मयता में छिपी हुई हैरानी, उसकी नजरों से छिपी नहीं रही। आज जिस इम्तहान में वह अनायास सफल हो गयी है, उसकी किसी प्रगल्भ प्रतिक्रिया की आशंका से, उस आदमी के चेहरे पर एकाग्र गंभीरता की छाया उतर आयी थी। मानो वे फाइलें अगर उसी वक्त न निपटायी गयीं तो कयामत आ जाएगी! उसका चेहरा देख-देखकर नारायणी को फिर हंसी आने लगी।

किसी तरह घर आ जाए और वह अपने कमरे में पहुंच जाए, तो उसकी जान बचे। अपने कमरे में अकेले बैठकर अगर वह थोड़ी देर जी खोलकर हंस ले तो उसकी जान में जान आये! हंसी दबाते-दबाते, उसके सीने में भयंकर दर्द होने लगा था। उसका ऐसा बुरा हाल शायद ही कभी हुआ हो।

लेकिन मकान के गेट तक पहुंचते-न-पहुंचते वह आकस्मिक धक्का!

लैम्प-पोस्ट के नीचे, नारायणी ने किसको खड़े देखा था? उसने सच ही किसी को देखा था या उसे भ्रम हुआ था?

उसे खुद ही अपने पर शक होने लगा। जो चीज उसके पेट में पड़ी है, कहीं यह उसी का असर तो नहीं?

खैर, उसने चाहे सही देखा हो या गलत, लेकिन हूबहू वही चेहरा! मानो उसने अपने नंदंदा को ही देखा हो। उसी तरह लंबे-ढंग; दुबले-पतले। पहले वे बेहद उजली-धुली, लेकिन खुरदुरी धोती पहनते थे और बदन पर मोटी-सी चादर लपेटे रहते थे। आज उनके कपड़े काफी बदरंग और मैले दिखे थे। बस, इतना ही फर्क था। पहले—यानी सोलह साल पहले तभी तक कच्चे-पक्के बालों की लंबी

दाढ़ी ! वैसे दाढ़ी में कच्चे यानी काले वाल ही अधिक थे, वस, ऊपर-ऊपर ही कहीं-कहीं एकाध पके वाल भी नजर आते थे ! लेकिन आज लैंप-पोस्ट के नीचे जो आदमी खड़ा था, उसकी दाढ़ी तो रेशम जैसी बुर्राक-सफेद थी ! ···खैर, इतने साल गुजर गये, यह फर्क तो आना ही था ! वही कोटर में धंसी हुई एक जोड़ी जीवंत आंखें ! नुकीली नाक, हंसमुख चेहरा—भला उन्हें पहचानने में नारायणी भूल कर सकती है ? लेकिन···अगर कोई खास वजह न होती, तो वह आदमी भला वहां क्यों खड़ा होता ? उससे पल भर को नजरें मिलते ही, उसने मानो पुरानी पहचान याद दिलाने की कोशिश की हो ! हालांकि उन दोनों ने एक-दूसरे की शायद झलक भर ही देखी थी, लेकिन नारायणी को यही महसूस हुआ था।

लेकिन ऐसा भला कैसे संभव है ? उनकी गाड़ी तो रुकी नहीं थी ! इसके अलावा, रात के अंधेरे में, किसी की सूरत-शक्ल इससे वेहतर भला क्या दिखाई देती ? नहीं, नारायणी को धोखा ही हुआ होगा ! आज वह जितना चढ़ाकर लौटी है, ऐसी गलतफहमी सरासर संभव है ! गाड़ी से उतरते हुए, उसे अपना दिमाग वेहद खाली-खाली लग रहा था, गले में अजव-सी उवकाई ! पता नहीं, किसे देखकर, क्या समझ लिया !

"तुम क्या किसी का इंतजार कर रही हो ?"

नारायणी अचकचा गयी। अंदर ही अंदर कहीं वह वेतरह परेशान भी हो उठी थी ! गाड़ी से उतरने के वाद भी, वह मुड़-मुड़कर, सुदूर गेट की तरफ देख रही थी। "नहीं, मुझे भला किसका इंतजार होगा ?"

वह हड़वड़ाती हुई सीढ़ियों की तरफ वढ़ी। विपुलानंद ने आगे वढ़कर उसके कंधों को सहारा दिया।

सीढ़ियां पार करके, वे दोनों साथ-साथ चलते हुए वरामदे में आये। यहां कंधे पर हाथ रखकर चलने की रीति, इतनी चिर-परिचित है कि इस घर के नौकर-चाकरों की निगाहों में भी कहीं कुछ नहीं खटकता। वे लोग जान गये हैं कि दौलतमंद अमीरों के रख-रखाव का यह खास-अंदाज है। अमीर लोग सिर्फ अपनी वीवी के ही कंधे पर नहीं, औरों की वीवियों के कंधों पर भी हाथ रखकर चलते हैं। उनकी आंखें इस दृश्य की अभ्यस्त हो चुकी हैं। लेकिन वरामदे तक पहुंचकर भी आज उसके मालिक ने उसके कंधे से हाथ नहीं हटाया। उसी तरह उसे वांहों में घेरे हुए, वह सीढ़ी के किनारेवाली लिफ्ट में दाखिल हुआ ! हालांकि एक लिफ्टमैन वहां हमेशा मौजूद रहता है, लेकिन आने-जानेवाले हमेशा खुद ही लिफ्ट चलाकर ऊपर जाते हैं। लिफ्टमैन दूर खड़ा-खड़ा, वस, देखता रहता है। किसी अजनवी मेहमान के आने पर ही उसकी जरूरत पड़ती है !

लिफ्ट दूसरे मंजिले के वरामदे के सामने आ रुकी। वे लोग वाहर निकल आये। विपुलानंद का एक हाथ अभी भी नारायणी के कंधे पर पड़ा हुआ था।

नारायणी को फिर हंसी आने लगी। कंधे पर हाथ रखकर चलना, अंतरंगता की निशानी है, लेकिन वह बखूबी समझ रही थी कि इस वक्त वह उसको महज सहारा देना चाहता था। यानी अपनी इज्जत बचाने के लिए वह उसे सहारा दिये चल रहा था। पता नहीं कैसे उसे गलतफहमी हो गयी थी कि आज नारायणी के पैर उसके वश में नहीं हैं। लेकिन नहीं, नारायणी हंसेगी नहीं! यूं हंसने से उस आदमी का संदेह और पक्का हो जायेगा। अब वह अपने कमरे में पहुंचकर अकेले में जी खोलकर हंस लेगी। शायद तभी उसकी जान में जान आयेगी।

दो

'''हंसी के बजाय रुलाई दबाना शायद ज्यादा आसान है। रोने के लिए एकांत की जरूरत होती है। हंसी तो न जगह देखती है, न वक्त, बस, एकबारगी उमड़ पड़ती है। नारायणी की हंसी तो मानो होंठों की दरारों और आंखों की कोरों से छिटककर, बाहर उमड़ पड़ने का रास्ता ढूंढ रही हो। गंभीरता की छड़ी दिखाकर, हंसी को दबाये रखना अब मुश्किल हो आया था। अपने हाथों से लिफ्ट स्टार्ट करने के बाद, एक जोड़ी संदेहभरी निगाहें उसके चेहरे पर दुबारा गड़ गयीं। ठीक उसी वक्त उसकी हंसी बिलकुल गले-गले तक उफन आयी। उसने बांहों से, उसके कंधे को तो घेर ही रखा है, अगर मौका मिलता, तो वह आदमी उसका चेहरा अपनी तरफ घुमाकर, उसे एक बार अच्छी तरह देख भी लेता। लेकिन इससे पहले ही लिफ्ट की चढ़ाई खत्म! सामने अर्ध-चंद्र के आकार का विशाल बरामदा!

इस तरफ के किसी कमरे में राजा सोया होगा। महल का वह हिस्सा एक तरह से राजा का ही है! बड़े-बड़े तीन हॉल-कमरे—संलग्न बाथरूम! एक कमरा राजा के सोने के लिए, दूसरा पढ़ने और तस्वीरें देखने के लिए, तीसरा बैठने के लिए! इस वक्त वह उन्हीं किसी कमरे में होगा। उसके भी दिन-रात का एक-एक लम्हा घड़ी के कांटों से बंधा हुआ है। हां, उसके पिता ने सिर्फ अपना ही नहीं, अपने बेटे का वक्त भी, टुकड़ों में बांध दिया है। उसे कब खाना है, कब पढ़ना है, कब सोना या जागना है, कब खेलना या घूमने जाना है, कब बातें करना है—सब कुछ घड़ी के कांटों के इशारे पर! दरअसल, ये अमीर लोग वक्त के बादशाह हैं या गुलाम, यह अंदाज लगाना मुश्किल है। राजा की उम्र आज भले ही कुल छह साल की हो, लेकिन कल वह भी एक रईस खानदान का कोई रईस

शाहजादा बनेगा, यानी वह भी बड़ा आदमी कहलायेगा। उसकी तैयारी में कहीं कोई लापरवाही नहीं।

लेकिन आज नारायणी ने घड़ी पर भी निगाह नहीं डाली। राजा चाहे जिस भी कमरे में हो, गब्बू तो उसकी ड्यूटी में होगा ही! काया-छाया हमेशा संग-संग ही रहती हैं! छह साल के राजा के साथ, छत्तीस साल का गब्बू भी हमेशा काया-छाया की तरह ही लगा रहता है। जाहिर है कि काया के मुकाबले उसकी छाया हमेशा बड़ी होती है।

लेकिन गब्बू को कभी भूले से, मजाक-मजाक में भी राजा की छाया कह दिया जाए, तो शायद यहां के लोग अचरज में पड़ जाएं या उनकी इज्जत में बट्टा लग जाए। सबसे ज्यादा अवाक् होगा, उसकी बगलवाला व्यक्ति!...इस वक्त वह उसकी अगल-बगल चलने की बजाय, थोड़ा आगे-आगे ही चलने की कोशिश कर रहा था। नारायणी जाने किस सोच में डूबी हुई थी!—काया-छाया की उपमा सुनकर, वह व्यक्ति उसकी तरफ शायद हंसती हुई आंखों से ही देखेगा, लेकिन उसकी नजरों में मौन भर्त्सना की छुअन भी होगी। उसकी घूरती हुई आंखों में एक अजीब-सी विरक्ति होगी—इस किस्म की हलकी बातों की भी एक सीमा होती है!

खैर, अभी ये सब बातें जाने दें! अगर इस वक्त कहीं गब्बू अकेला मिल जाए तो काम बने। वह उसी से कहेगी कि भागकर जरा देख आये, लैंप-पोस्ट के नीचे कौन खड़ा है या कोई वहां है भी या नहीं। हां, मुमकिन है, उसे सचमुच गलतफहमी ही हुई हो। अछोर आकाश जैसे उसमें भी अनगिनत बदलाव आये हैं। अगर कभी वह अपने ही हाथ-पैर न पहचान पाये, तो भी उसे हैरत नहीं होगी! एक-दो दिनों से नहीं, लगातार बारह सालों से वह इस परिवर्तन के समुद्र में बेभाव बही जा रही है। सालों से ऊब-डूब रही है! अब तो बिलकुल डूब ही गयी है। आभिजात्य के तेज बहाव में, जाने किस सार्थकता की तलाश में वह तिनके-सी बहती जा रही है। वह जो असली नारायणी थी, उसका बूंद भर भी निशान बाकी नहीं बचा। ना, अब तो वह मन भी गुम हो चुका है।

लेकिन साथवाला व्यक्ति अभी तक साथ-साथ ही चल रहा था। उसे छोड़-कर वह अपने कमरे की तरफ नहीं मुड़ा। नारायणी जब तक अपने कमरे तक नहीं पहुंच जाती, शायद वह निश्चित नहीं हो सकता! अगर घर के नौकर-चाकर लेडी साहिबा की यह अशोभन ताक-झांक देखेंगे, तो इस शाही दौलतखाने की इज्जत में बट्टा लग जाएगा। अतः गब्बू को बाहर भेजने का मौका नहीं मिला। चलो, अच्छा ही हुआ! बुद्धू गब्बू भी शायद अचरज से मुंह बाए उसकी तरफ देखने लगता। उसकी मालकिन को पता नहीं ऐसा क्या दिख गया कि वह इतने गहरे सोच-विचार में डूब गयी है! लाइटपोस्ट के नीचे उसने पता नहीं किसको देखा था!

दूसरी मंजिल पर सामनेवाले तीनों बड़े-बड़े कमरे नारायणी के हैं! हां, राजा की तरह, उसके नितांत निजी कमरे! बेडरूम, ड्राइंग-रूम और तीसरा कमरा गाने-बजाने और पढ़ने के लिए! गोल घेरेवाले बरामदे के उस छोर पर उसी तरह के तीन बड़े-बड़े कमरे घर के मालिक के नाम! दूसरे मंजिले के कमरे मियां-बीवी में इसी तरह बंटे हुए। कभी-कभी उसे यह जानने का बेतरह मन होता कि उसके अगर एकाध बच्चे और हो जाएं, तो कमरों का दुबारा बंटवारा कैसे किया जाएगा! वैसे तीसरे मंजिले पर भी इतने ही सारे कमरे हैं और सबके सब खाली ही पड़े हैं! खाली होने के बावजूद पूरी तरह सजे-सजाये…बिलकुल अप-टु-डेट और आधुनिक फर्नीचरों से लैस! कोई खास मेहमान या नाते-रिश्तेदार आता है, तो उसे इन्हीं कमरों में ठहराया जाता है!

…एकाध बच्चा और हो जाता तो मुमकिन है, तीसरी मंजिल के कमरे राजा की दखल में चले जाते। मेहमानों और नाते-रिश्तेदारों के लिए, आंगन के ही अहाते में आउट-हाउस या गेस्ट-हाउस तो है ही! उस मकान में हमेशा ताला बंद रहता है! पिछले बारह सालों में बारह बार भी वह मकान खोला गया हो, ऐसा याद नहीं पड़ता। छोटे-मोटे परिचित तो खैर लोहे का गेट लांघकर अंदर आने की भी जुर्रत नहीं कर सकते।

वैसे भी अब और बाल-बच्चों की जरूरत नहीं। राजा थोड़ा और बड़ा हो जाए, शायद वही तीसरी मंजिल का मालिक होगा। बाप का तो तीन कमरों में काम चल जाता है, बेटे को शायद उसके तिगुने कमरों की जरूरत हो! खैर, उसकी जरूरतें बढ़-चढ़कर हों, तभी बाप की शान और नाम बढ़ेगा। मुमकिन है, उसके लिए यह पूरा मकान ही छोटा पड़ जाए। नारायणी के श्वसुर साहब ने जिंदगी भर दो कमरों में काम चलाया। सास को तो खैर, उसने देखा ही नहीं। वे उसके आने के पहले ही दिवंगत हो चुकी थीं। उन दिनों श्वसुर साहब के पास दो कमरे थे और उन्होंने अपने बेटे को भी दो ही कमरे दिये थे। लेकिन अब तीन जन के परिवार को पूरे नौ कमरों की जरूरत पड़ने लगी है। इसलिए मुमकिन है उनके साहबजादे को पूरे एक मकान की जरूरत पड़े। वह अखबारों में अक्सर पढ़ती है, आदमी के लिए दिनों-दिन घरों की कमी होती जा रही है। इस गंभीर समस्या के समाधान में, जाने उसके पति महोदय को भी आमंत्रित किया जाता है या नहीं! उसके साहब को तो जाने कितनी-कितनी तरह की समस्याओं में सिर खपाना पड़ता है। समाज का स्टेंडर्ड ऊंचा हो—इसकी कितनी बड़ी जिम्मेदारी उसके साहब के कंधों पर है।…इसके अलावा अब और बाल-बच्चों का ख्याल उसे क्यों आ रहा है? सच, वह भी कभी-कभी अजीबोगरीब चाह को तूल देने लगती है। वे लोग समाज के सबसे ऊंचे तबके के अमीर लोग हैं। जो जितने नीचे तबके का होता है, उसके बाल-बच्चे उतने ज्यादा होते हैं। झमेला भी उतना ही!

रीबों के घर में ही गंदे-गंदे बाल-बच्चे किलबिलाते रहते हैं ! समाज-विज्ञान भी यही कहता है। नारायणी पढ़ी-लिखी नहीं है, तो भी ये मूल बातें उसने भी जान-सीख ली हैं। जो जितने ऊंचे स्टैंडर्ड का आदमी है, उसके बाल-बच्चे उतने ही कम हैं ! उनके भी सिर्फ एक ही बेटा है, वही काफी है !

कमरे में दाखिल होते हुए, पुरानी घिसी-पिटी चाहों का ख्याल आते ही, उसे फिर हंसी आने लगी। उसने अपने को बमुश्किल संभाल लिया। वाकई, आज उसे जाने क्या हो गया है ! सारी चिंता-फिक्र जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उसके दिमाग में मानो कोई मशीन फिट कर दी गयी हो। जाने कब उसे एकांत मिलेगा, और उसे जी खोलकर हंसने का मौका मिलेगा।

वह अपने कमरे में दाखिल हो गयी। कमरे में पहुंचने के बाद विपुलानंद ने उसके कंधों को आजाद कर दिया। नारायणी ने पीछे मुड़कर अपने पति पर एक निगाह डाली। इतनी देर बाद, उसके भी होठों पर हंसी की रेखा उभर आयी।

"क्यों ? क्या हुआ ?" नारायणी दुविधा में पड़ गयी—अनजाने में वह फिर कुछ ऊटपटांग तो नहीं कर बैठी !

"कुछ नहीं ! अब कैसा लग रहा है ?"

उसके इस सवाल ने नारायणी को फिर एक जोर का ठहाका लगाने का मौका दे डाला। उस शख्स की हंसी के बारे में सोचने की, उसे फुर्सत ही नहीं मिली।

उसने सहजता से उमगकर कहा, "क्यों···? वंडरफुल ! बहुत अच्छा लग रहा है।"

नारायणी को अंग्रेजी नहीं आती। बंगला भी खाक जानती है ! इस घर में आने के बाद ही उसे पता चला कि हर मामले में उसके अज्ञान का कोई कूल-किनारा नहीं है ! चारों तरफ की भरी-पूरी जीवंत हस्तियों के बीच, एकमात्र उसी की हस्ती बिलकुल शून्य है ! पिछले बारह सालों में अपने को किसी तरह मांज-घिसकर, थोड़ा-बहुत सीख सकी है ! लेकिन इसके बावजूद कदम-कदम पर उसके मन में दुविधा उठ खड़ी होती है। वैसे अब वह जहां, जो थोड़ा-बहुत बोलती है, एकदम सही बोलती है ! जब तक वह मन ही मन पूरी तरह निश्चित नहीं हो जाती, वह अपनी जुबान से ऐसी कोई बात नहीं निकालती, जो किसी को शर्मिंद दे। इसीलिए, जो उसका भीतरी हाल नहीं जानते, उनकी राय में नाराय बहुत बढ़िया अंग्रेजी जानती है।

अचानक उसने पति की आंखों में झांकते हुए, बेहद सधी हुई आवाज सवाल किया, "तुम तब से, एक वही सवाल बार-बार दोहराये जा रहे हो ! क्या होना है ?—बताओ तो।"

विपुलानंद उसे देखते हुए उसी तरह मंद-मंद मुस्कराता रहा। थोड़ा कर उसने जवाब दिया, "मुझे लग रहा था···आज तुम वहां जरा ज्यादा

रही थी और कुछ ज्यादा ही बोल भी रही थी।"

"सबसे ज्यादा ?"

"नहीं ! ऐसा कुछ अस्वाभाविक तो नहीं लगा, लेकिन पहले कभी तुम्हें इतना हंसते हुए नहीं देखा, इसीसे···"

हां, यह अंदाजा नहीं लग पाया कि पार्टी में उसकी बेभाव हंसी देखकर किसी और के मन में भी एकांत का लोभ जागा था या नहीं।

उसने तरल-सी हंसी बिखेरते हुए पूछा, "अच्छा तो तुम इसीलिए मुझे मना कर रहे थे ?" उसकी आंखों में ढेर सारी हंसी उमड़ आयी, "तुम्हें क्या लगा था, मुझे नशा चढ़ गया है ?" यह कहते हुए उसने जी खोलकर ठहाका लगाया।

विपुलानंद को ऐसे साधारण से विषय पर, इतनी खुल्लमखुल्ला बातचीत की बिलकुल आदत नहीं ! नारायणी अगर दुबारा न हंसी होती तो पता नहीं, वह कमरे से बाहर जाता या नहीं। नारायणी हंसते-हंसते अपने ऊंचे-से पलंग पर धम्म से बैठ गयी। समूचे देह में मानो एकबारगी भूचाल आ गया हो। किसी तरह उसने अपनी हंसी रोककर कहा, "हंसती नहीं तो और क्या करती ? रंजन दत्ता का वह विनीत आवेदन अगर तुम सुनते तो तुम भी हंसते। तुमने तो अपना सारा वक्त सरखेल साहब के साथ गुजार दिया। तुम्हें कुछ सुनाई दे रहा था ?"

विपुलानंद ने सिर हिलाकर जताया, उसने कुछ नहीं सुना।

अपना समूचा उत्साह और कौतुक अपनी आंखों और चेहरे में समेटकर उसने विपुलानंद की तरफ देखा। उस आदमी की निगाहों में अव्यक्त परेशानी की छाया थी। उसकी निगाहें चेहरे पर से फिसलती हुई, उसके सीने के उभारों पर गड़ गयी।

उसी तरह चंचल-विस्मित लहजे में नारायणी बताने लगी, "मिस्टर और मिसेज डाटा देश-रक्षा में सहायता के लिए, लोग जुटाकर, एक फिल्म बनाना चाहते हैं। सिर्फ रुपयों के इंतजाम से काम नहीं चलेगा, मुझे उस फिल्म की हीरोइन बनना पड़ेगा। उनका कहना है, मेरे होते हुए, और कोई औरत हीरोइन बनने का दावा कर ही नहीं सकती।"

शायद अब उसकी अतिशय हंसी या अतिशय बकबक, उसके पति महोदय को उतनी अस्वाभाविक न लगे। यानी नारायणी उसे निरुत्तरित करने में थोड़ो-बहुत कामयाब जरूर हुई थी। वह उसके सामने यह जाहिर करना चाहती थी कि उसका अंदाज सोलहों आने गलत निकला। यानी उसने यह बात बखूबी साबित कर दी कि वह नशे में टुन्न होकर इतना हंस-बोल नहीं रही थी। जो शख्स दुनिया की सारी बातें समझे-बूझे बैठा है, उसे बूंद-भर ही सही, कोई नयी बात समझा पाना भी कोई कम बात नहीं। यानी यह भी उसके लिए कोई इम्तहान था, जिसमें सफल होना, उसके लिए निहायत जरूरी था।

विपुलानंद कुछेक पलों के लिए रंजन डट्टा की निगाहों से उसे निरखता-परखता रहा। थोड़ा ठहरकर उसने हंसकर सवाल किया, "और तुमने क्या जवाब दिया ?"

"मैं क्या जवाब देती ?" भोलेपन का नाटक वह बखूबी कर लेती थी, "तुमसे पूछे बिना, मैं किसी से कोई बात कहती हूं ? और फिर कहने को था ही क्या ? मैंने कहा, मैं भला ऐक्टिंग क्या जानूं···और मैंने ऐक्टिंग की है ? लेकिन वे लोग कहां छोड़नेवाले ? देश की भयंकर दुर्दशा देखकर उनका दिल रो उठा है। उनकी योजना बिलकुल पक्की हो चुकी है। देखना, अब वे लोग तुम्हें भी पकड़ेंगे। लेकिन, सुनो, कहीं तुम 'हां' मत कर बैठना।"

गजब है ! जो शख्स तमाम बातों का फैसला करता है, नारायणी आज उसे ही हुक्म देने चली है। वाकई, उसे सचमुच ऐक्टिंग आती है या नहीं, उसे खुद ही अपने पर शक होने लगा।

उसके होठों के कोरों पर हल्की-सी हंसी ज्यों की त्यों चमक रही थी।

विपुलानंद ने पूछा, "इस फिल्म का हीरो कौन है ? कहीं डट्टा खुद तो हीरो बनने की नहीं सोच रहा ?"

"ए··ल्लो ! यह तो पूछा ही नहीं ! वे लोग तो ऐसे पीछे पड़ गये, मानो नायिका मिल जाए तो सारी समस्या ही हल हो जाए।"

"हांऽ—हीरोइन मिल जाए, तो काफी सारी मुश्किलें आसान हो जाती हैं," विपुलानंद ने उड़ती हुई राय देकर, अपनी घड़ी पर निगाह डाली।

वाकई, वक्त तो इस घड़ी का ही अमोघ दान है ! हर घंटा काम के हिसाब से बंधा हुआ ! सुनिश्चित ! वह संयम से भी काम लेना जानता है; वक्त के तकाजे पर अपने को समेटना भी जानता है !

उसने कहा, "अच्छा, अब तुम आराम करो, मैं जरा अपना काम निपटा लूं—"

विपुलानंद कमरे से बाहर चला गया। इतनी देर बाद नारायणी अकेली हो पायी। विपुलानंद जैसी निगाहों से उसे देख रहा था, उसे परेशानी होने लगी थी ! उसकी कैद से फौरन रिहाई की संभावना क्रमशः दूर जा छिपी थी। चलो, जान बची ! जरा-सा एकांत पाने के लिए उसकी सांस-सांस छटपटा उठी थी।

अवरोध पाकर, उसकी हंसी का आवेग मानो उसके अंग-अंग में झलक उठा था। पोर-पोर में हंसी मानो उमड़ी पड़ रही थी। उमड़ती हुई हंसी की ऐक्टिंग करते हुए उसका चेहरा अभी तक चमक रहा था। बेअदब हंसी के दूत मानो होठों की सीमा तोड़कर एकबारगी हहराकर व्यक्त हो जाना चाहते हों।

नारायणी पलंग से नीचे उतर आयी। होठों की बांध में रुकी हुई हंसी अब उसकी आंखों में उमड़ आयी। लेकिन पहले यह मेकअप और कपड़े बदलना

जरूरी है। उसने जान-बूझकर अपने कमरों में एयर-कंडीशनर नहीं लगवाने दिया। उसने कहा था, "ऐसे ठंडे-गर्म में मेरा सर दर्द करने लगता है! बेटे को भी सहन नहीं होगा! अतः पहले डॉक्टर से भी सलाह कर लो!" अतः इधर के कमरों में पंखों का इंतजाम कर दिया गया।

आज नारायणी को पहली बार लगा, उधर के किसी ठंडे कमरे में चली जाए और गलीचा हटाकर, ठंडी-ठंडी जमीन पर बैठे या लेट जाए तो शायद अच्छा लगे।···लेकिन उधर का कमरा तो किसी खास व्यक्ति का है। चलो, छोड़ो, उस सुख से यह शांति ही बेहतर है।

कुल मिलाकर आज उसे बेहद अच्छा लग रहा है। हालांकि वह ठीक तरह खड़ी भी नहीं हो पा रही। हाथ-पैर-सिर—सब मानो छुट्टी चाह रहे हों! लेकिन थकान से आदमी को कभी छुट्टी नहीं मिलती? अभी तो महज आराम करने के लिए छुट्टी मिली है। असल में उसे आलस आ रहा है। हाथ-पांव तक हिलाने-डुलाने की तबीयत नहीं हो रही! अभी वह दरवाजे के पासवाला बटन दबाये तो एकसाथ दो-दो परिचारिकाएं दौड़ती हुई आ पहुंचेंगी। उसके कपड़े-वपड़े बदल-कर, कृतार्थ हो जाएंगी! लेकिन वह उन्हें अपने निजी कामों के लिए कभी आवाज नहीं देती, इसलिए उनके हाव-भाव में हमेशा संकोच झलकता रहता है! चलो, आज बुला ही ले।

लेकिन ना! बुलाने से तो सारा मजा ही किरकिरा हो जाएगा। उन लोगों के आते ही उसे फिर अपनी हंसी को निर्वासन देना होगा। साथ-साथ रहते हुए ऐसी आदत ही पड़ गयी है! लेकिन अभी तक वह जी खोलकर हंस नहीं पायी है। उसकी हंसी, दुबारा छलकने ही वाली थी कि अचानक फिर ठिठक गयी।···अच्छा, वह आदमी आखिर कौन था? फाटक के बाहर लैंप-पोस्ट की रोशनी में उसे किसका भ्रम हुआ था?

कपड़े बदलने का ख्याल भूलकर, वह यूं ही बाथरूम में जा घुसी। कमरे से लगा हुआ बाथरूम। उसने आंख-मुंह पर अच्छी तरह पानी के छींटे मारे। इतने छींटे मारने के बावजूद चमड़ी पर जैसे कहीं कोई असर नहीं हो रहा है। चमड़ी को भेदकर, पानी का गीला स्पर्श उसके दिमाग को तर नहीं कर पा रहा है! लेकिन बाथरूम से निकलते हुए उसने यह क्या किया? ऐसी कीमती साड़ी के आंचल से ही, मजे से हाथ-पैर पोंछ डाले? सैंकड़ों रुपयों की कीमती साड़ी वह बेकार नष्ट करने पर तुली है? अब नारायणी को फिर बेभाव हंसी आने लगी। सच्ची, आज उसे जाने क्या हो गया है? उंहः, छोड़ो!

अच्छा, पहले ये लंबे-लंबे ईयरिंग उतारना जरूरी है! असल में किसी को ये ईयरिंग बेहद पसंद हैं। इसी तरह झूलते हुए, बड़े-बड़े हीरे के ईयरिंग! हीरे इतने बड़े-बड़े कि पूरे गाल पर अजब-सी रोशनी छिटकी रहती है! हालांकि उसके

पति ने जुबान से कभी अपनी पसंद जाहिर नहीं की, लेकिन नारायणी उसकी पसंद जानती है, इसीलिए पहनती है। ईयरिंग खोलने के लिए, वह आदमकद आईने के सामने जा बैठी। इस कमरे में ऐसे बड़े-बड़े, एक नहीं, तीन-तीन ईजिप्शियन आईने हैं! ब्याह के बाद, शुरू-शुरू के दिनों में, इस कमरे में और भी ढेर सारे आईने थे! पिता की आंखों में धूल झोंककर कमरे में आईनों का ढेर लगाते देखकर नारायणी का हंसी के मारे बुरा हाल हो गया था। इसके अलावा उसे बेतरह शर्म भी आयी थी! कमरे में इतने सारे आईने इकट्ठे करने की झख, शुरू-शुरू में उसे भी समझ में नहीं आयी थी। जब वजह समझ में आयी, तो हर वक्त इसी डर से उसकी जान निकली रहती कि कहीं श्वसुर साहब उसके कमरे में न आ पड़ें। दिन के वक्त वह उन आईनों पर कीमती पर्दे डाले रहती! इस वक्त भी…उन दिनों का ख्याल आते ही, उसका गोरा-नम चेहरा शर्म से लाल हो उठा। धत्तेरे की! आज वह जाने क्या ऊटपटांग सोचे जा रही है!

वह आईने के सामने बैठी तो सही, लेकिन ईयरिंग उतारने का ख्याल ही नहीं रहा! आईने में अपने को निहारती हुई, वह मंद-मंद मुस्कराती रही। आज रंजन दत्त ने भी उसे आईना देखने को कहा था। वह पूछ रहा था,—आजकल उसने क्या आईना देखना छोड़ दिया है? नहीं, अपने को देखना उसने नहीं छोड़ा है। अक्सर वह आईने में अपने को निहारा करती है। अगर वह अपने चेहरे के बारे में ऐहतियात न बरतती, तो शायद इस तीस साल की उम्र में ही उसका रूप ढलने लगता। अब तो वह शायद पूरे इकत्तीस साल की हो चुकी है। पूरा-पूरा ऐहतियात बरतने के बावजूद, इस उम्र में बहुत-सी औरतों को अपने मेकअप की तरफ भी चौकन्ना रहना जरूरी हो आता है। मिसेज डट्टा तो ऐसा मेकअप करती हैं कि उनकी चमड़ी का रंग ही बदल गया है। लेकिन नारायणी को इस तरह सावधान होने की जरूरत नहीं पड़ी। उसका बाहरी रूप मानो बाईस की उम्र में आकर ठहर गया है। उसकी आंखें, चेहरा, बांहें, चंपा के फूलों जैसी नरम-नाजुक उंगलियों के पोर—उसके अंग-प्रत्यंग में मानो काफी इतमीनान से ठिठक गये हैं और हर वक्त उसे तरोताजा बनाये रखते हैं। इसी आईने के सामने बैठे-बैठे, वह जाने कितने-कितने दिनों अपने को निहारती रही है और उम्र की आहट सुनती रही है! उम्र के भार से जाने कितनी बार वह अंदर ही अंदर झुककर दोहरी हो गयी है। हां, उन पलों में उसे अपना आपा बेहद असहनीय लगा है। आज भी आईने में निहारती हुई, उसी अनचाही उम्र की तलाश में भटकती रहती है। यह भी सच है कि आज वह अपने को रंजन दत्त की आंखों से निहार रही है, लेकिन निस्संदेह उसकी असली उम्र भी यहीं कहीं मौजूद है। इन पलों में वह उम्र उसकी निगाहों से ओझल जरूर है, लेकिन अगर वह चाहे, तो इसी वक्त उस उम्र को खींचकर बाहर ला सकती है। लेकिन आज सब कुछ बेहद अच्छा-अच्छा लग रहा है। इस

वक्त ऐसी कोई अप्रिय कोशिश करने का मन भी नहीं हो रहा है। बाहरवाले उसे जिन मुग्ध निगाहों से देखा करते हैं, आज वह खुद भी अपने को उसी तरह मुग्ध होकर देखना चाहती है!

···उफ! क्या मजेदार प्रस्ताव पेश किया था रंजन दत्त ने! उसे हंसी न आती तो और क्या? उसे अब फिल्मों में उतरना होगा, ऐक्टिंग करनी होगी, कौन जाने, इसके बाद वे फिल्म की कहानी भी उसी से लिखवाने आ धमकें! उनकी बातें सुनकर उसे हंसी का ऐसा तेज दौरा पड़ा कि वह बकवास-सी शराब भी कोई खास बात नहीं लगी। इसी तरह, हर बार नारायणी एक-एक करके सारी परीक्षाओं में खरी उतरती रही है! शुरू-शुरू में जो उसके बूते में भी नहीं था, अब वही सब मजे-मजे से कर डालती है। आज भी ताव में आकर वह जो काड कर बैठी, उसमें कामयाबी की बात, उसने पहले कभी सोची थी? अपने से कटकर ऊपर···ऊपर···और ऊपर उठने की परीक्षा, सबके साथ सहज और बराबर होने की परीक्षा! नारायणी से लेडी बागची, रीना बागची होने की परीक्षा! लेकिन ये इम्तहान जैसे-जैसे वह पार करती जा रही है, वैसे-वैसे अंदर ही अदर कहीं बेहद सूनी और खाली भी होती जा रही है।

आज की परीक्षा तो खासी बड़ी परीक्षा थी, अतः उसका खालीपन भी बेहद भयावह लग रहा है! लेकिन फिर भी आज के इस निचाट सूनेपन को, भरी-पूरी हंसी से भरा जा सकता है। नारायणी को बेसाख्ता हंसी आये जा रही है!

यह सब सोचते हुए उसे दुबारा हंसी का ऐसा भयंकर दौरा आया कि वह ड्रेसिंग-टेबल पर ही झुक गयी और अपनी ही बांहों पर माथा टिकाकर, उसने संयत होने की कोशिश की! उसके अग-अंग में अजीब-सी सिहरन दौड़ गयी। वह सिहरन पहले तो आहिस्ता-आहिस्ता, बाद में तेज हो उठी।

लेकिन नहीं! नारायणी तो हंस नहीं रही थी। जाने कब और कैसे उसकी हंसी अचानक कहीं गुम हो गयी। अचानक वह बेतरह रो पड़ी। जैसे अपनी हंसी पर उसका कोई वश नहीं था, वैसे ही उसकी रुलाई भी बेकाबू हो आयी।

नारायणी रो पड़ी।

रो-रोकर वह अपने को निःशेष कर देना चाहती है। वह अपना खालीपन मानो इस रुलाई से भर देना चाहती हो! हंसी की बजाय रुलाई की पनाह में उसने अपने को काफी भरा-भरा महसूस किया।

वह बेसाख्ता रोती रही···रोती चली गयी।

विपुलानंद इधर अकसर अनमना हो उठता है! यूं उसे अनमना होने की रत्ती भर भी फुरसत नहीं है! सुबह से लेकर रात तक, उसे अपने मन को ढेर सारे

कामों, विचारों और फैसलों में बांट देना पड़ता है। किसी भी तरह के सूराखहीन, त्रुटिहीन कामकाज या विचारों की कोठरी में अनायास ही वह अपने मन को कैद कर सकता है। उसके विचारों का आपस में टकराव भी नहीं होता! कामकाज के इस मानसिक सिलसिले की अब तो उसे आदत पड़ चुकी है। अनजाने में ही उसने सार्थक कार्य-पटुता का रहस्य जान लिया है। वन थिंग ऐट ए टाइम! एक वक्त पर सिर्फ एक ही काम; एक ही चिंता, एक ही फैसला! एक साथ दो-दो काम भी नहीं, एक के अलावा कोई दूसरा काम भी नहीं! उसके दिमाग में ग्रहण करने की अनंत और असीम क्षमता मौजूद है, लेकिन उसे हर काम के बारे में अलग-अलग सोचना-विचारना पड़ता है। सारे कामों की अगर एक साथ भीड़ लग जाय, तो उसमें से एक भी उसके दिमाग के दरवाजे तक नहीं पहुंच पायेगा।

विपुलानंद भी यही करता है। सिलसिला उसकी आदत का हिस्सा बन चुका है। चूंकि वह हर काम सिलसिले से करता है, सिर्फ एक राह पकड़कर चलता है; अतः उसके सामने सब कुछ बेहद स्पष्ट और साफ-साफ होता है! वह खामख्याली में विश्वास ही नहीं करता। इसीलिए तो व्यापारिक मंच पर वह सफल नियामक की भूमिका पर प्रतिष्ठित है। कारोबार की दुनिया में वह साक्षात सर्वज्ञ समझा जाता है। किसी भी तरह की अस्पष्टता का आवरण उसकी बरदाश्त के बाहर है!

बड़ावाला हॉल-कमरा मानो उसका कंट्रोल-रूम है। शाम को वह कहीं बाहर नहीं जाता। यहीं इसी कमरे में बैठे-बैठे, बस, एकाध दस्तखत या फोन, दीवार पर टंगे नक्शों पर एक नजर या शेल्फ में लगी एकाध फाइल पर सरसरी निगाह—बस, वह दुनिया भर के कारोबार का संचालन और नियंत्रण कर सकता है! सालों से वह यही करता आ रहा है। इतने लंबे-चौड़े कारोबार में किसी का किसी से कोई संबंध नहीं! सब कुछ अलग-अलग, एक-दूसरे से कटा हुआ! लेकिन विपुलानंद के लिए कुछ भी अलग नहीं, सारा कुछ मानो किसी विशाल यंत्र के भिन्न-भिन्न पुरजे मात्र हैं! उस मशीन की शक्ति मानो इसी कमरे में संचित है! व्यापार की मूल जड़ें भी मानो यहीं कहीं छिपी हैं! विपुलानंद की नजर के आईने में एक-एक बात बिलकुल स्पष्ट और साफ! पुरजे में निहित जीवन-धारा पर उसकी पैनी नजर!

आज उसी धुरंधर शख्स की आंखों के आगे अस्पष्टता का अजीब-सा परदा खिंच गया है! यही उसकी परेशानी और विरक्ति की वजह है।

जिसके बारे में अब कुछ भी देखना-जानना बाकी नहीं रह गया, ऐसी मामूली-सी बीबी की कोई हरकत उसकी निगाहों से फिसल गयी या जिसका कभी ध्यान-भंग नहीं होता, आज अचानक वह इतनी सारी आशंकाओं का शिकार क्यों हो गया? शायद इसीलिए वह [illegible] था।

आज जब उसकी खूबसूरती की बजाय, उसके मन की भीतरी तहों में झांकने चला तो सारा कुछ धुंधला क्यों गया ? आज उसे अपनी बीवी कहीं से बदली हुई लग रही थी। उसके मन में छिपे किसी व्यतिक्रम पर भी निगाह पड़ी थी ! हालांकि उसे ठीक-ठाक सुराग नहीं मिला ! बहरहाल व्यतिक्रम या बदलाव नजर आना कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन गौर करने के बावजूद कुछ समझ में क्यों नहीं आ रहा ?

वैसे इस वक्त उसके सामने ऐसा कोई जरूरी काम भी नहीं था कि वह अपनी अन्यमनस्कता को बुहार फेंके ! उसके सेक्रेटरी बहुत पहले ही विदा हो चुके थे ! इस वक्त वह कोच पर लेटे-लेटे इतमीनान से देशी-विदेशी पत्रिकाएं उलटता-पुलटता है, ताजा खबरें पढ़ता है, सेक्रेटरी की तमाम रिपोर्ट पढ़ता है। अगर किसी शख्स के सामने समूची दुनिया भी आ खड़ी हो तो उस पर भरपूर नजर डाल पाना मुमकिन नहीं। फिर भी दुनिया के बड़े-बड़े समाचारों की खबर रखना भी कमोबेश जरूरी है। खबरें इकट्ठा करने का काम तो उसके सारे सेक्रेटरी ही कर देते हैं। वे उसके लिए सारे तथ्य जमा करते हैं, उसमें देखने या पढ़ने लायक जगहों पर वे ही निशान लगा देते हैं। यहां तक कि अखबारों में भी ध्यान देने लायक समाचारों पर लाल निशान खींच देते हैं। आज भी कुछ देर के लिए महज आदतवश विपुलानंद सारी रिपोर्ट उलट-पुलटकर देखता रहा, लेकिन असल में उससे एक भी शब्द पढ़ा या देखा नहीं गया।

उसने सारे कागज-पत्र और पत्रिकाएं मेज पर एक ओर सरका दीं। घूम-फिरकर बीवी का ख्याल उसे परेशान कर गया। बस, सारे कामों से निर्वासित ! विपुलानंद बेकार की मेहनत नहीं करता।···रीना कभी इतना ज्यादा हंसती या बोलती नहीं ! नहीं, वह गलत सोच रहा है। उसके होठों पर हर वक्त मुस्कान की एक रेखा खेलती रहती है। लेकिन अन्य औरतों की तरह वह बाहरी लोगों के सामने यूं नहीं हंसती ! अपनी बात कहने के बजाय, सुनना वह ज्यादा पसंद करती है। आज उसके ज्यादा हंसने-बोलने की खास वजह है ! सबके साथ आज रीना ने भी ड्रिंक किया था ! हां, यह श्रीगणेश है ! पहले ··बहुत पहले···शुरू-शुरू में विपुलानंद ने एक बार कोशिश की थी ! थोड़ा-बहुत चख लेने में जो मजा है, रीना उस सुख से किस कदर वंचित है, उसने साबित करना चाहा था। लेकिन वह सब महज बेड-रूम का हंसी-मजाक था, वहीं खत्म भी हो गया ! काफी चिरौरी-मिन्नतों के बाद उसकी बीवी ने दो-तीन घूंट भरे थे, लेकिन उसका परिणाम देखकर, उसने फिर कभी ऐसा मजाक नहीं किया। ड्रिंक के बाद उसका वह वीभत्स चेहरा···ऊटपटांग हरकतें···उसे आज भी याद है। वैसे वह तमाशा बेमजा भी नहीं लगा था, लेकिन थोड़ी देर बाद जब वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ी थी, तो वह हक्का-बक्का गया था।

लेकिन आज रीना ने जान-बूझकर, खुद ड्रिंक क्यों किया ? किसी ने उससे पीने की जिद तो की नहीं होगी ! सबको मालूम है, वह शराब नहीं पीती। वैसे वह जब, जो करती है, अपने आप करती है और जब करती है, तो कहीं कुछ बेमेल भी नहीं लगता। रीना का अंग्रेजी सीखना या विलायती बाजा सीखना भी शायद इसी तरह शुरू हुआ था। बेटा जब ऐसे मामूली घर की लड़की ब्याह ही लाया, तो उसकी दुल्हन को मांज-घिसकर आभिजात्य समाज के योग्य बनाना भी जरूरी है, यह बात उसके पिता ने भी महसूस की थी। ब्याह के बाद, बेटे को एकांत में बुलाकर, बातों-बातों में इसका संकेत भी दिया था। नहीं, उन्हें सिर्फ अभिजात कहना गलत होगा, समाज में उनका शीर्ष स्थान है !

उसे अंग्रेजी पढ़ाने के लिए, पहली बार, जब एक मेम आयी, तो वह मारे घबराहट के पसीने से तर-ब-तर हो गयी। बाद में पति को देखकर उसने भौंहें चढ़ायी थीं, "मुझे तो बंगला भी अच्छी तरह नहीं आती, अंग्रेजी भला क्या सीखूंगी ?"

विपुलानंद ने जवाब दिया, "भई, अंग्रेजी सीखना बहुत जरूरी है ! तुम कोशिश करो, जरूर सीख जाओगी।"

जितने दिन वह उसे कोशिश करने की ताकीद करता रहा, कहीं कुछ नहीं हुआ ! हालांकि आज भी कुछ हुआ है, रीना को नहीं लगता। लेकिन विपुलानंद जानता है, काफी फर्क आया है ! पार्टियों में ढेर सारे गण्यमान्य, विदेशी औरत-मर्दों की महफिल में उसे कभी शर्मिंदगी नहीं उठानी पड़ी। इसका मतलब है, कहीं कोई घाटा नहीं हुआ ! हर जगह अपने को सहज ही घुला-मिला देने की अपूर्व क्षमता के लिए उसने मन ही मन रीना की तारीफ भी की है ! लेकिन जितने दिन बीवी को मांज-घिसकर उस पर कल्चर का चटख रंग चढ़ाने के मामले में, उसने तीखा आग्रह दिखाया, उतने दिनों कहीं कुछ भी नहीं हुआ। बल्कि उसका इतना आग्रह देखकर, उलटे वह नर्वस हुई है ! लेकिन जिस दिन उसने कोशिश छोड़ दी, देखा गया, रीना खुद ही उसकी उम्मीदों के अनुकूल ढलने में जुट गयी है। वह टीचर के पास खुद ही जा बैठी, मन लगाकर सीखने की कोशिश की। लेकिन विपुलानंद के पास यह सब देखने की फुरसत नहीं थी। देखने की फुरसत क्रमशः कम होती जा रही थी। पिता भी अब कारोबार की सारी जिम्मेदारी धीरे-धीरे अपने लायक बेटे के कंधों पर डालते जा रहे थे। उसे भी अब अपने पैरों पर खड़े होने की धुन चढ़ चुकी थी। इस बीच जाने कितने सारे दिन-साल गुजर गये। कभी भूल-चूक से रीना पर नजर पड़ जाती, वह अंग्रेजी अखबार के पन्ने उलट रही होती या किसी विदेशी पत्रिका में डूबी दिखाई देती !

पियानो सिखाने के मामले में भी, शुरू-शुरू में ऐसा ही हुआ ! रीना ने उसकी बात हंसकर उड़ा देनी चाही। मास्टर साब के पास बैठने को ही राजी नहीं हुई।

विपुलानंद खामोश आंखों से उसे घूरता रहा। यूं उसे देखने की फुरसत बहुत कम ही मिलती है, लेकिन जब वह सचमुच देखने पर आता है, तो उसकी आंखों से कुछ भी छिपा नहीं रहता। वह उसकी हंसी के पार, उसके अंदर झांकने की कोशिश कर रहा था।

नारायणी अंदर ही अंदर नर्वस हो आयी, लेकिन उसने होंठों पर समान हंसी बिखेरते हुए कहा, "आज मामला क्या है, बताओ तो? वक्त की मशीन कहीं अचानक बिगड़ तो नहीं गयी? इतनी जल्दी तुम्हारा पढ़ना-लिखना खत्म!... कितना बजा है?..." उससे नजरें चुराते हुए, उसने दूर वाली घड़ी पर निगाह डाली, "हाय-मांऽ, नौ से ऊपर हो गया! बेटे साहब अभी तक नहीं आये...कहीं सो तो नहीं गये?"

यह कहते-कहते, वह बेटे से मिलने के लिए दरवाजे की तरफ बढ़ गयी। बेटे को "गुड-नाइट" न कहने से मानो कोई बहुत बड़ा काम बाकी रह गया हो।

लेकिन अभी वह दो-चार कदम ही बढ़ी थी कि विपुलानंद ने उसे रोकते हुए कहा, "रहने दो! मैं उससे कह आया हूं! मुमकिन है अभी तक वह सो भी गया हो!"

नारायणी ने मुड़कर नहीं देखा लेकिन उसके पैर अचानक ठिठक गये। उसने संक्षिप्त-सा जवाब दिया, "फिर भी, देख तो आऊं! ऐसे भी तुम्हारा बेटा मुझे जिस नजर से देखता है...! तुम बैठो, मैं अभी आती हूं।"

वह कमरे से बाहर निकल आयी! किसी की नजरों से बचने के लिए, ऐसे एकांत की तलाश, शायद उसे पहले कभी नहीं हुई! नारायणी आज उससे बचना चाहती है। लेकिन यह संभव नहीं था। वह जानती है, उसकी नजरों से नहीं बच पायेगी। उसके आमने-सामने खड़ी होना होगा, बैठना होगा, बातचीत भी करनी होगी, हंसना भी होगा। यह सब वह बखूबी कर लेगी। बस, उसे थोड़ा-सा वक्त मिल जाये, वह सब कर गुजरेगी। दत्त साहब भी उससे ऐक्टिंग करने के लिए कह रहे थे! कोई बात नहीं, ऐक्टिंग करने के लिए, बस, थोड़ा-सा वक्त होना चाहिए —और कुछ नहीं!

बेटे के कमरे से मीठी-मीठी आवाजें सुनाई पड़ीं! जब तक वह सो नहीं जाता, रेडियोग्राम पर, बेहद धीमे-धीमे सुर में कोई रिकॉर्ड बजता रहता है; कमरे में नीली रोशनी जलती रहती है! खैर, नीला बल्ब तो सारी रात जलता है। पहले सफेद बल्ब जलता था। लेकिन बेटे को अंधेरे में डर लगता है। वैसे नारायणी ने धीरे-धीरे उसके मन का डर निकाल दिया है। वह तो बेटे के बारे में जब किसी तरह का सुलह-समझौता करना पड़ता है, सिर्फ तभी उसका मुंह लटक जाता है। अब नीली रोशनी से बेटे को कोई ऐतराज नहीं।

किसी भी वजह से बेटा डर जाए, बेटे के डैडी यह हरगिज बरदाश्त नहीं कर

सकते। इस जुर्म के लिए कई नौकरों को बरखास्त तक कर दिया गया है। उन लोगों ने मेम साहब के पैर पकड़कर क्षमा की भीख भी मांगी। उन्हें बरखास्त करने की ठीक-ठीक वजह नारायणी की भी समझ में नहीं आयी, अतः वह माफ़ क्या करती? वह लाचार थी! इस घर में मालिक या मालकिन में से कोई एक, जो भी हुक्म देता है, दूसरा उसे रद्द नहीं कर सकता। हुक्म रद्द करने का मतलब है, हुक्म देनेवाले को छोटा करना! यह तहज़ीब के खिलाफ़ है! नारायणी भी दुबारा उन्हें नौकरी में बहाल नहीं कर पायी। लेकिन चोरी-चोरी उन्हें मुट्ठी भर बख्शीश देकर, उनके उदास चेहरों को हंसी दे डाली। नारायणी सिर्फ़ इतना ही कर सकती थी! हुक्म रद्द करने का हक़ तो सिर्फ़ हुक्म देनेवाले को होता है।

और गब्बू की तो नौकरी जाने की कौन कहे···उसे जेल तक हो सकती थी। उसे इस घर का तौर-तरीका, अदब-कायदा सिखाते-सिखाते, नारायणी के बिलकुल नाक में दम आ गया। मालिक की नज़र में उसने जाने कितने गुनाह किये, उसका कोई हिसाब नहीं। उसकी जगह अगर कोई और नौकर होता और उसने इतनी भूलों की बजाय सिर्फ़ एक ही भूल की होती तो भी उसका नौकरी में बने रहना असम्भव था। गब्बू ने तो लड़के को एकाध बार डराने-धमकाने की भी हिमाक़त कर डाली। यहां तक कि एक बार तो उसने लड़के को गिरा भी दिया। उस बच्चे के सिर में गुमटा उभर आया। बेटे की धाराप्रवाह चीख सुनकर नारायणी दौड़ी हुई आयी थी, उधर से बेटे का बाप भी। नारायणी पलक झपकते ही सारा मामला समझ गयी और फंसने की जिम्मेदारी झटपट अपने हाथों में ले ली। बेटे को सभालते-बहलाते हुए उसने अग्निमूर्ति धारण करके कहा, "दुबारा फिर कभी ऐसी गलती की, तो तुझे निकाले बिना नहीं रहूंगी। समझा?" नारायणी उसे चाहे जितनी भी कड़ी-कड़ी बातें सुनाए, वह अन्य नौकरों से इस तरह पेश नहीं आती। इसी तरह, उसे हर बार बचा लेती है।

लेकिन आजकल उसे ज्यादा डांट-फटकार लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। रहते-सहते गब्बू भी जरा चुस्त हो गया है। अपने भरसक वह काफ़ी फूंक-फूंककर पांव रखने की कोशिश करता है।

लोरियों की आवाज़ ज़रूर आ रही थी, लेकिन कमरे की नीली रोशनी बुझ चुकी थी।

लेकिन दरवाजे के सामने खड़े होते ही अंदर का जो दृश्य देखा, वह भौंचक्की रह गयी। अचानक वह आनंदित भी हो उठी।

कालीन-बिछी जमीन पर, गब्बू घोड़ा बना हुआ था, राजा उसकी पीठ पर अड़ियल सवार बना बैठा था। गब्बू के मुंह में एक मोटी-सी रस्सी कसी हुई थी! उसकी गरदन के पीछे से रस्सी के दोनों छोर राजा के हाथ में! मानो वह घोड़े की लगाम थी। राजा के दूसरे हाथ में एक छोटी-सी चाबुक भी थी। घुड़सवारी

करने के उन्माद में वह गव्वू की नंगी पीठ पर सटासट चाबुक बरसाये जा रहा था और तेज-तेज दौड़ाने के लिए उसकी पसलियों में कस-कसकर दुलत्ती भी झाड़ रहा था।

गव्वू राजा बाबू को पीठ पर बैठाये बड़े हॉल कमरे में, घोड़े की तरह गोल-गोल चक्कर लगा रहा था। बीच-बीच में दबे स्वर में हिनहिनाते हुए, चाबुक की मार के खिलाफ प्रतिवाद भी जाहिर कर रहा था। खेल की उत्तेजना में किसी को भी दरवाजे की तरफ देखने की फुरसत नहीं थी। नारायणी कुछेक पल को निश्चल खड़ी रही। अचानक उसने दौड़कर एक झटके में बेटे को खींचकर उसकी पीठ से उतार दिया। उसकी निगाह गव्वू की नंगी पीठ पर गड़ गयी। उसकी काली पीठ पर लाल-लाल निशान उभर आये थे। कहीं-कहीं से खाल भी उधड़ गयी थी! लगाम फेंलकर, गव्वू उठकर खड़ा हो गया और हंसने लगा। लेकिन उसके मुंह से झाग निकल रही थी! नारायणी को बेतरह गुस्सा आ गया। लेकिन वह यह फैसला न कर पायी कि वह राजा पर नाराज हो या गव्वू पर! असल में उसे दोनों पर गुस्सा आ रहा था।

पहले उसने गव्वू को ही घूरकर देखा। उसकी आवाज़ में झल्लाहट उभर आयी, "तुमने उसे अपनी पीठ पर क्यों चढ़ाया था? मैंने कितनी बार यह सब खेल-तमाशा करने को मना किया है?"

गव्वू उस वक्त बाकायदा हांफ रहा था। लेकिन उसके होंठों पर हंसी खेल गयी। अभी थोड़ी देर पहले, घर के मालिक को देखकर, उसका जो चेहरा बना था, इस वक्त उससे बिलकुल फरक था! जैसे कोई शरारती बच्चा, शरारत करते हुए रंगे-हाथों पकड़ा जाए, उसके चेहरे पर वैसा ही संकोच उभर आया। पीठ के दाग दिखाई न दिये हों, लेकिन उसे दर्द भी नहीं हो रहा? आखिर वह इंसान है कि जानवर? लेकिन उससे कुछ कहना बेकार था।

हारकर नारायणी राजा की तरफ मुड़ी। उसे बांह से खींचते हुए, गव्वू की पीठ दिखाकर गुस्से से पूछा, "चाबुक मार-मारकर यह क्या हाल किया है?" और जूते से उसके सीने में ठोकर क्यों लगा रहा था?"

मां ने आकर ऐसा मजेदार खेल मिट्टी कर दिया, बेटे को यह बात कतई भली नहीं लगी। ठीक है, जरा-सा दाग पड़ गया, लेकिन अगर ज्यादा चोट लगती, तो गव्वू क्या इस तरह हंसता रहता? उसके बापी उसकी किसी इच्छा में बाधा नहीं डालते, लेकिन मां हर बात में टांग अड़ाती है, तभी तो वह उसे प्यार भी नहीं करता।

उसने तमककर कहा, "वह मेरा घोड़ा बना हुआ था—"

"घोड़ा बना हुआ था, इसलिए क्या वह सचमुच घोड़ा हो गया? तुम उसकी पीठ पर क्यों चढ़े हुए थे?"

बेटे ने भी फौरन, मां में भी वैसी ही वजनदार गलती ढूंढ निकाली। उसने गंभीर मुद्रा में कैफियत तलब की, "बापी ने कहा, तुम बीमार हो! तुम लेटी क्यों नहीं रहीं? उठकर क्यों आयीं?" अचानक नारायणी मकपकाकर चुप हो गयी! अभी यह कुल छह साल का है। अक्सर उसकी निगाहें बेटे के चेहरे पर गड़ जाती हैं! हूबहू, बाप का चेहरा बैठा दिया गया हो! हाव-भाव भी बिलकुल वैसा ही! गंभीर मुद्रा में उसी तरह तीखी हाजिरजवाबी या फरमाइशें! यानी नारायणी को नहीं आना चाहिए था। अगर वह न आती तो उसे पता भी नहीं चलता और इतनी बातें भी नहीं उठतीं!

गब्बू मसखरे की तरह खड़ा-खड़ा उसी तरह मंद-मंद मुस्काता रहा। दीदीमणि की बीमारी का ख्याल आते ही वह किंचित सजग हो उठा। उसे गौर से देखने लगा।

नन्हे-से बच्चे के अहम को खासी चोट लगी थी। उसका ख्याल था, उसने ऐसी कोई गलती नहीं की कि उसे इतनी डांट पड़े। लेकिन उसकी मां हर वक्त खोज-खोजकर उसकी गलतियां निकालने के चक्कर में रहती है। यह काम ठीक नहीं हुआ, तुमने यह काम गलत किया, फिर ऐसा कभी मत करना— सुनते-सुनते उसके कान पक गये। आज तो जिस गुस्से से उसे गब्बू की पीठ से खींचकर उतारा गया, मानो वह गब्बू को बिलकुल जान ही लिये ले रहा था। मां की बुद्धि पर उसे जरा भी भरोसा नहीं, उसने भी यह बात अच्छी तरह समझा दी।

उसने कहा, "घोड़ा बना था, तो चोट लगने की बात क्या है? लगती तो वह खुद ही कहता।"

नारायणी को हंस देना चाहिए था लेकिन जाने क्यों उसे गुस्सा आने लगा। उसने आंखें तरेरकर कहा, "अगर वह कहे नहीं, तो क्या उसे चोट भी नहीं लगती? और जब तक वह कहे नहीं तू उसे मारता ही जाएगा? चल, तू बन घोड़ा! मैं मार कर देखती हूं, तुझे लगती है या नहीं!"

इतना कहना ही काफी था। इतने छोटे-से बच्चे को मारने-पीटने या डराने-धमकाने में उसके डैडी को सख्त एतराज है, वह जानता है इसीलिए उसने दांत पीसकर धमकाते हुए कहा, "मैं बापी से कह दूंगा। तुम मुझको मारने को धमका रही थीं।"

"जा-जा बोल दे! तेरे बापी मेरा सिर काट लेंगे न!" नारायणी ने उसे बांहों में उठाकर बिस्तर पर पटक दिया। उस वक्त उसका गुस्सा आसमान छू रहा था। उसने एक झटके में उसके जूते उतारे, रैक से धुला पाजामा-कुरता निकाल लायी! बेटे के ये बहशी तेवर, इतनी-सी उम्र में ऐसा दंभी मिजाज, उसे फूटी आंखों नहीं सुहाता। उसे अपने बेटे का भविष्य बेहद खौफनाक नजर आने लगा था। राजा के पास चाबीवाले हाथी-घोड़े भी हैं, वह उन पर चढ़े-घूमे।

लेकिन उसे तो आदमी को हाथी-घोड़ा बनाकर उसकी सवारी की झोंक है ! यह ठीक है कि वह गब्बू को मारने के इरादे से चाबुक नहीं बरसा रहा था, लेकिन उस गरीब को चोट तो लग रही थी। उसे पक्का विश्वास है, बचपन की आदतें, बड़े होने पर भी खास बदलतीं नहीं ! बड़े होकर भी, ये दंभी लोग मारने के इरादे से किसी पर कोड़े नहीं बरसाते, लेकिन फिर भी बेचारे गरीब लोग इनके निर्मम कोड़ों का शिकार बनते हैं।

उसके अक्खड़ और तमतमाये हुए चेहरे को घूरते-घूरते, उसने चटपट उसके कपड़े बदल डाले। उसे बिस्तर पर लिटाते हुए कहा "लो···अब सो जाओ।"

राजा ने उसी वक्त करवट बदल ली ! फिलहाल उसे मां की सूरत देखने की कोई चाह नहीं ! नारायणी एकाध पल खड़े-खड़े इंतजार करती रही। उसका मन हुआ, जाने से पहले वह बेटे के सिर पर हाथ फेर दे। लेकिन उसने अपना इरादा बदल दिया। अपनी गलती महसूस करने के बजाय, बेटा यही समझेगा, मां का गुस्सा नरम पड़ गया है !

"गुड-नाइट···"

हां, चाहे कितना भी गुस्सा हो, पिता की सिखायी हुई सौजन्यता में कहीं कोई त्रुटि नहीं होती ! तीन साल की उम्र से ही, शिष्टाचार का जो पाठ उसे तोते की तरह रटाया गया है, उसे अच्छी तरह याद हो चुका है।

बेटे ने भी मुंह फेरे-फेरे ही जवाब दिया, "गुड-नाइट !"

नारायणी जब दरवाजे की तरफ मुड़ी, गब्बू गायब हो चुका था। शायद डांट के डर से कहीं हट-बढ़ गया था। वैसे वह इसी कमरे के गलीचे पर अपना बिस्तर लगाकर सोता है। नारायणी का यह इंतजाम भी घर के मालिक को पसंद नहीं आया था। कम से कम रात के वक्त वे बेटे को किसी आया की निगरानी में रखना चाहते थे।···कमरे की नीली बत्ती जलाकर, नारायणी बाहर निकल आयी !

गब्बू कहीं भागा नहीं था। कमरे के बाहर ही खड़ा था। नारायणी ठिठक गयी। उसे पीठ में कुछ लगा लेने को कहे या न कहे, मन ही मन सोचती रही। इस वक्त अगर वह कुछ कहती भी, तो उसकी आवाज से गुस्सा ही टपकता। इस घर में मन का असली गुस्सा वह कभी-कभी इसी गब्बू पर उतारती है। खैर, इस वक्त उससे बात करने का मौका भी नहीं था ! उसे देखकर, गब्बू ने खुद ही करीब आकर पूछा, "तुम्हारी क्या तबीयत खराब है ?"

उसकी सूरत देखकर नारायणी को अचानक हंसी आने लगी। उसकी सूरत ऐसी दुःखी लग रही थी, मानो उसकी तबीयत के भले-बुरे की सारी जिम्मेदारी एकमात्र उसी के कंधों पर हो ! खुद उसकी पीठ पर निशान उभर आये थे, मानो धूल के निशान हों, झाड़ते ही मिट जाएंगे ! लेकिन इस वक्त अगर वह हंस पड़ी

या कोई जवाब दिया, तो गुस्सा दिखाने का मौका नहीं मिलेगा। उसकी तरफ सिर्फ एक गुस्से भरी निगाह डालकर नारायणी अपने कमरे में चली आयी।

लेकिन अब हंस लेना बहुत जरूरी है! वैसे आज रात अगर उसे इस कमरे में न आना होता तो शायद वह राहत महसूस करती। लेकिन जिस बहाने से वह कमरे से बाहर चली आयी थी, उसे ज्यादा देर तक खींचना मुश्किल था। कोई उसके कमरे में बैठा हुआ है, यह जानते हुए भी वह काफी देर से ही लौटी थी।

विपुलानंद वहां बैठा हुआ नहीं था। होंठों में सिगरेट दबाये वह कमरे में चहलकदमी कर रहा था।

नारायणी हंसते हुए कमरे में दाखिल हुई, "जानते हो, तुम्हारा बेटा बीहड़ पाजी हो गया है।"

यानी बेटे के पाजीपने की वजह से ही लौटने में देर हो गयी! विपुलानंद ईषत विस्मित हो उठा। घड़ी की तरफ नजर डालकर उसने पूछा, "वह अभी तक सोया नहीं?"

"नहीं! अभी उसे सुलाकर आ रही हूं। तुम शायद उससे यह कह आये थे कि मैं बीमार हूं। मुझे डांट पिला रहा था कि मैं क्यों आयी!" नहीं, गब्बू को पीठ पर चढ़ने की बात उसने नहीं बतायी, क्योंकि वह उलटे गब्बू पर भी झल्ला उठेगा। यों भी उसका ख्याल है कि उसके बेटे को किसी वज्र जंगली के पल्ले छोड़ दिया गया है।

नारायणी हंस पड़ी! हां, हंसना जरूरी था। इस आदमी के सामने, अभी थोड़ी देर पहले, वह बहुत बुरी तरह पकड़ी जानेवाली थी! जाने उसने पकड़ भी लिया या नहीं! नारायणी मन ही मन अपने को तसल्ली दे रही थी कि वह नहीं पकड़ी गयी। उसके पति ने उसे रोते हुए नहीं देखा। लेकिन उसे कहीं कोई खटका जरूर लगा है, वरना आजकल उसे इस कमरे में आने की बहुत कम फुरसत होती है। कभी भूले-भटके घर का मालिक उसके कमरे में आता भी है तो उसके आने का संकेत बहुत पहले ही मिल जाता है। उसकी आंखों और होंठों की कोर में उसके आने की पूर्व घोषणा होती है। नारायणी यथानुसार उसके स्वागत की तैयारियां करती है, खुद भी सज-संवरकर तैयार होती है। हां, उस देने-पाने में रिश्तों की गुनगुनी तपिश नहीं होती, सिर्फ देने-पाने का नाटक भर होता है!

जब वह उसे बांहों में लपेटते हुए कमरे में दाखिल हुआ, जब वह बेभाव हंसे जा रही थी और ऊटपटांग बातें कर रही थी, तब वह एकटक उसे घूरता रहा था। सिर्फ पल भर के लिए दोनों की निगाहें मिली थीं। नारायणी को उसी पल आभास हो गया था, आज कोई उसके पास आयेगा। लेकिन थोड़ी देर बाद जब वह नियम और फर्ज के तकाजे पर, उठकर चला गया, तो वह निश्चिंत हो आयी। लेकिन इस वक्त उसकी निगाहें कुछ और कह रही थीं। जैसे वह अपने धंधे में माल पर एक

नजर डालकर उसकी असलियत समझ लेता है, और उसके बाद ही कोई निश्चित फ़ैसला करता है, ठीक वैसे ही आज वह उसे भी देखने-समझने आया है। उसने उसे रोते हुए नहीं देखा, लेकिन शृंगार मेज पर उसे चेहरा छिपाये हुए देख चुका था। अत: नारायणी के लिए हंसना बेहद जरूरी है। उसमें ऐसा कुछ भी देखने-समझने को नहीं है, उसे यह बताना-समझाना बेहद जरूरी है!

वह हंसते-हंसते बिस्तर पर आ बैठी और उसी तरह अल्हड़ता से कहा, "बेटे का तौर-तरीका, बातचीत का लहजा अभी से ही बिलकुल तुम्हारी तरह होता जा रहा है।"

नारायणी को मालूम है, इस तरह की बातें सुनकर वह खुश होता है। लेकिन लगता है उसकी यह कोशिश भी पकड़ी गयी। विपुलानंद चुपचाप खड़ा-खड़ा कुछेक पल उसे एकटक घूरता रहा। होठों की कोरों में हल्की-सी हंसी का भी आभास झलक उठा। उसने पूछा, "मेरा बेटा···मेरी तरह नहीं होगा तो और किसकी तरह होगा?"

इस कमरे में अब एक भी ऐश-ट्रे नहीं है! पहले···बहुत पहले हमेशा मौजूद रहती थी। अब उसकी जरूरत नहीं रही। विपुलानंद ने भारी-भरकम पर्दा सरकाकर सिगरेट बाहर फेंक दी। परदा बराबर करके, वह भी बिस्तर पर, नारायणी के बेहद करीब आकर बैठ गया! नारायणी को उम्मीद थी, आज वह ज्यादा देर को नहीं आयेगा, लेकिन अब वह उम्मीद भी जाती रही। विपुलानंद ने बिना किसी भूमिका के, सीधे-सीधे उससे असली बात जाननी चाही, "तुम्हें क्या हुआ है?"

नारायणी ने अपनी सकपकाहट को छिपाते हुए, आंखों में ढेर सारा अचरज और प्यार छलकाते हुए कहा, "क्यों? जानकर क्या करोगे?"

उसके चेहरे पर किसी की एक जोड़ी हंसती हुई, सौम्य निगाहें मानो जम गयी हों थोड़ा ठहरकर, उसने ड्रेसिंग-टेबल की ओर इशारा करके कहा, "वहां··· उस तरह क्यों बैठी थीं?"

नारायणी ने चटपट जवाब जड़ा, "अच्छा, तो तुम इतने से ही घबड़ा गये? कहीं फोन करके डॉक्टर-वाक्टर तो नहीं बुला लिया? असल में सर बेतरह भारी हो आया था। पता नहीं कैसे वह राख-भस्म तुम लोग पीते हो···तुम्हारा दिमाग भारी नहीं होता?"

"दिमाग हल्का होता है।···लेकिन अचानक तुम्हें पीने की क्या पड़ी थी?"

नारायणी के होठों पर अस्फुट-सी हंसी झलक आयी, "चखकर देख रही थी, कैसा लगता है! हांऽ—थोड़ी देर के लिए बुरा नहीं लगता।"

विपुलानंद की निगाहें अभी भी उसके चेहरे पर स्थिर गड़ी रहीं! अगर उसके

कारोबार के मामले में किसीने ऐसा गोलमाल जवाब दिया होता, तो उसकी शामत आ जाती। कोई इतना दुस्साहस ही नहीं करता। लेकिन इस वक्त जो जवाब दे रही थी, वह उसकी बीवी थी! विपुलानंद ने महसूस किया उसकी आंखों की कौतुकी हंसी कुछ और गहरी हो आयी है। थोड़ी देर उसे आंखें भरकर देखने के बाद, उसने बेहद सहज भाव से अपनी राय जाहिर की, "सिर भारी होने की वजह से नहीं, असल में तुम यहां बैठी-बैठी रो रही थीं। क्यों?"

नारायणी मानो अचकचा गयी! उसके संकोच की भी सीमा नहीं रही।

लेकिन अगले ही पल वह चौगुने जोश से हंस पड़ी, मानो वह चोरी करते रंगे हाथों पकड़ी गयी हो, इसलिए कहीं से लजा भी गयी। मानो बचपने को छिपाने के लिए ही वह हंसने की कोशिश कर रही हो।

उसने कहा, "तुम्हारी निगाहें भी कमाल की हैं! तुम तो धूल झोंकने का मौका भी नहीं देते। धन्य हो!" वह कितनी आसानी से प्रसंग बदल सकती है, अगर उसे पता चलता, तो वह खुद भी अवाक् रह जाती। उसे अपनी हंसी सभालने में थोड़ा वक्त लगा। थोड़ा ठहरकर उसने कहा, "उस दिन अखबार में विज्ञान-संबंधी एक लेख पढ़ रही थी—'नियम से रोइए।' नियमित रोने से देह-मन तरोताजा रहता है। आदमी नर्वस नहीं होता।"

विपुलानंद मन ही मन उसकी हाजिरजवाबी की तारीफ किये बिना नहीं रह पाया। अपने कर्मचारियों में ऐसी चुस्त-दुरुस्त तत्परता देखकर वह खुश होता है और उसके खुश होने का मतलब है—तकदीर की बुलंदी! लेकिन इस वक्त उसने अपने को जाहिर नहीं किया, उसकी आवाज भी नहीं बदली। उसे अपने सवाल का जवाब अभी तक नहीं मिला, उसने अच्छी तरह समझा देना चाहा। उसने उसी तरह शाही अंदाज में दुबारा सवाल किया, "अखबार में कोई लेख पढ़कर जब चाहो, रोना नामुमकिन है! तुम रोयी क्यों थी?"

नारायणी अजब मुसीबत में पड़ गयी। उसे मन ही मन झल्लाहट भी होने लगी। उसका मन हुआ, वह भी मुंह-तोड़ जवाब दे—"अच्छा किया, रो रही थी, मुझे क्या अपने मन मुताबिक रोने तक की आजादी नहीं?" लेकिन ऐसा कोई जवाब पाकर उसे बुरी तरह अखरा होगा। ऐसा अशिष्ट जवाब सुनने की उसे आदत नहीं है। इस वक्त तो उसका रोना भी निहायत अशिष्ट लग रहा होगा।

नारायणी मन ही मन कोई कैफियत ढूंढ़ती। उसे ज्यादा सोचना नहीं पड़ा। एक अच्छा-सा जवाब खुद-ब-खुद उसके होंठों से फिसल पड़ा, "पता है, बीच-बीच में जाने क्यों मुझे रोना आने लगता है! यहां ऐसा भरपूर सुख, कहीं एक बूंद भी फांकी नहीं! यह देख-देखकर कभी-कभी मुझे बहुत रोना आता है! वैसे, आंसू नहीं आते, लेकिन, आज जाने कैसे रो पड़ी!"

विपुलानंद को मानो यकीन नहीं आया! वह चेहरा पढ़कर ही समझ लेता

है, कौन-सी बात विश्वसनीय है, कौन-सी अविश्वसनीय ! लेकिन उसका यह जवाब उसे पसंद आया। असल में जब भी वह अपनी बीबी को गौर से देखता है, उसकी आंखों को वह अच्छी ही लगती है। यह बात अलग है—कि उसे अच्छी तरह देखने की फुरसत बहुत कम मिल पाती है।

···इसी औरत के प्रति उसके मन में कभी···किसी दिन ऐसा जबरदस्त मोह जागा था···कि ऐसा बेमेल रिश्ता हो गया ! लेकिन अब वैसा कोई मोह नहीं रहा ! असल में इंसान के मन में मोह हमेशा जिंदा भी नहीं रहता। खासकर उस जैसे कामकाजी इंसान के मन में ! वह तो जिस राह पर कदम रखता है, कामकाज की सुनहरी जंजीर तार-स्वर में बज उठती है ! लेकिन घर में अपनी ब्याहता बीबी के प्रति भी मोह-मुक्त होकर, निरासक्त भाव से उसकी योग्यता की जांच-परख करते हुए, मन में कहीं अव्यक्त पछतावा भी होता है—लेकिन विपुलानंद को ऐसा कोई पछतावा कभी नहीं हुआ !

ढेर-ढेर व्यवधानों के पार निहायत मामूली-से माहौल में खिले हुए एक फूल को वह तोड़ लाया था। हां, किसी को जड़मूल समेत उखाड़ लाने के अलावा उसने और क्या किया था ? उस दिन उस लड़की की असाधारण खूबसूरती उसे बेचैन कर गयी थी ! उसे देखकर सिर घूम गया था और वह उसे अपने क़रीब पाने के लिए छटपटा उठा था ! मुमकिन है यहां के माहौल में वह फूल महज सजावट का सामान बनकर पड़ा रहता, लेकिन ऐसा भी तो हो सकता था कि यहां की बेशुमार दौलत के भारी वजन तले या बेभाव बरसात में वह फूल झरकर निश्चिह्न हो जाता ! लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वह निश्चिह्न नहीं हुई ! विपुलानंद का मोह भी अब कट चुका है। उसकी रंगीन तरुणाई का अबाध ज्वार अब व्यापार-लक्ष्मी के अंतःपुर की राह की तरफ वह निकला है। अब उसे शायद पल भर की भी फुरसत नहीं ! खैर, फुरसत अब वह चाहता भी नहीं ! काम को जंजीर समझने की कोई वजह भी नहीं। नहीं, यह सोने की जंजीर भी नहीं थी, यह तो पौरुष का बंधन था ! आज तो वह समय से होड़ लगाकर चलता है, और समय के चंगुल से अपने को मुक्त रखकर, दिशा-दिशाओं में अपने को बिखेर चुका है !

लेकिन, कभी किसी का हाथ पकड़कर वह उसे अपने घर ले आया था, उसकी मौजूदगी के बारे में, चाहे हमेशा सजग न भी हो, लेकिन जब-जब उसका ख्याल आ जाता है, उसे हमेशा अपने करीब महसूस करता है ! जिसकी खूबसूरती पर दीवाना होकर, उसे अपने घर की लक्ष्मी बनाकर ले आया था, उसे देखने की फुरसत भले न हो, लेकिन उसकी खुशबू मानो हवा में घुली-मिली रहती है ! यह सब वह और शिद्दत से महसूस करता है, जब कभी-कभार ही सही, उसका मन अवश-सा उसकी ओर खिंचने लगता है या वह उसके करीब आता है ! हां, मौजूदगी का अहसास उसे तब भी होता है, जब उसकी गोल-मोल-सी या सकपकायी

हुई हंसी देखता है या उसकी असबद्ध बातचीत या मंतव्य सुनता है। हर इंसान के दिल में, खासकर मर्द के अंतरमहल में इस तरह की खूबसूरत पहेली, ऐसी हंसी या असलग्न बातें हलचल जमा देती है।

विपुलानंद को अभी तक अपने सवाल का ठीक-ठीक जवाब नहीं मिला था ! रीना ने अपने रोने की वजह अब तक नहीं बतायी थी। जो बताया था, वे बेमतलब और बेकार की बातें थीं। लेकिन उसने दुबारा नहीं पूछा। उसके चेहरे की तरफ देखते हुए उसे अपने सवाल का जवाब बखूबी मिल गया था। हां, उसका मन कह रहा था, उसका अंदाजा गलत भी नहीं था। उसका ख्याल था, उसके इस आवेग का कारण सिर्फ अकेलापन है ! कहीं वह बेहद अकेली है, शायद इसीलिए इतनी भावुक हो रही है, इसके अलावा और कोई वजह नहीं हो सकती।

रीना की बातों पर विपुलानन्द हंस पड़ा। अचानक वह उससे और सट गया, उसे भी अपने और करीब खींच लिया। उसे बाहों में कसकर प्यार की बौछारों में उसे विह्वल कर डाला।

लेकिन नारायणी आज यह सब नहीं चाहती थी। समर्पण के बजाय उसने अपने को समेट लेने की कोशिश की। आज वह अकेली रहना चाहती थी··· बिलकुल अकेली ! अकेले में कम से कम रो लेने का सुख तो मिलता। शायद तभी वह उबर पाती। अचानक इस तरह की बाधा उसे अखर गयी। वह नहीं चाहती कोई उस पर दया करे। लेकिन फिर भी नारायणी हंसती रही; पति की बरजोरियों पर भी ऐतराज नहीं किया। असल में उसने अपने से लड़ने की भी कोशिश छोड़ दी।

नारायणी हौले-हौले हंस रही थी, लेकिन उसकी निगाहें एकटक उस आदमी का चेहरा पढ़ने में व्यस्त थीं ! यह आदमी इस वक्त अपने को कितना उदार समझ रहा होगा ! उसके चरित्र और आदतों के साथ, उसका कर्तव्य-बोध, कितने खूबसूरत ढंग से घुलमिल गया था ! नारायणी की उंगलियां उसके बाल सहला रही थीं ! ऐसा वह पहले भी किया करती थी। लेकिन अब उसके सिर पर पहले जितने बाल नहीं रहे। अब तो आधे से ज्यादा बाल सफाचट हो चुके हैं। पहले मुट्ठी भर बाल थे। नारायणी उन बालों में हौले-हौले उंगलियां फेरा करती। कभी-कभी उसकी उंगलियां बीच में ही थम जातीं। वह उसके सिर को कई-कई हिस्सों में बांटती हुई मान भरे स्वर में कहती, "इत्ते-से हिस्से में आयरन एंड स्टील, इत्ते-से में केमिकल्स, इत्ते में कपड़ा-मिल, यहां जूट मिल और यनी एक्सपोर्ट—लो, सारा हिस्सा तो कामों से ही भर गया, अब मेरी जगह कहां है ?"

जवाब में विपुलानंद उसके होठों या सीने पर झुक जाता, ना, उस वक्त वह किसी तरह की बाधा या बहाना नहीं मानता था।

लेकिन यह सब बहुत पहले की बात है। नारायणी को यह सब मानो युगों

पुरानी बातें लगती हैं !

हां, अगर वह चाहे, तो आज भी उसी तरह मान कर सकती है। उसी तरह उसके सिर को सैकड़ों हिस्सों में बांट सकती है। अब तो और भी कई हिस्से कर सकती है। अब तो यह सर और भी बहुत सारे हिस्सों में बंट चुका है···बंटता जा रहा है ! टी गार्डेन ऐंड टी एक्सपोर्ट, एल्युमिनियम-माइका-मैंगनीज, ऑटोमोबाइल वर्कशॉप, बैंक-चेयरमैन ऑफ दि डाइरेक्टर्स ! हां, आज भी वह पहले की तरह दुलार भरे लहजे में धाराप्रवाह शिकायतें कर सकती है ! उसे ऐसे ढेरों नाम रटे हुए हैं। अगर वह उसी तरह बोलना शुरू करे, तो बेहद सुंदर, संतुलित ऐक्टिंग का मौका मिल जाएगा। उसकी शिकायतें कहीं से बेमेल भी नहीं लगेंगी। खैर, इस तरह की शिकायतें भले ही न कर रही हो, लेकिन वह हंस-हंसकर कुछ इसी किस्म की ऐक्टिंग नहीं कर रही ? घड़ी के कांटों से बंधे हुए मियां-बीवी के प्यार-मुहब्बत और हम-बिस्तर होने की ऐक्टिंग !

ना ! नारायणी ने कोई बात नहीं कही ! बेकार बातें बढ़ाकर, वह ऐसे तकलीफदेह ऐक्टिंग की मियाद और नहीं बढ़ाना चाहती। वह तो चाहती है, यह नाटक जल्दी से जल्दी आखिरी अंक तक पहुंच जाए !

लेकिन जो शख्स फर्ज के तकाजे पर उसके पास आया है, वह दखल लेना भी जानता है। फिलहाल उसे कोई जल्दी नहीं थी। नाटक की भूमिका तैयार करने में भी कहीं कोई भूल नहीं हुई···

···काफी देर तक रात किसी गहरी स्तब्धता में डूबी रही। उतनी देर नारायणी बिलकुल ब्लैंक हो गई थी। बस, बेजान काठ की तरह बिस्तर पर पड़ी रही, समर्पण के सेतुपथ पर गुम होते हुए, वह क्या किसी भावहीन तंद्रा के साम्राज्य में पहुंच गयी थी ? उसे ठीक-ठीक नहीं मालूम ! उस आदमी के बिस्तर से नीचे उतरते ही, वह जहां थी, मानो फिर वहीं लौट आयी। उसने आंखें खोलकर, इधर-उधर देखा !

उसे सोयी हुई जानकर विपुलानंद इतमीनान से बिस्तर छोड़कर उठ खड़ा हुआ ! उससे निगाहें मिलते ही, वह हलके से मुस्करा दिया, "बहुत रात हो गयी है, अब तुम सो जाओ।"

नारायणी ने भी बरबस होठों पर मुस्कराहट बिखेरकर उसे विदा दी। उसकी आंखें जल रही थीं; वह चुपचाप दरवाजे तक उसे जाते हुए देखती रही। नीरस, चुभती हुई निगाहें ! 'दान' बेहद निर्मम हथियार होता है। रोने की ताकत तक तोड़-मरोड़कर, बे-नामोनिशान कर जाता है।

···उसकी रग-रग और पोर-पोर में यानी उसके समूचे अस्तित्व के कण-कण

ने इस बात का स्पर्श लगा हुआ था।

जो उम्मीदें उभार रखा है, इसका अपनी हलचल को [illegible] और [illegible] हुआ है, इस बात को शायद उसे एक बार भी स्वीकार नहीं ओखेगा, उसके हिसाब के खाते में यह एक घंटे का [illegible] दान के रूप में दर्ज हो जाएगा।

आदरणीय मिल्सनोज के अनोखे दान की खबर, उनके कृपा-पात्रों को हमेशा रहती है। इन बुर्जुग व्यक्तियों के पास ढेर सारी मशीनें हैं और इनसे भी कई गुना ज्यादा कारीगर हैं, जो इन मशीनों को चलाते हैं!

...एक बार इसी मालिक के किसी पदस्थ कर्मचारी के प्रति, उसके ईर्ष्या-लु अधिकारी ने नाइंसाफी की थी। यू मोटी तनख्वाहवाले चार-चार हजार अफसर भी, उन मिल्सनोज से, जब तक नही मिल सकते। अकेले मे मुलाकात करने के लिए उन ऊंचे अफसरों को भी काफी पापड बेलने पड़ते हैं; किसी सुनहरे मौके का इंतजार करना पड़ता है। उसके बाद जायज अर्जी अगर अच्छे तरह पेश की गयी, तो उनका उदार मालिक उसे पल भर मे मजूर कर लेता है। नाइन्साफी के शिकार उस कर्मचारी ने भी काफी दौड-धूप की और उसे मिलने की इजाजत भी मिल गयी। हालाकि अपने ऊचे अफसरो के काम मे मालिक का हस्तक्षेप यहा के शिष्टाचार के खिलाफ था। लेकिन उस कर्मचारी का आवेदन उसे सगत लगा, उसने काफी ध्यान से उसकी फरियाद सुनी, सबधित कागजात मगाकर सच-झूठ की जाच की। नतीजा यह हुआ कि जिस कर्मचारी को ऊपर-वाले अफसर की क्रुद्ध नजर जलाकर एकदम से भस्म करनेवाली थी, उसकी अचानक तकदीर ही पलट गयी।

हिसाब के खाते में मालिक का यह उदार दान दर्ज कर लिया गया था। मालिक की इस विराट उदारता की खबर हर किसी के कानों तक पहुच गयी। उसकी तारीफ में हर किसी का सिर झुक गया।

हर किसी को यह विश्वास हो गया कि आवेदन अगर ठीक जगह पर पहुंच जाए, तो उसकी सुनवाई जरूर होती है। बिलकुल उसी तरह नारायणी का आंसू भरा आवेदन शायद यथास्थान पहुंच चुका था। उसे उसके रोने की कोई वजह नजर में नहीं आयेगी, इसीलिए आज यह घंटे भर का सग-सुख भी उसका दान बन रहा था।

यह रात किसी तरह गुजर जाये, तो मशीन दुबारा चल पड़े, सब भी चल पड़े। जिन्दगी की अनगिनत शिराओं में नयी लगन, नये उद्यम का ताप बिखर जायेगा। दुनिया का नजारा दुबारा सजीव हो उठेगा। खान-पीना का नया रंग शुरू होगा। इस रात के सारे निशान मिट जाएंगे। लेकिन किसी के हिसाब [illegible] इस रात के इस महादान का सबोध हमेशा-हमेशा के लिए सुनहरे अक्षरे

हो जायेगा। हां, यह दान कभी नहीं मिटेगा।

नारायणी उठकर बैठ गयी। उसने अपने अस्त-व्यस्त कपड़े ठीक किये। यह पंखा उसी वक्त से, फुल स्पीड में चल रहा था, फिर भी देह की आग ठंडी नहीं हुई। जाने कौन-सा जहर-माहुर वह पीकर लौटी है, सारी देह फुंकी जा रही है। इसके अलावा अकेलेपन की इस मनःस्थिति में, जो रात उसने सिर्फ अपने लिए चाही थी, वह भी बेहद निर्मम भाव से धज्जी-धज्जी होकर बिखर गयी। पति की इस उद्दाम प्यास को वह वासना की दस्यु-वृत्ति भी कह पाती, तो शायद इसे बरदाश्त करना सहज हो जाता। लेकिन नहीं, यह तो किसी बड़े घराने के, बड़े आदमी के बड़े मन का— दान था! हां, आकाश जितना लंबा-चौड़ा घराना!

वह बिस्तर छोड़कर उठ आयी। घड़ी पर निगाह डाली। रात के ग्यारह बज रहे थे! अभी तक पार्टीवाली साड़ी भी नहीं बदली गयी थी। एक मामूली-सी साड़ी उठाकर, वह बाथरूम में घुस गयी।

उसने पूरे दम में नल खोल दिया। पानी की तेज धार गिरने लगी। वह जी भरकर नहाती रही। आंख, मुंह, गरदन पर अलग से छींटे मारे। अगर वह फुहारे के नीचे खड़ी हो जाती तो शायद ठंडक मिलती। लेकिन झौंवाभर बाल, जाने कितनी देर में सूखें! उसने चुल्लू में पानी भर-भरकर सिर पर भी छिड़क लिया।

अब कमरे में पंखे के नीचे खड़े होकर, सचमुच आराम लग रहा था। उसने सिर्फ अपनी साड़ी-ब्लाउज ही नहीं बदले, थोड़ी देर पहले किसी ने उस पर रहम खाकर उसके पोर-पोर को अपना स्पर्श-सुख दिया था, उसने उस अनचाहे दान का स्पर्श भी धो डाला। आईने के सामने खड़े होकर, उसने बाल भी ठीक कर लिये; चेहरे पर भीनी-भीनी खुशबूवाला पाउडर भी फेर लिया! लेकिन इस वक्त उसमें इतना भी साहस नहीं था कि आईने में ही सही, एक बार अपने को अच्छी तरह देख सके। आईने में अपनी सूरत देखते हुए, अपने ही प्रति अजीब-सी प्रतिहिंसा जाग उठती है। अपने से ही बदला लेने का मन करता है।...दत्त ने उसे आईना देखने को कहा था। उसने अपने को बहुत-बहुत देखा है—अपने कमरे के आईने में और बाहरी लोगों की नजरों के आईने में भी!

...कमरे में अच्छा नहीं लग रहा है। अगर नींद आ जाती तो वह सो जाती। लेकिन आंखों में नींद का कहीं अता-पता नहीं। इसके अलावा सोने का खास मन भी नहीं है। इस महल में, बिलकुल मैदान की तरह लंबी-चौड़ी एक छत भी है। पता नहीं, इन बारह सालों में, वह बारह बार भी उस छत पर गयी है या नहीं! इस महल में रहनेवाले लोग आकाश देखने के लिए छत पर नहीं चढ़ते; अपने कमरे में बैठे-बैठे फाइल उलटते हुए ही, आकाश दिखाई दे जाता है। इतनी रात गये छत पर जाना भी शायद पागलपन होगा। बाहर के बरामदे

में खड़े होकर ही समूचा आकाश देखा जा सकता है।

नारायणी कमरे से बाहर निकलकर बरामदे की तरफ बढ़ी। लेकिन अचानक किसी पर नजर पड़ते ही, बुरी तरह चौंक उठी। उसके पांव जहां के तहां रुक गये। उसके और राजा के कमरे के बीचोंबीच, उस घुप्प अंधेरे में, भूत जैसा वह कौन खड़ा है? वह भी एकटक इधर ही घूर रहा था।

नारायणी के मुंह से एक अस्फुट चीख निकलने वाली थी! अचानक वह संभल गयी। उसे देखकर वह कुछ ज्यादा ही चौंक गयी थी, लेकिन अगर जरा गौर से देखती तो झट पहचान जाती। इतनी लंबी-चौड़ी मूरत इस घर में केवल एक ही है!

"कौन? गब्बू? वहां क्यों खड़े हो?"

गब्बू एक-एक कदम नापता हुआ, उसके सामने आकर खड़ा हो गया। अंधेरे में उसकी निगाहें अपनी दीदीमणि के चेहरे पर जमी हुई थीं। इस तरह घूरना अशोभन है—खासकर इस वक्त! लेकिन गब्बू को इतनी बुद्धि-विवेक नहीं! उसके दिमाग में अगर कोई बात घुस जाये, तो वह वक्त-बेवक्त का ख्याल नहीं करता। उसके चेहरे पर ईषत उद्वेग भरी बेचैनी थी! उसने जवाब न देकर अपनी तरफ से सवाल किया, "तुम्हार का तबीयत खराब है?"

यह सुनकर नारायणी उस पर बरसने ही वाली थी; लेकिन अचानक वह रुक गयी। जो, जहां भी जिंदा हैं, सब बखूबी जान गये हैं कि इन बारह सालों में पिछली नारायणी और इस नारायणी में जमीन-आसमान का फर्क आ चुका है! अब वह किसी बहुत बड़े रईस की दौलतमंद बीवी बन चुकी है—रीना बागची! लेडी बागची—! लेकिन एक ही मकान में रहते हुए, एकमात्र इसी बुद्धू आदमी को रत्ती भर भी अक्ल नहीं आयी। इस बौड़म की न तो बुद्धि ही खुली, न ही किसी किस्म के बदलाव के प्रति कोई दिलचस्पी जागी।

नारायणी ने गंभीर अनुशासन भरे लहजे में पूछा, "मेरी तबीयत की खबर लेने के लिए, तुम अभी तक सोने न जाकर, एक पैर पर खड़े हो यहां?"

गब्बू कुछ खिसिया गया। उसने चिढ़कर जवाब दिया, "हमका तो तबही से नींद आय रही है, लेकिन सोयें कैसे? तनिक देर पहिले साहब को तुम्हरे कमरे से निकलते देखा; कमरे में बत्ती जल रही है, तुम अबही तक सोयी नहीं। ई तो कब्बे से सुन रहे हैं कि तबीयत खराब है; एतनी देर में कोई डाक्टर भी नहीं बुलावत बना?" अंधेरे में नारायणी के चेहरे का बदला हुआ रंग, उसे दिखाई नहीं पड़ा। उसकी आखिरी शिकायत सुनकर नारायणी को फिर हंसी आने लगी। उसकी तबीयत ठीक रखने की जिम्मेदारी मानो दुनिया में बढ़कर उसी की है!

उसने गंभीर लहजे में कहा, "मुझे कुछ नहीं हुआ! मैं जरा भी बीमार नहीं! अब जाओ—सो जाओ!"

लेकिन गव्वू को मानो विश्वास नहीं हुआ ! सच वात जानने के लिए, उसका एकटक इवर-इवर ताकना उसे वेतरह अखर गया। उसकी दिदिया कहीं उसकी आंख में धूल तो नहीं झोंक रही; उसे पता नहीं चला। उसने दुवारा कहा, "साहेव तो भैया वावू से कह रहे थे, तुम वीमार हो—?"

"साहव को कुछ नहीं मालूम ! तुम अव फौरन दफा हो जाओ···"

विलकुल निश्चित न सही, लेकिन थोड़ा-वहुत आश्वस्त होकर, वह राजा-वावू के कमरे की ओर मुड़ा। ठीक उसी वक्त नारायणी को कुछ याद आ गया।

"जरा, रुको तो ! सुनो—"

गव्वू उलटे पांव वापस लौट आया।

"आज शाम तुम घर पर ही थे या एकाध वार वाहर भी निकले थे ?" उसने सवाल का मतलव समझे विना ही जवाव दिया, "वाहर गये तो थे दो-एक वार ! काहे ?"

"हम लोगों के गेट के आसपास कोई जान-पहचान का आदमी नजर आया था ?"

"नहीं तो ! ऊंहा भला कउन दिखाई देगा ?"

"अच्छा, छोड़ो ! तुम जाओ !" यह कहते हुए नारायणी खुद अपने कमरे की ओर मुड़ गयी ! ···हां ! उसे भ्रम ही हुआ होगा ! अगर कोई होता, तो कम कम से गव्वू की नजर जरूर पड़ती। असल में यह सव उस वकवास-सी चीज का असर है। उसने कुछ का कुछ समझ लिया।

लेकिन···उसका मन कह रहा था; उसने गलत नहीं देखा।

उस लैंप-पोस्ट के नीचे···वहुत···वहुत पहले का कोई अतिशय जाना-पहचाना चेहरा, उसकी तरफ देखकर हंसा था ! हां, वह उसी को···यानी नारायणी को देख रहा था।

अव सोने की कोशिश वेकार है। नारायणी विस्तर के किनारेवाली दीवार से लगे एक सोफे पर आराम से पसर गयी। सामने पड़ी मेज पर से एक साप्ताहिक पत्रिका उठाकर पन्ने पलटने लगी ! ना, वह कुछ देख या पढ़ नहीं रही थी। रह-रहकर उसका मन···गेट के वाहर···उस पार भटक रहा था। किसी हंसी-भरे, खुशीभरे, दुखभरे, दर्दभरे सपने के उस पार !

लेती है। वैसे यहां की बोली सीखे बिना उपाय भी क्या है? उसने जो बोली सीखी थी, वह तो यहां कोई भी नहीं बोलता! अब नंद'दा और बब्बू जरूर उसी जुबान में बातें करते हैं लेकिन वे लोग तो बहुत बाद में आये थे···

···कुछ दिनों तक नारायणी सिर्फ अपनी मां के साथ, अपनी पुरानी बोली में बातें करती थी। लेकिन उसकी मां, बाकी लोगों के साथ खूब मजे-मजे में उनकी गवई जुबान में ही बातें करती थी। यह बात अलग है कि वह बोलती ही बहुत कम थी। लेकिन···जहां तक उसे याद पड़ता है, पहले मां इतनी चुप नहीं रहती थी! कभी वह बेहद हंसमुख थी। उसके साथ खूब-खूब खेलती-हंसती थी। लेकिन यह सब तो पता नहीं कितने दिनों पहले की बात है। शायद कलकत्ते की बातें हैं, जहां वे लोग कभी रहा करते थे। मां की वह हंसती-खिलखिलाती तसवीर आज भी उसकी आंखों के आगे तैर जाती है।

हां, तो पहले वाली बोली—जिस बोली में नद'दा और बब्बू बातें करते हैं—वह प्रायः भूल ही चली थी! अब वह भी यहां के लोगों की तरह, शब्दों को खींच-खींचकर बातें करती है। वैसे, उसका ख्याल है, अगर वह संकोच छोड़ दे, तो वह भी नद'दा या बब्बू की भाषा बोल सकती है। लेकिन अब तो वह चाहकर भी नहीं बोल पाती, उसे शर्म आती है।

पद्मा नदी के किनारे बैठकर, रोज-रोज जहाज देखना, उसके लिए बेहद जरूरी हो गया था। खासकर गोयालंद का जहाज--जो जहाज कलकत्ता आता-जाता है! कलकत्ता आने-जानेवालों के साथ मानो उसका कोई अव्यक्त रिश्ता जुड़ गया था। राहगीरों के जाने-आने का सुख और रोमांच भी मानो उसी का था। कलकत्ते से आने वाला जहाज, यहां सुबह-सुबह ही पहुंच जाता है, जानेवाला जहाज शाम को लगता है। इन दोनों वक्त कोई उसे घर में बांधकर नहीं रख सकता। यूं भी वह वहां से शांत-विनम्र नहीं थी! तालाब के किनारे हुड़दंग मचाती, नदी में तैरते जाती, भाग-दौड़ में लड़कों की बराबरी करती, आम-अमरूद-जामुन जैसे पेड़ों पर सरपट उतरती-चढ़ती। उसकी खुराफातें देख-सुनकर दादी दिन-रात उसे कोसती रहती और कभी-कभार मां के हाथ पड़ जाती तो वह तो उसका झोंटा ही उखाड़ डालती। लेकिन जहाज किनारे से लगते ही, वह बिलकुल निश्चल मूरत बन जाती; चुपचाप हैरान आंखों से देखा करती - उस समय उसकी आंख-कान-मन सब मानो आंखें बन जाते! जहाज के यात्री भी उसे बेहद अपने लगते थे। जहाज किनारे लगते ही, खलासी लोग यात्रियों के उतरने-चढ़ने के लिए लकड़ी का फट्टा लगा देते। चढ़नेवालों से उतरनेवालों की संख्या ज्यादा होती थी। जो लोग उतरते, वे खरीद-फरोख्त के बाद, दुबारा जहाज पर सवार हो जाते। जहाज लगने के बहुत पहले से ही, नदी किनारे एक मेला-सा बैठ जाता था। रस-गुल्ले, संदेश, खीर, दूध, खिलौने, बांस की पिटारी---जाने कितनी दूर-दूर के गांवों

उसी शिशु उम्र में नारायणी ने और भी बहुत कुछ जान-सीख लिया था। वह बहुत-सी बातों की खबर भी रखने लगी थी, भला नंद'दा जिसके साथी हों, उसके लिए खबरों की कोई कमी है? नंदा'दा उसे इतना मानते हैं, यह देख-देखकर जाने कितने लड़के-लड़कियां उससे ईर्ष्या भी करते थे। कुछ भी जानना हो, फ्रॉक उड़ाते हुए या कमर में साड़ी कसे हुए, बस, भाग कर पहुंच जाओ, नंद'दा के पास! नंद'दा चाहे जितने भी व्यस्त हों, सारा कुछ समेटकर किसी कोने में सरका देंगे और सबसे पहले हंसते-मुस्कराते सारी बातों और सवालों का जवाब दे डालेंगे! इसीलिए इतनी नन्हीं-सी उम्र में ही नारायणी ने बहुत कुछ जान-सीख लिया है! वैसे उन दिनों में उसे कोई भी नारायणी नहीं कहता था! बुलाते समय उसका नाम जाने कितनी-कितनी तरह से बिगाड़ दिया जाता था! दादी जब गुस्से में होतीं, तो वे उसे 'मुहझौंसी' कहा करती थीं, खुश होतीं, तो 'सुवचनी' पुकारती थीं। मां और अड़ोसी-पड़ोसी उसे बुलाते थे—नारानी! मुहल्ले के शरारती लड़के उसे 'नेड़ी' कहकर चिढ़ाते थे। नेड़ी-यानी गंजी या बेलमुंडी! मछुवारे, माली या कुम्हारपाड़ा, केसारीपाड़ा के लोगों के लिए वह मां-लक्ष्मी! मां-दुर्गा थी! गब्बू उसकी नन्हीं उम्र में जरा देर से आया, अतः वह उसे बुलाता था—दीदी मणि! और नंद'दा...? वे तो उसे जाने कितने नामों से बुलाते थे—मुनिया, बिट्टी! नंद'दा ने ही उसे बताया था कि वे लोग जहां रहते हैं, वह जगह पद्मा नदी के बीचोबीच है! छोर पर नारायणगंज, परली तरफ गोयालंद। इन दोनों गांवों के बीच जहाज चलते हैं! हालांकि नंद'दा उसे 'स्टीमर' कहते थे, लेकिन नारायणी को 'जहाज' ही कहना अच्छा लगता था। रोकने पर भी वह जहाज ही कहती थी! हां, तो इस नदी में और भी बहुत-से जहाज आते-जाते। लेकिन गोयालंद के जहाज के प्रति ही उसका सबसे ज्यादा मोह था। उस जहाज से पद्मा पार करके कलकत्ता पहुंचा जा सकता है। कलकत्ता तो मानो उसके सपनों से जुड़ा हुआ था! उसने सुना है, वह भी कभी ऐसे ही किसी जहाज में चढ़कर कलकत्ते से यहां आयी थी! लेकिन उसे कुछ याद नहीं! याद हो भी कैसे? जब वह आयी थी, तब कुल चार साल की थी। वैसे उसे अपनी मां पर बहुत गुस्सा आता था। जहाज में आते वक्त जरूर उसे सुला दिया होगा, वरना उसको थोड़ा-बहुत, कुछ तो याद रहता!

उसी चार साल की उम्र की, जाने कितनी सारी बातें तो उसे याद हैं! उसे याद है, यहां के लोग शब्दों को खींच-खींचकर बोलते थे, वह हैरान होकर देखा करती थी! उनकी आधी से ज्यादा बातें तो उसकी समझ में ही नहीं आती थीं! शब्दों को खींच-खींचकर बोलना, अजब-अजब बातें करना—यह सब सुन-सुनकर उसे बहुत हंसी आती थी! उसकी बोली बिलकुल अलग थी, अतः लोग उसकी हंसी भी उड़ाते थे! खैर, अब वह यहां की सारी बातें समझ लेती है, बोल भी

है। वैसे यहां की बोली सीखे बिना उपाय भी क्या है ? उसने जो बोली सीखी
यह तो यहां कोई भी नहीं बोलता ! अब नद'दा और गब्बू जरूर उसी जुबान
तें करते हैं लेकिन वे लोग तो बहुत बाद में आये थे···
···कुछ दिनों तक नारायणी सिर्फ अपनी मां के साथ, अपनी पुरानी बोली
बातें करती थी। लेकिन उसकी मां, बाकी लोगों के साथ खूब मजे-मजे में
की गवई जुबान में ही बातें करती थी। यह बात अलग है कि वह बोलती ही
हुत कम थी। लेकिन···जहां तक उसे याद पडता है, पहले मां इतनी चुप नहीं
रहती थी ! कभी वह बेहद हसमुख थी। उसके साथ खूब-खूब खेलती-हसती थी।
किन यह सब तो पता नहीं कितने दिनों पहले की बात है। शायद कलकत्ते की
बातें हैं, जहां वे लोग कभी रहा करते थे। मां की वह हसती-खिलखिलाती तस-
वीर आज भी उसकी आंखों के आगे तैर जाती हैं।

हां, तो पहले वाली बोली—जिस बोली में नद'दा और गब्बू बातें करते है –
वह प्रायः भूल ही चली थी ! अब वह भी यहां के लोगों की तरह, शब्दों को खींच-
खींचकर बातें करती है। वैसे, उसका ख्याल है, अगर वह सकोच छोड दे तो वह
भी नद'दा या गब्बू की भाषा बोल सकती है। लेकिन अब तो वह चाहकर भी
नहीं बोल पाती, उसे शर्म आती है।

पद्मा नदी के किनारे बैठकर, रोज-रोज जहाज देखना, उसके लिए बेहद जरूरी
हो गया था। खासकर गोवालद का जहाज—जो जहाज कलकत्ता आना-जाना
है ! कलकत्ता आने-जानेवालों के साथ मानो उसका कोई [illegible] रिश्ता जुड
गया था। राहगीरों के जाने-आने का सुख और रोमाच भी मानो उसी [illegible] था।
कलकत्ते से आने वाला जहाज, यहा सुबह-सुबह ही पहुच जाता है [illegible] जहाज
शाम को लगता है। इन दोनों वक्त कोई उसे घर में बाधकर नहीं रख सकता।
यू भी वह कहीं से शात-विनम्र नहीं थी। तालाब के किनारे [illegible] मचाती, नदी
में तैरने जाती, भाग-दौड में लडकों की बराबरी करते [illegible]-अमरूद-जामुन
जैसे पेडों पर सरपट उतरती-चढती। उसकी [illegible] देख-सुनकर दादी दिन-
रात उसे कोसती रहती और कभी-कभार मां के [illegible] तो वह तो उसका
झोंटा ही उखाड डालती। लेकिन जहाज [illegible] ही वह बिलकुल
निश्चल मूरत बन जाती, चुपचाप हैरान [illegible]
आंख-कान-मन सब मानो आखें बन जाते [illegible] भी उसे बेहद [illegible]
लगते थे। जहाज किनारे लगते ही [illegible] उतरने-चढने के लिए
लकडी का फट्टा लगा देते। [illegible]
थी। जो लोग उतरते, वे [illegible]
जहाज लगने के बहुत पहले से ही [illegible]
गुल्ले, सदेश, खीर, दूध [illegible]

के लोग अपना माल वेचने को इकट्ठा होते थे ! राहगीरों की यह खरीद-फरोख्त उसे वहुत अच्छी लगती थी ! नारायणी यह सब नजारा अभिभूत होकर देखा करती।

जहाज किनारे लगते ही, लोग उतर आते, मोल-भाव करते, चीजें खरीदते और नारायणी सिर्फ मुग्ध निगाहों से उन्हें एकटक देखा करती थी।···वैसे अपने गांववालों का मोल-भाव करना उसे बिलकुल भला नहीं लगता था। ये विचारे राहगीर कलकत्ते आते-जाते, यहां जरूरत का सामान खरीदने उतरते थे। ये तो मेहमान थे ! ये जो दाम दे दें, उसी में राजी हो जाना चाहिये ! अगर फायदा कम हुआ या विलकुल नहीं हुआ, तो भी क्या आता-जाता है ? लोग ज्यादातर घटिया माल ही तो वेचते हैं ! नारायणी को तकलीफ भी होती थी—वेचारे राहगीर कितने भूखे होंगे ! उनके पास शायद ज्यादा पैसे नहीं हैं इसीलिए तो वे कम से कम पैसों में खरीदने की कोशिश करते हैं—ये गांववाले इतनी-सी बात आखिर क्यों नहीं समझते ?

···एक वार एक आदमी, गोद में एक वच्चा लिये रसगुल्ला खरीदने उतरा था ! गोल-मटोल, सोना-मोना सा वच्चा ! लेकिन मोल-भाव में पटरी नहीं बैठी, इसलिए नहीं खरीद पाया ! रसगुल्ले के लिए मासूम वच्चा कितना-कितना रोता रहा ! रसगुल्ला खरीदे विना, वह जहाज में लौटने को तैयार ही नहीं था। नारा-यणी की भी आंखें भर आयीं। उसका मन हुआ, वह भागकर जाए और अपनी मां से पैसे लेकर, उस वच्चे को रसगुल्ला खरीद दे। लेकिन, तव तक जहाज रवाना भी हो जाएगा। वैसे भी, मां से पैसे मांगने पर, पैसे मिल ही जाएंगे या नहीं, इस वारे में उसे शक था। खैर, वच्चे को और कोई मिठाई दिलाकर, आदमी ने उसे वहला लिया और जहाज पर लौट गया। लेकिन जो आदमी रसगुल्ले वेच रहा था, उसे नारायणी वहुत दिनों तक माफ नहीं कर पायी।

इस तरह रोज-रोज खड़े रहकर, कभी-कभी वह भी संकोच में पड़ जाती थी। एक वार घर से वह वेल और कमरख ले आयी थी और किसी भले आदमी को देना चाहा था। वह बूढ़ा उसकी तरफ हैरानी से देखता रहा, उसके वाद पूछा, "कितना देना होगा ?" उसे तो इसका मतलव तव समझ में आया जव उसे जेव से पैसे निकालते देखा, वह पिटारी फेंककर, सिर पर पांव रखकर भाग खड़ी हुई। मां को वताया तो मां ने भी उसकी पीठ पर दो हाथ जमा दिये। सिर्फ नंद'दा सारा किस्सा सुनकर हंस पड़े थे।

जहाजवालों की एक और रीत देखकर वह हैरान होती थी ! वह कभी फ्रॉक पहनती, कभी धारियोंवाली साड़ी—लेकिन घरवालों की नजर में वित्ते भर की छोकरी को कोई कुछ समझता ही नहीं था ! लेकिन जहाज और घाट के प्रायः सभी लोग उसे घूर-घूरकर, मुड़-मुड़कर देखा करते। कोई-कोई तो खुद आगे वढ़कर

उसमें दो-चार बातें भी कर लेते थे ! मीठी-मीठी, अच्छी-अच्छी बातें ! कोई-कोई तो उसमें कुछ खाने की भी जिद करते। इसीलिए नारायणी अपने भरसक दूर ही खड़ी रहती, दूर से ही तमाशा देखा करती।

उसके बाद जहाज रवाना होने का वक्त हो जाता। मस्तूली सीढ़ी और पटरा उठा लेना। भक-भक धुआं छोड़ते हुए स्टीमर सरकने लगता। जहां तक दिखाई पड़ता, नारायणी स्टीमर को जाते हुए देखा करती। उसके नन्हें-से दिल में कैसा खालीपन भर जाता ! वह बुद्धुओं की तरह इधर-उधर देखा करती। लेकिन उसका दिल उस वक्त भी धड़कता रहता, सपनों का जाल बुनता रहता। वह भी जब बड़ी हो जाएगी, तो पद्मा नदी पार कलकत्ते पहुंचेगी। कलकत्ते से आना उसे याद नहीं, लेकिन जब वह जाएगी, तो सारी राह आंखें भर-भरकर नजारा देखा करेगी —यह निश्चित है।

लेकिन वह क्या कलकत्ते में ही बस जाएगी ? पद्मा नदी के पास कभी नहीं आयेगी ? नहीं, यह ख्याल भी उसे बेहद बुरा लगता। बीच-बीच में अगर उसने नदी नहीं देखी, तो उसे नींद ही नहीं आयेगी। नंद'दा कहते हैं—बड़ी होकर वह बहुत महान बनेगी, इसीलिए तो वे उसे लिखा-पढ़ा रहे हैं। नारायणी ने सोच लिया है, बड़ी होकर वह नौकरी करेगी। नौकरी ही नहीं की, तो इतना लिखने-पढ़ने से क्या फायदा ? और फिर नौकरी किये बिना वह महान कैसे बनेगी ? इसी-लिए उसका यह जानने का बहुत मन करता है कि लड़कियां जहाज में नौकरी कर सकती हैं या नहीं ! हालांकि, इन जहाजों में बहुत सारी औरतें भी होती हैं, लेकिन वे किसी की मां, बीवी या बहन होती हैं। ना, वे लोग नौकरी नहीं करतीं।

उसके ज्ञान-ध्यान का एकमात्र जादू-मंतर सिर्फ नद'दा है ! उसकी राय में नद'दा अल्लादीन का चिराग है ! एक दिन, जहाज रवाना करके, वह भागती-दौड़ती नंदा'दा के दरबार में हाजिर हुई, "अच्छा, नद'दा छुकरिया जहाज में काम नहीं करती ?"

उसका सवाल सुनकर नद'दा को हंसी आ गयी। उन्होंने हंसते-हंसते ही आंखें तरेरीं, "फिर तूने सवारपन दिखाया ? पहले अच्छी तरह बोल—"

नारायणी अपने सवाल का जवाब सुनने को उतावली हो उठी, "उंह ! तुम न सारी-मारी दिक करते हो ! बताओ न !"

नद'दा ने बताया, "बड़े-बड़े जहाजों में, बहुत-सी लड़कियां नर्स का काम करती हैं।"

"नरस केका कहत है ?"

नदा'दा उसे नर्स के बारे में बताते हैं। वह बड़े ध्यान से सुन-समझ लेती। उसे बहुत अच्छा लगता। बीमारी से तड़पते हुए लोगों की सेवा-टहल करना तो बहुत अच्छी बात है। वह भी तो गांव के उस छुटके बच्चे की कितनी देख-भाल करती

है ! बड़ी होकर भी वह लोगों की सेवा करेगी और दिन-रात जहाज में रहेगी, जहाज में आयेगी-जाएगी, घूमेगी ! अहा, क्या मजा आयेगा !

"हमहूं बड़ होकर 'नरस' बनिहों, नंद'दा !"

नंद'दा मंद-मंद मुस्कराते हुए सिर हिला देते। बस, उनकी यह हंसी ही उसे जहर लगती है। उसे मालूम है, नंद'दा को उसकी बातों पर कभी भरोसा नहीं होता।

वैसे पद्मा नदी पर जहाज देखने के अलावा उसके पास और भी बहुत-से काम थे। खासकर, गर्मियों के मौसम में, मौका पाते ही, अलसुबह नदी किनारे चली आती। रात के पिछले पहर में ही उसकी नींद खुल जाती। डर-भय तो उसे छू तक नहीं गया। मुंह-अंधेरे ही मां को सोती छोड़ कर, वह दबे पांव घर से बाहर निकल आती और उसके बाद—सरपट दौड़ ! मछेरे जाल-समेत अपनी-अपनी नावें लेकर नदी में उतरते। उसे देखते ही उनके चेहरे खिल जाते। बूढ़े मछेरे उसे देखते ही साष्टांग दण्डवत करते हुए कहते, "पन्नाम, मां-लक्खी ! आज हम्मर दिन बढ़िया जाई ! कोई तो अपना जाल लिये-दिये उसके करीब आकर कहता, "हम्मर जाल को जरा अप्पन ललमुनिया पइयां के अंगूठे से छू दो, मां दुग्गा ! ''जाल में एतत मछरियां आयके किलिल-बिलिल करे लगिहैं।"

उसे देखकर ये भोले-भाले लोग जाने क्या-क्या तमाशा किया करते हैं ! नारायणी को लाज आने लगती है, लेकिन उसे अच्छा भी लगता है ! वह जिसका भी जाल या नाव छू देती, उसके लिए मन ही मन प्रार्थना करती—आज उसे ढेर-ढेर मछलियां मिलें। खैर, मछलियां मिलें या न मिलें, वे लोग इसी तरह उसकी पूजा करते हुए अपनी-अपनी डोंगियां नदी में उतारते हैं। नारायणी के देखते ही देखते वे डोंगियां लहरों के झूले में झूमती-नाचती बिंदु की तरह छोटी''और छोटी हो जातीं। उसका मन कहीं दूर''नदी पार पहुंच जाता, जहां से कलकत्ते के रास्ते-घाट शुरू होते हैं। नारायणी का मन उन्हीं राहों पर तैरता हुआ, उस परी देश में जा पहुंचता।

उसने नंद'दा की ही जुबानी कलकत्ते के बारे में ढेर-ढेर सारी कहानियां सुन रखी थीं। गब्बू के पास तो ऐसी कहानियों का खजाना था। इतमीनान से पांव फैलाकर, कोई कहानी शुरू करने भर की देर होती—गब्बू धन्य-धन्य हो उठता। उसके लिए यही एक मौका होता है, जब उसकी दीदीमणि जरा थिर नजर आती है ! अतः मौका पाते ही, उसकी आंखों में कलकत्ते शहर के प्रति हजा-रहा चिराग जल उठते। लेकिन सिर्फ कहानी-किस्से सुनकर या जहाज देखकर नारायणी पद्मा-पार कलकत्ते पहुंच जाने को इतनी बेसब्र नहीं हो उठी है। इन तमाम बातों के अलावा, कलकत्ते शहर से मानो उसका किसी अजाने दर्द का रिश्ता है। हालांकि उसका कोई स्पष्ट रूप नजर नहीं आता, लेकिन अपनी धीर-

मां के चेहरे की तरफ देखते ही उसके मन में अजब-सी टीस जाग उठती [illegible] सिर्फ दर्द ही नहीं, मां की सारी सुखद स्मृतियां मानो उस कलकत्ते शहर में [illegible] हुई है। हालांकि, वे जाहिर नहीं करती है कि उनकी निगाहों से उस कल- [illegible] की यादें हमेशा-हमेशा के लिए मिट चुकी है।

शायद वह बारह साल की रही होगी, जब अपनी पिछली जिंदगी के बारे में [illegible] सोचकर एक मोटी रूपरेखा स्पष्ट हो उठी। लेकिन यह तसवीर अचानक नहीं [illegible] थी। बहुत-बहुत दिनों की बहुत सारी बातें! रह-रहकर दादी की रुलाई, [illegible] की टुकड़े-टुकड़े बातें, मां का गंभीर हाव-भाव, नदंदा के दो-चार वाक्य वगै- [illegible] —इन सबको जोड़कर, उसके दिमाग में एक धुंधली-सी तसवीर बनी है। यह तसवीर जैसे-जैसे स्पष्ट होती गयी, धारा-धार कलकत्ते पहुंचने की याद उतनी ही [illegible] होती गयी। वैसे यह तसवीर किसी खास सुख या दुख का संकेत भी नहीं [illegible], क्योंकि उनके साथ उसकी चेतना का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं। शायद इसी- [illegible] लिए यह तसवीर उसके लिए बेहद रहस्यमय हो उठी थी। हां, अद्भुत रहस्य से घिरी हुई। कलकत्ते की जमीन पर पैर रखते ही मानो उस रहस्य की सारी [illegible] खुल जाएगी।

नहीं, अपने पिता के बारे में उसे कुछ याद नहीं। हर किसी के [illegible] है, उसके भी एक बाबू थे, बस, इतना भर याद है। उसने सुना है [illegible] बहुत सुंदर थे। दादी अक्सर उनके रूप का बखान किया करतीं [illegible] ने उन्हें मां से ज्यादा सुंदर नहीं कहा। अगर कोई कहता भी [illegible] नहीं करती।

बारह साल की उम्र में बहुत पहले ही, उसने [illegible] लिया था कि वह बेहद खूबसूरत है। मुहल्ले की [illegible]। इसके [illegible] कितनी तरह से उसके रूप का बखान करती [illegible] अलावा भी जाने कैसे उसे यह भी पता चल [illegible] है [illegible] इतना आदर-मान इसीलिए करते हैं [illegible] नन्ही-सी उम्र में ही कभी-कभी उसे [illegible] है? मां या वह? उजली-धुली [illegible] यह सामने ही दिखता था।

एक बार उसने दादी [illegible]

है?"

दादी ने उसके [illegible]

[illegible] निकाली। वहीं [illegible]

कुल आगभभूखा हो जातीं। रूप के नाम से उन्हें जहर चढ़ जाता था। बहुत बाद में, उसने गब्बू से पूछा था। उसने काफी सोच-विचारकर राय दी थी—मां ही ज्यादा 'खूबसूरत' है! उसकी राय सुनकर उसे अच्छा भी नहीं लगा, बुरा भी नहीं लगा! आखिर, अपनी सगी मां ही तो थी! मां को खुश करने के इरादे से यह बात उसने मां को भी बतायी थी। लेकिन उसके अचरज का ठिकाना नहीं रहा, जब उसकी मां ने खुश होने के बजाय, उसके गाल-पीठ पर दो-चार थप्पड़ जमा दिये।

खैर, उसके एक बापू भी थे और वे खासे खूबसूरत भी थे, इस बात पर यकीन करने में, उसे कोई ऐतराज नहीं था। बापू पूर्वी बंगाल के होते हुए भी नौकरी करते थे पश्चिम बंगाल में। दद्दू भी आज की तरह बेकार नहीं थे। उन दिनों वे भी कहीं के नायब दीवान थे। उनका खूब नाम-डाक भी था। लेकिन उसने यह भी सुना है कि दद्दू की दीवानी की शोहरत बापू को खास पसंद नहीं थी। पुरानी बातें याद करते-करते कभी-कभी दद्दू ही उसांसें भरकर सब मुश्किल-मुश्किल पहेलियां बुझाया करते हैं! बापू ने जब अपनी मन-मर्जी से ब्याह कर लिया और बहुरिया लेकर घर लौटे, तो दादी को बिलकुल खुशी नहीं हुई थी! बहुरिया को देखकर दद्दू से खूब-खूब लड़ी थीं! उन्होंने कहा था, "एत्ती रूपवती की तकदीर में कब्भी सुख नहीं लिखा होता। अइस तकदीर हम्मेसा फूटी होती है। जेका रूप देखकर, खुद देवता तक का मन डोल जाए, ऐसी लड़की कब्भी घर में नाहीं लानी चाहिए।"

नारायणी को देख-देखकर भी यही सब कहा करती थीं। कभी-कभी सिर पीटते हुए पछतावा भी जाहिर करतीं, "माय की जो सांसत लिखी रही, सो हुइ गयी। ऊ तो करमजली थी ही! भगवान जाने, अब ई लड़की का का हाल बदा है?" हां नारायणी को देखते ही उनकी छाती सूखने लगती और सैकड़ों तरह की चिंता-फिक्र में डूबी रहतीं।···नारायणी को उनकी बातों का एक अक्षर भी समझ नहीं आता था।

उसने सुना है···बापू मां को लेकर कलकत्ते में रहते थे और नौकरी करते थे। नारायणी वहीं पैदा हुई थी। वे लोग बापू के एक फुफेरे भाई के साथ एक ही मकान में रहा करते थे। नारायणी के दो सगे चाचा भी थे। उन दोनों को उसने गांव आने के बाद देखा। वे लोग पूर्वी बंगाल में नौकरी करते हैं, छुट्टी में आते हैं। उनके हाव-भाव, बातचीत से नारायणी को कैसे अहसास भी हो गया था कि चाचा-चाची उसे या उसकी मां को खास पसंद नहीं करते। पसंद तो खैर दद्दू भी नहीं करते! उसे कभी पास बुलाकर प्यार-वार भी नहीं करते। एक दादी ही, हर वक्त चाहे जितना भी किच-किच मचायें लेकिन दोनों मां-बेटी की देखरेख भी करती थीं और अंदर ही अंदर शायद थोड़ा-बहुत प्यार भी करती थीं।

होत है।"

बहरहाल, नारायणी को देखते ही लोगों की आंखें जुड़ा जाती हैं, यह उसने उसी उम्र में बखूबी समझ लिया था। इसीलिए अपने बारे में कहीं खासा गर्व भी महसूस करने लगी थी—यह भी सच है। उन दिनों उसे एक और नशा भी था—बनमाली से किस्से सुनना। भूत-प्रेत, दैत्य-दानव, डायन-राक्षसी—ये सब तमाम कहानियां बनमाली को कंठस्थ थीं। इन अशरीरी जीवों का कोई जादू-टोना, कोई छल-बल, उसके लिए जानना बाकी नहीं था। दद्दू के नौकरी के जमाने से ही वह उसका खास तावेदार था। उन दिनों उसका भी खास रौब-दाब था, खास नायब साहब के खजाने से उसे तन्खाह मिलती थी। दद्दू की नौकरी जाते ही, उसकी भी नौकरी खत्म। लेकिन उन्होंने उसे अपने ही पास रख लिया। अब तो वह हमारे परिवार का ही सदस्य बन गया था, आंगन की परली तरफ उसकी अपनी झोंपड़ी थी।

भूत-प्रेत और दैत्य-दानव की कहानियों के अलावा, वह एक और कहानी भी सुनाया करता। कलकत्ते और अपने कलकत्तेवाले भाई के बारे में। दिन के बाद जैसे रात आती है, भाई के किस्से का अंत, निश्चित रूप से गब्बू पर होता! सिर्फ उस भाई के अलावा, इस दीन-दुनिया में उसका कोई नहीं था। गबा यानी गब्बू उसी भाई का बेटा था। एक बार वह कलकत्ते अपने भाई के यहां गया था, तब वह भतीजा उससे छाया की तरह लिपटा रहता। इसकी एक खास वजह यह थी कि उस भतीजे को कोई बरदाश्त नहीं कर पाता था। जन्म से ही अजीब बौड़म-बसंत और अक्खड़-गंवार! उसका बाप तो कभी-कभी मारते-मारते उसकी हड्डियां तोड़ डालता! लोग उसे 'गबेट' यानी गावदू कहकर बुलाते थे। इसीलिए उसका नाम गबा पड़ गया। बनमाली ने उसे गब्बू बना दिया। वह जितने दिन कलकत्ते में रहा, अपने भतीजे पर किसी को हाथ नहीं उठाने दिया। अतः भतीजा उसका अंध-भक्त बन गया और हर वक्त अपने जेठू के साथ रहने लगा। आते वक्त जेठू और भतीजे क्या गले मिल-मिलकर रोये! उनकी रुलाई का हाल सुनकर, नारायणी की गंभीरता भी हवा हो जाती। वह फिक से हंस देती। रात को मां की बगल में लेटी-लेटी अपने-आप ही ठहाके लगाती रहती।

हां, तो बनमाली के लौट आने के बाद, गब्बू को लेकर खासा हंगामा हो गया। बाप ने उसे मारते-मारते अधमरा कर डाला लेकिन उसकी एक ही जिद—वह जेठू के पास जाएगा। नींद, खाना-पीना···सब हराम। बस, एक ही रट—वह अपने जेठू के पास रहेगा। बाप को लाचार होकर, किसी आदमी के साथ बेटे को जेठू के पास भेजना ही पड़ा। ऐसे बीहड़ बेटे से रिहाई पाकर, उसकी तो खैर जान बची। गब्बू यहां तीन साल तक अपने जेठू के पास रह गया। नारायणी लोगों के आने से कुछ ही दिनों पहले, बाप आकर अपने बेटे को लिवा ले गया। बनमाली

अक्सर आंखों में आंसू भरकर कहता, "वह कसाई बाप जरूर उस बिचारे बच्चे को उसी तरह मार-पीटकर अधमरा बना देता होगा!" गब्बू का जिक्र आते ही बनमाली की आंखें भर आतीं।

··· एक दिन बनमाली फफक-फफककर रो पड़ा—उसके भाई की बीवी यानी गब्बू की मां मर गयी थीं। उसकी वह बेभाव रुलाई देखकर नारायणी को लगा था, उसके आंसू नदी की धार के साथ बहते हुए सीधे कलकत्ते पहुंच गये हैं। कुछ ही महीनों बाद, एक दिन वह खासा नाराज दिखा। भाई ने दूसरा ब्याह कर लिया था। उसने लिखा है—गब्बू को लेकर काफी कलह मचा है। बाप ने उसे दो-तीन जगह नौकरी दिलायी, लेकिन गब्बू ऐसा बौडम निकला कि कहीं भी टिक नहीं पाता। घर में हर वक्त झगड़ा-झंझट और कलह मचाये रहता है। अब वह अठारह-उन्नीस साल का गबरू जवान हो चुका है, बाप के लिए उस पर काबू रखना मुश्किल हो गया है। उसे दुत्कारकर, घर से बाहर निकाल देने पर भी वह कहीं नहीं जाता। उसकी देखा-देखी, उसके और भाई भी बिगड़ते जा रहे हैं।

कुछ दिनों बाद बनमाली ने खुशी से गद्गद होकर यह खबर भी सुनायी कि उसका गब्बू वापस आ रहा है। अब वह यहीं रहेगा, खेती-मजूरी करेगा—आराम से गुजारा हो जाएगा। बनमाली ने खुद ही भाई को लिखा था—गब्बू को उसके पास भेज दे। गब्बू आने को फौरन राजी हो गया और पिता ने भी ऐसे उत्पाती से जान छुड़ाकर राहत की सांस ली। बनमाली को खुश देखकर नारायणी भी खुश थी। गब्बू के बारे में इत्ती-इत्ती कहानियां सुन चुकी थी कि वह बिलकुल अपना लगने लगा था। उसे सबसे ज्यादा खुशी तब हुई, जब उसने सुना कि गब्बू जहाज से आ रहा है। जिस दिन वह पहुंचनेवाला था, नारायणी ने सुबह-सवेरे ही बनमाली को ताकीद की और खुद भी सज-संवरकर तैयार हो ली। इत्ते दिनों से वह सिर्फ जहाज ही देखा करती थी, आज तो उस जहाज में···कोई अपना आ रहा है—वे लोग उसे लेने जा रहे थे।

लेकिन अपने आदमी के प्रथम दर्शन में वह जरा हताश ही हुई। उसका अंदाज था, वह लड़का उससे कुछ ही बड़ा और लंबा-चौड़ा होगा। लेकिन वह तो खासा [illegible] और जवान-जहान मर्द निकला। किनारे पर खड़े-खड़े ही, वह उसे उठाकर [illegible] जहाज के अंदर फेंक सकता था।

जेठू का पहला वाक्य उसे आज भी याद है। उसे देखते ही, जेठू ने उसे अपने [illegible] खींचते हुए, कर्कश आवाज में कहा था—"आय गया, अभागा? चल आ! [illegible] इनका नाहीं···इनका···पन्लाम कर! चल पैर छू।" नारायणी तो मानो [illegible] में गिरी। बनमाली उसे ही प्रणाम करने का आदेश दे रहा था। उसने [illegible] नोर दिदिया है! हमरे कर्ता की नातिन! [illegible] [illegible], 'पन्लाम' कर!"

वह आदमी भी अवाक् निगाहों से अपनी दीदीमणि को घूरता रहा। उसकी वह डवर-डवर आंखें देखकर ही नारायणी को लगा यह आदमी कुछ बुद्धू किस्म का है। वैसे वह वनमाली की जुवानी, पहले ही सुन चुकी थी, वह खासा वेवकूफ लड़का है। लेकिन उसका लंवा-चौड़ा डील-डौल देखकर, वह कुछ घवड़ा गयी थी।

अगले ही पल उसे आगे वढ़कर पैर छूते देखकर, जाहिर हो गया कि उसे दीदीमणि पसंद आयी थी! डोरिया साड़ी में, दस साल की नारायणी, अनजाने ही जरा पीछे हट गयी, लेकिन मन ही मन कुछ आश्वस्त भी हो गयी, क्योंकि वह सुन चुकी थी, गव्वू वेवकूफ जरूर है लेकिन एक नंवर का गंवार भी है।

इसके वाद उसका वल-भरोसा दिनों-दिन वढ़ता ही गया। ऐसे एक संड-मुसंड आदमी को अपना अंध-भक्त पाकर आखिर कौन खुश नहीं होता? हुक्म करने के साथ-साथ उसकी तामील करनेवाला उसे एक भरोसेदार आदमी मिल गया। अपने हमउम्र साथियों पर रौव गांठने का मानो एक रुक्का मिल गया हो। उसके इशारे भर की देर थी, गव्वू किसी का भी सिर काटकर उसके सामने हाजिर कर सकता था! धीरे-धीरे नारायणी के मन में यह भरोसा मानो जड़ पकड़ गया कि गव्वू उसके इशारे पर कुछ भी कर सकता है। अगर वह उसे इतनी लंवी-चौड़ी नदी भी तैर कर पार करने का हुक्म दे, तो इसके लिए भी वह जान लड़ा देगा। उसके इम्तहान लेने के भी कई-कई मौके आये और वह हमेशा सच्चा सावित हुआ। उसकी वजह से गव्वू को पड़ोसियों की नाराजगी भी सहनी पड़ती, क्योंकि नारायणी का हुक्म पूरा करने में कभी-कभी दूसरों का नुकसान भी हो जाता। वे लोग दद्दू के दरवार में गव्वू के खिलाफ नालिश भी करते! दद्दू ने तंग आकर, उसे कड़ी-कड़ी सजाएं भी दीं। नारायणी उस वक्त डर से कांप जाती। लेकिन वह हैरतंगेज आंखों से देखती रही, कड़ी से कड़ी सजा झेलते हुए भी गव्वू ने कभी अपनी जुवान नहीं खोली। किसका हुक्म वजा लाने में उसने गलती कर डाली, इस वारे में उसने कभी कुछ नहीं कहा। अपनी दीदीमणि को उसने कभी मुसीवत में नहीं डाला। गव्वू के मामले में गुरु-गंभीर मां भी एकवारगी तटस्थ हो चुकी थी। वह अपनी देह पर सारे जुल्म वरदाश्त कर लेता, लेकिन मुंह से 'उफ' तक नहीं करता! लेकिन उसकी दीदीमणि पर किसीने हाथ उठाया नहीं कि उसका दिमाग गर्म हो जाता। उसकी खुराफाती आदतों के लिए, एकमात्र मां ही कभी-कभार उसे मारपीट देती थी। नारायणी जान गयी थी, उसकी सोने जैसी देह पर मां के अलावा और किसी के हाथ नहीं उठ पाते। वैसे यह वात भी उसने अपनी दादी से ही स[illegible]...उस दिन मां ने कुछ ज्यादा ही पीटा था। दादी ने उसे डांटते हुए कहा, [illegible] जैसी देह पर, [illegible] हाथ कइस उठत है, वहुरिया?" हां, एक-मात्र [illegible] -काया [illegible] नहीं करती। एक दिन की वात है—मां ने उस [illegible] के [illegible] कस ली थी। नारायणी का कसूर यह

था कि वह किसी और के पेड़ पर चढ़कर अमरूद खा रही थी। उस घर के लड़के ने उसे डाटा-धमकाया था। नारायणी को गुस्सा चढ़ गया और उसने एक सख्त-सा अमरूद उसके माथे पर दे मारा। नतीजा यह हुआ कि उस बिचारे के माथे पर अमरूद के आकार का बड़ा-सा गुरमा फूल आया था! लेकिन उस दिन मा के मन की चाह मन ही में रह गयी। जाने कहां से गब्बू प्रकट हो गया और नारायणी को पलक झपकते ही हटा ले गया। उस वक्त वह मरने-मारने को उतारू हो गया था। वह मा तक को धमका गया, "अगर फिर कभी दीदीमणि पर हाथ उठाया, तो मैं भी मजा दिखा दूगा।"

खैर, वह क्या मजा दिखायेगा, यह तो वही जाने, लेकिन उसकी वह आग्नेय मूर्ति देखकर मा बिलकुल धक्क रह गयी। नारायणी का ख्याल था, मा गब्बू के नाम दादी से नालिश करेगी, दादी दद्दू से शिकायत जड़ेगी और उसके बाद खासा हंगामा मचेगा! उस दिन वह गब्बू के लिए मन ही मन आशंकित रही। उसकी इस करतूत पर वह गब्बू पर ही झल्ला पड़ी, भावी मुसीबत के बारे में भी आगाह किया। क्या होता, अगर वह मा के हाथों जरा-सा पिट जाती? बुद्धू की तरह वह बीच में धमक पड़ा, अब जो मुसीबत उसके सिर पर मडरा रही है, उससे कैसे छूटेगा? मा की शिकायत पर दद्दू भला उसकी जान-बख्शी करेंगे! ये सारी बातें चूंकि उसकी दीदीमणि ने कही थीं, गब्बू को पक्का विश्वास हो गया, उस पर सचमुच कोई भारी विपदा आनेवाली है। बस, सारे दिन वह भी लापता हो गया। लेकिन, मा ने किसी से कुछ नहीं कहा, मानो कुछ हुआ ही न हो। नारायणी की इस नाला जिंदगी में एक और आगन्तुक थे—नंद दा! उनसे जान-पहचान भी एक हैरतंगेज घटना थी।

वह आदमी अचानक कहां से और क्यों आ टपका, उसे कुछ नहीं मालूम। उससे पहले उन्हें कभी देखा भी नहीं। जब देखा, तो शायद उसकी झोबाभर दाढ़ी और रोगी चेहरा देखकर वह उसके पास फटकी भी नहीं। लेकिन उसे कुछ-कुछ आभास हो रहा था कि उस आदमी के आने की वजह से घर में दबी-ढंकी खुसपुसाहट फैल गयी है। दद्दू और दादी की दबी-ढंकी नाराजगी। सभूची नाराजगी मानो मा पर! दद्दू का चेहरा हर वक्त तमतमाया हुआ! और दादी मा पर बिफरी हुई! ना, उनकी बातचीत का मतलब स्पष्ट नहीं हो सका, सिर्फ उनका गुस्सा समझ में आ रहा था! दद्दू और दादी के चेहरों पर गुस्से के साथ-साथ कहीं त्रास का भाव भी साफ जाहिर था।

बस, एकमात्र मा का चेहरा बिलकुल भावशून्य दिखा। नारायणी को मामला कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बाहरवाले कमरे में जो आदमी पड़ा हुआ है, सारी खुसफुसाहट उसी को लेकर है, यह बिलकुल स्पष्ट था। वह आदमी दोपहर को पहुंचा था···बुखार में तपता हुआ, मानो अब गिरा कि तब गिरा! दद्दू ने

वक्त तलैया किनारे वाली ठंडी कुठरिया में सोये हुए थे; दादी अपने कमरे में थीं। उस आदमी ने नारायणी से ही पूछा था—"घर में कौन-कौन हैं?" दद्दू तलैया किनारे वाली कोठरी में हैं; यह सुनते ही उसने मां को बुला देने को कहा। मां आयी। उसके साथ उस आदमी की क्या बातचीत हुई, नारायणी को नहीं मालूम। वह भी घर के बाहर ही खड़ी थी। मां की घबराहट देखकर, उसे अजीब भी लगा। नहीं, उसके चेहरे पर घबराहट के अलावा कुछ और भी था, नारायणी ठीक-ठीक समझ नहीं पायी। थोड़ी देर बाद, मां बाहरवाले कमरे की चौकी पर जल्दी-जल्दी बिस्तर लगा रही थी। उस आदमी के लिए दूध गर्म करके ले आयी। उसने गब्बू को वैद्यजी को बुला लाने के लिए भेजा। नारायणी ने झांककर देखा, वह आदमी बिस्तर पर पड़ा छटपटा रहा था। जाहिर था कि उसे बहुत तकलीफ हो रही थी। बस, उस शाम से ही घर की आबोहवा बदल गयी थी! माहौल में एक अजब-सा दबा-ढंका आक्रोश और भय! मां के मुंह पर मानो ताला जड़ गया हो। दद्दू के चेहरे से साफ जाहिर था कि मां ने कोई भयंकर अपराध कर डाला है। शाम को जब दादी की बड़बड़ाहट शुरू हो गयी, तब जाकर नारायणी की समझ में आया—वह स्वराजी डाकुओं के गिरोह का आदमी है; उसके बप्पा का पुराना साथी। पुलिस के डर से भागता फिर रहा है। अब ऐसा न हो कि घर भर के लोगों के हाथों में हथकड़ियां पड़ जाएं। अगले दिन शाम होते न होते हथ-कड़ी की विभीषिका वाकई सच होती नजर आने लगी। उस वक्त दद्दू घर पर नहीं थे…शायद नदी किनारे गये थे। बनमाली ने दौड़कर मां, दादी को खबर दी थी—दस मील दूरवाले थाने से दारोगा जी दल-बल समेत इस गांव में दाखिल हुए हैं। कई जगहों की तलाशी लेते हुए, इधर ही आ रहे हैं। मुमकिन है, इस घर में भी आयें।

नारायणी की छाती धड़क उठी। खबर मिलते ही मां पलक झपकते ही जाने कहां गायब हो गयी। दादी पूजा-घर में ही लोट गयीं। गब्बू दद्दू को खोजने दौड़ा। बनमाली मुंह लटकाये हुए घर के दरवाजे पर खड़ा हो गया।

घर के बाहर दारोगा और उनके सिपाहियों के आने की आहट मिली। वे लोग सीधे बाहरवाले कमरे में दाखिल हुए। नारायणी ने बांस की खपच्चियों की आड़ से अंदर झांका और आसमान से बिलकुल नीचे आ गिरी। अभी थोड़ी देर पहले उस कमरे में कोई लेटा हुआ था, इसका मानो नामोनिशान तक नहीं था। वाकई यह तो बिलकुल भुतहा कांड हो गया। वैद्यजी ने दवा की जो शीशियां वगैरह भेजी थीं, उनका भी कोई अता-पता नहीं था। दारोगा जी ने बन-माली से ही दो-चार सवाल किये, उसके बाद बिना कुछ कहे-सुने, सीधे आंगन में आ धमके। नारायणी बिलकुल सामने पड़ गयी। उस वक्त उसके पैरों में इतनी भी ताकत नहीं थी कि वह कहीं भाग जाए।

बूढ़ा दारोगा उसे देखकर ठिठक गया। उसने पूछा, "बिटिया, तुम तो बहुत सुंदर हो। अच्छा यह तो बताओ, घर में किसी नये आदमी को देखा है? कौन आया है, बताओ तो जरा!"

किसी अनजाने अहसास से उसने दाहिने से बायें सिर हिलाकर असहमति जतायी। उस आदमी को बाहरवाले कमरे में न देखकर ही शायद उसने सिर हिला दिया था।

लेकिन गाव के दारोगा की पहुच हर ओर, हर जगह है, इसका उसे अंदाजा भी नही था।

दारोगा ने आवा [illegible] निटिया कौन-कौन है, जरा परदे में [illegible] " वह हो जाइये, हम लोग [illegible] अंदर कहते-कहते उसने सबसे पहले जिस कमरे में झाका, वह [illegible] झाकते हुए वह एक पल को ठिठक गया। अचानक एकदम से अदर घुस [illegible]। दूसरी तरफ से नारायणी ने भी कमरे में अंदर झाककर जो देखा, तो डर के मारे एकबारगी फक्क पड़ गयी। वह आदमी मां के बिस्तर पर लेटा हुआ था और [illegible] उसके सिरहाने बैठी पखा झल रही थी!

सबसे ज्यादा हैरानी की बात यह थी वह सफेद साडी के बजाय रगीन [illegible] पहने हुए थी! अपने होश मे, उसने अपनी मा को रगीन साडी पहने हुए [illegible] देखा। सिर्फ इतना ही नही, मा के माथे पर सिंदूर की सुर्ख, बडी-सी बिंदी [illegible]

नारायणी तो मानो तसवीर बन गयी।

कमरे में किससे क्या बातें हुई, उसने नही सुनी। बातें सुनने [illegible] भी नही आया। डर के मारे उसकी छाती इस बुरी तरह धडक रही [illegible] उसे कुछ सुनाई नही दे रहा था। थोडी देर बाद दारोगा कमरे से [illegible] आया। कुछ कहते-कहते उसने घर के पूर्वी-पश्चिमी कमरो में भी [illegible] कर देखा। उसके सिपाही आगन में ही खडे थे। दारोगा [illegible] लौट गया।

उधर, दारोगा को मा के कमरे मे दाखिल होते देखकर [illegible] बाहरवाले बरामदे मे मानो टूटकर ढह गयी। दद्दू [illegible] था। इधर दादी की सास अटकने लगी। आगे [illegible] खो बैठी हों।

मां दरवाजे पर आ खडी हुई! उसकी [illegible] दमकती हुई, सिंदूरी बिंदी! इधर से [illegible] मुह बाये मा की तरफ देखते रहे। ठीक [illegible] दद्दू आगन में खड़े हो गये। लेकिन उनके [illegible]

मा एकबारगी पत्थर की मूरत बन [illegible]

थोड़ी देर बाद मां को होश आ गया। उसने फिर सफेद थान वाली साड़ी पहन ली। माथे से सिंदूर की बिंदी भी घुल-पुंछ गयी। उस वक्त उसका गोरा-चिट्टामाथा कुछ ज्यादा ही सूना और सफेद नजर आया था, मानो चेहरे में खून ही न हो। कुछेक पलों के लिए सही, रंगीन साड़ी और सिंदूरी बिंदी में उसे अपनी मां बेहद सुंदर, बेहद दिव्य लगी थी।

अगली सुबह नारायणी जब सोकर उठी, वह आदमी जा चुका था।

गब्बू ने ही उसे खबर दी कि वह आदमी यहां से चला गया है। लेकिन जाते-जाते, वह घर के माहौल को भी कहीं से बदल गया है। किसी के मुंह में मानो जुबान नहीं। दद्दू चुप्प! और सबसे चुप्प मेरी मां! अगले दो दिनों तक नारा-यणी मन ही मन डर से कांपती रही थी। उसे बार-बार यही लग रहा था, मानो उन सबकी नजरों में मां ने दुबारा कोई संगीन अपराध कर डाला हो। सब लोग उसे भयंकर सजा देने की तैयारी में लगे हों।

लेकिन दो दिन बीतते न बीतते, घर की दमघोंटू चुप्पी अचानक कम होने लगी। शायद उस बूढ़े दारोगा की वजह से ही माहौल कुछ उन्मुक्त हो आया। दारोगा साहब ही दुबारा आये थे। इस बार उनके साथ सिर्फ एक प्यादा भर था। गब्बू ने बताया, हमारे यहां आने से पहले, वे आसपास के घरों में भी जा-जाकर जाने क्या जांच-पूछ करते रहे। उसके बाद हंसते हुए हमारे यहां आ पहुंचे। उस दिन दद्दू घर पर ही थे। वे हंसते हुए उनके सामने आ खड़े हुए। कहा, "एक बार मां लक्ष्मी के दर्शन के लिए आया हूं। उनसे कहिए, इस बूढ़े बेटे को दर्शन दे जाएं।"

आज दारोगा साहब को देखकर नारायणी को वैसा डर भी नहीं लगा। आज उनका हाव-भाव में ही बिलकुल फर्क था। उनकी हंसी भी काफी मीठी लगी। मुहल्ले के कुछेक लोग इधर-उधर से भी ताक-झांक कर रहे थे। किसी के भी चेहरे पर डर-भय का नामोनिशान तक नहीं था, महज कौतूहल भर था।

दद्दू ने हड़बड़ाकर मां को बुला भेजा। इधर दो दिनों में पहली बार दद्दू की आवाज सुनाई पड़ी थी। मां आहिस्ते-आहिस्ते अपने कमरे से बाहर निकल आयी, दरवाजे के खंभे से लगकर खड़ी हो गयी। वही विधवा वेश! वही पथ-रायी मूर्ति! चेहरे पर हलका-सा घूंघट! दारोगा ने हाथ जोड़कर खड़े होते हुए कहा, "इस बूढ़े बेटे को आप पैर तो छूने नहीं देंगी, दूर से ही माथा नवाकर 'परनाम' करता हूं, मां-लक्ष्मी! सच कहूं, दारोगागिरी करते-करते मेरे सारे बाल सफेद हो गये, लेकिन ऐसा नहीं देखा! हठात लगा, इस दारोगा के अंदर भी एक इंसान है। वही इंसान मुझे आज धकियाते हुए यहां तक ले आया। दस मील का रास्ता तय करके, मैं सिर्फ तुम्हारे दर्शन करने चला आया, समझीं, मां-लक्ष्मी··· सिर्फ तुम लोगों को एक बार फिर से देखने के लोभ में चला आया!"

नारायणी ने हैरतगेज आखों से देखा, मा का सख्त चेहरा धीरे-धीरे कोमल हो आया! उस पल मे, उसे अपनी मा का चेहरा बेहद दिव्य और पवित्र लगा था। दारोगा ने उसी तरह हसते-हसते दुबारा कहा, "इतना कुछ करने पर भी उस आदमी की 'रच्छा' नही हो पायी, मा-लक्ष्मी! कल पकड़ा गया। उस तरह का बीमार शरीर लेकर, कोई कहा तक खींच पाता? और तुम्हारी तरह भला उसे आश्रय भी कौन देता? लेकिन खास डर की बात नहीं, वह आदमी दागी आसामी नहीं है, दल के चक्कर मे पड़कर मुसीबत मे फस गया है···"

मा के चेहरे की कमनीयता आहिस्ते-आहिस्ते दुबारा बुझ आयी, वह दारोगा की तरफ देखते हुए, बिलकुल मूरत बन गयी। सभी के चेहरो पर आतक की छाया घिर आयी। लेकिन यह भी साफ जाहिर था कि दारोगा आज किसी और इरादे से नहीं आया था। दद्दू की खातिर-तवोज्जोह मे नाश्ता-वाश्ता करके उन्होंने विदा ली। जाने से पहले, दद्दू के सामने ही उसकी मा को मा-लक्ष्मी, मा-दस-भुजा वगैरह-वगैरह कहता रहा।

उस रात नारायणी के देखते ही देखते मा ने एक अद्भुत काड कर डाला। उसे सोया समझकर, मा उसे छाती से चिपटाये हुए लेटी हुई थी। जगी हुई देखकर भी, उसे अपने से अलग नही किया। नहीं, मा रो नहीं रही थी, लेकिन नारायणी को जाने क्यो बेतरह रुलाई आ रही थी!

पड़ोसियों का चेहरा मानो आईना होता है!

घर की आबोहवा अब दुबारा काफी कुछ सहज हो आयी थी। लेकिन मुहल्ले के लोगो का खासकर औरतो का हाव-भाव जाने कैसा तो बदला-बदला नजर आने लगा। नारायणी की हमउम्र सहेलियों, प्रौढा विधवाओ मे जाने कैसी खुसुर-पुसुर होने लगी। एक-दूसरे के कानो मे खुसफुस! बोली-आवाजे! अजीब-अजीब निगाहे! हमउम्र सहेलिया व्यग्य से हसते हुए, नारायणी से सवाल करतीं, "सुन, रे, रोगी बनकर, कौन आया था तेरे घर?" एक और सहेली तो सीधे-सीधे ही वार कर बैठी थी, "क्यो, रे, कलकत्ते से तेरा बप्पा तो नहीं आया था?"

नारायणी को ये सारी बातें समझ नहीं आती थी, लेकिन अदर ही अदर वह चौखना जाती। इस बीच घरवालों और मुहल्लेवालो के बीच अजीब-सा तनाव आ गया था। यहा तक कि उसकी दादी और दद्दू से भी पड़ोसियो का प्रेम घट गया। अब दद्दू गंभीर मुद्रा मे कुछ-कुछ सोचते हुए, अकेले बैठे-बैठे चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाया करते, दादी अपनी पूजा-पाठ मे डूबी रहती। मौका मिलते ही जाने किसका नाम ले-लेकर अपना गुस्सा उतारती रहती। मा तो हमेशा से ही चुप रहा करती थी, अब और ज्यादा चुप्प मार गयी। नारायणी के अलावा, दिन

भर में और किसी से कोई बात नहीं होती ! मां का वह ठंडा-ठंडा चेहरा देखकर गब्बू यहां तक कि वनमाली भी करीब आने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। करीब सात-आठ महीने बाद, पड़ोसी और घरवाले दुबारा आश्चर्यचकित रह गये। जिस बीमार आदमी के आने और उसके यहां कुछेक दिन रह जाने की वजह से घर और मुहल्ले में आबोहवा यूं बदल गयी थी, नारायणी उसका नाम तक नहीं जानती थी ! अब उसे उसका नाम भी मालूम हो गया। गब्बू ने ही बताया, "उसका नाम नंद बाबू है। जानती हो, वह दुबारा लौट आया है। भोजगांव में ठहरा है !" भोजगांव हमारे ब्राह्मण-मुहाल से करीब आधे मिल की दूरी पर था। गब्बू और वनमाली से उनकी मुलाकात भी हुई है, काफी बातचीत भी हुई। उन दोनों की राय में नंद बाबू बड़े भलेमानस लगे !

नारायणी ने फौरन यह खबर अपनी मां को भी सुनायी। मां तो यूं भी हमेशा गंभीर रहने लगी थी, यह खबर सुनकर वह और गंभीर हो आयी ! नारायणी ने यह खबर दादी और दद्दू को भी सुना डाली। उनका चेहरा भी गंभीर हो गया।

कुछेक दिनों बाद ही मुहल्ले के जवान-जहान लड़कों और बूढ़ों-बुजुर्गों का एक दल नारायणी के दरवाजे पर टूट पड़ा। किसी की आंखों में कौतूहल था, किसी की आंखों में महज-कौतुक ! उनके साथ वह आदमी भी था, जिसका नाम नंद बाबू था, जिसे लेकर मुहल्ले में इतनी कानाफूसी चल रही थी। गब्बू ने बताया, "नंद बाबू ही घर-घर जाकर, सबको पकड़ लाये हैं !"

बूढ़े दद्दू और दादी ने धुंधलायी आंखों से गब्बू की ओर देखा। नारायणी का ख्याल था, वे लोग उसे खदेड़ देंगे। लेकिन उस आदमी ने हंसते हुए आगे बढ़कर उनके पैर छुए। उसके बाद सबको सुना-सुनाकर, दारोगा बाबू की तरह ही उसने मां के कमरे की तरफ देखते हुए आवाज लगायी, "कहां है, मेरी मां ? मैं अपनी मां को देखने आया हूं !"

उसकी बातें और संबोधन सुनकर सबके सब अकचका गये।

लेकिन मां बाहर नहीं निकली।

नारायणी के अचरज का ठिकाना नहीं था। वह आदमी उम्र में उसकी मां से बड़ा ही होगा, लेकिन उसे 'मां' कह रहा था। वैसे इस बार वह पिछली बार से भी ज्यादा भला लगा। उसका चेहरा काफी हंसमुख दिखाई दिया। उसी तरह भर-गाल दाढ़ी ! लेकिन अब वह बीमार नहीं लग रहा था।

वह आदमी भीड़ की तरफ देखते हुए दोबारा हंसा, "बेटे पर जब तक मुसीबत न आये, मां बेटे को दर्शन नहीं देती ! आप लोगों को शायद पता भी नहीं, जिस तरह मां बच्चे की रक्षा करती है, ठीक उसी तरह मेरी मां ने भी मेरी रक्षा की थी। इसीलिए जेल से निकलकर सीधे मैं वहीं चला आया, जहां मेरी मां रहती हैं।"—

बहुत-बहुत दिनों बाद नारायणी को खुद ही समझ आया था, उस दिन पडोसियों को बुलाकर, नद'दा ने इतनी सारी बातें क्यों की थीं ! वाकई पडोसियां का चेहरा आईना होता है। वह आईना अब फिर बदल गया। मुहल्ले की कानाफूसी भी अब थम गयी थी। इस घर में फिर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया।

लेकिन इसके बाद, जब तक मा जिंदा रही, नद'दा से फिर कभी मुलाकात नहीं हुई। नद'दा अब भोजगाव में ही रम-बस गये और काफी मजेदार-मजेदार गुल खिलाने लगे। हालांकि जब तक मा जिंदा थी, वे कभी हमारे यहा नहीं आये ! नद'दा ने ढेर सारी जमीन खरीद ली, घर बनवाया, बाग लगाया और खेती-बारी का भी इंतजाम कर डाला। गब्बू भी उत्साह में कमर कसकर उनके साथ जुट गया। अब वह ईद का चाद बन गया था। इसके अलावा नद'दा ने अपने घर में एक स्कूल भी खोल लिया था और ऐलान किया था, जो बच्चे पढ़ने आयेंगे, उन्हें स्लेट, किताब, कापी, पेंसिल नद'दा की तरफ से मुफ्त ! रोज दो-दो, चार-चार बच्चे जमा होने लगे, अब तो खासी भीड़ हो गयी है ! पहले उनके स्कूल में लड़कियां नहीं थीं, जितने लड़के थे, उगलियों पर गिने जा सकते थे। यहां और भी एक स्कूल था, लेकिन वह गाव में करीब पांच-छह मील दूर था। जब तक बच्चे थोड़े बड़े न हो जाएं, कोई उन्हें दूर भेजने को राजी नहीं था।

मुहल्ले की लड़कियों में शायद एकमात्र नारायणी को ही, रोज शाम-सुबह किताब-कापी लेकर, मा के पास बैठना पड़ता था। यही वक्त उसे सबसे ज्यादा बुरा लगता था, क्योंकि मा की जुबान नहीं चलती थी, लेकिन बीच-बीच में हाथ बेभाव चल जाता था। उसकी पढाई को लेकर, कभी-कभी दादी की बडबडाहट भी शुरू हो जाती। नारायणी को भी एकमात्र उन्हीं पलों में अपनी दादी थोड़ी-बहुत समझदार नजर आती थी।

खैर, कुछ ही दिनों में उसके मुहल्ले का मामला भी नद'दा के हाथों में चला गया। कहना चाहिए नारायणी ही उनकी पहली छात्रा बनी। उस वक्त स्कूल भी ठीक तरह चालू नहीं हुआ था। नद'दा पढ़ाने से ज्यादा किस्से-कहानियां सुनाते थे। कहानियों के दौरान ही, कब उसकी पढाई भी हो जाती, उसे पता ही नहीं चलता था। स्कूल से लौटकर, रोज वह मा को बताती थी कि नद'दा उसको कितना लाड़ करते हैं। उसे पक्का विश्वास हो गया था, कि नद'दा उसे ही सबसे ज्यादा प्यार करते हैं। स्कूल जाते अभी कुछेक दिन ही हुए थे कि उसने मा को यह सूचना भी दी कि उसे पढ़ाते वक्त मा चूंकि मारती-पीटती भी है, अत. नद'दा ने कहला भेजा है, मा को अब पढ़ाने की जरूरत नहीं।

इसके बाद, नद'दा फिर एक मजेदार काड कर बैठे। नदी के जहाज में बैठ

कर वे ढाका या जाने कहां तो गये थे। जब लौटे तो अपने साथ दो लड़के भी लपेट लाये। उनमें से एक की उम्र छह और दूसरे की कुल आठ साल थी। नारायणी ने सुना, अब वे दोनों नंद'दा के पास ही रहेंगे। पहले-पहल तो उसे बुरा लगा था। उसके अलावा और कोई नंद'दा के इतने करीब हो, यह उसे बिलकुल भला नहीं लगता। लेकिन उन दोनों बच्चों के प्रति भी अजब-सी माया हो आयी। दुबले-पतले, मरगिल्ले-से! बिलकुल हड्डी-हड्डी! उसका सारा क्षोभ उस दिन गलकर बह गया, जब उसने सुना, उन दोनों बच्चों के मां-बाप तो मर चुके हैं, इस दुनिया में उनका कोई भी नहीं है। नंद'दा अगर उन्हें अपने साथ नहीं लाते, तो वे बेचारे भूखों मर जाते।

वे दोनों बच्चे अनाथ हैं, यह सुनते ही नारायणी की आंखें भर आयीं। कभी-कभार नंद'दा यूं ही निकल पड़ते और जाने कहां-कहां से दो-एक बच्चे बटोर लाते। इस गांव के भी एकाध लोग, दो-चार अनाथ बच्चे नंद'दा के सिर मढ़ गये। गब्बू भी जाने कहां से एक लावारिस बच्चा उठा लाया। दुनिया में ऐसे अनाथ बच्चे आखिर कितने हैं, यह सोच-सोचकर वह बेहद हैरान थी। साल भर के अंदर ऐसे नौ बच्चे जमा हो गये, जो नंद'दा के पास ही रहकर खाते-पीते और पढ़ते-लिखते थे। दूसरे साल ऐसे बच्चों की संख्या चौदह हो गयी। सारे बच्चे छह से दस-ग्यारह साल की उम्रवाले।

नारायणी के उत्साह का ठिकाना नहीं रहा। असल में, वह अपनी मां को छोड़कर रह नहीं सकती थी, वरना वह भी नंद'दा के पास ही रह जाती। गब्बू खूब मजे में था, क्योंकि आजकल वह भी वहीं रहने लगा था। भोर होते न होते वह घंटी बजाकर बच्चों को नींद से जगाता। जो उठने में आलस करता, गब्बू उसे बिल्ली के बच्चे की तरह बिस्तर से खींच लाता। उनकी निंदियाई आंखों में पानी के छींटे मारता। उसके बाद कुछ देर तक सब मिलकर खासा हो-हुल्लड़ और धमाचौकड़ी मचाते। कुछ देर तलैया में भी उछल-कूद। नहा-धोकर सब मिलकर खाने बैठते।

खाते समय भी नंद'दा खूब मजा लगाते। चुन-चुनकर वे मरगिल्ले बच्चों से खाना परोसने को कहते। खाना परोसते हुए बेचारे उन बच्चों के ही मुंह में पानी भर आता। कभी-कभी खाना परोसते हुए, सबकी पत्तलों पर इतना-इतना खाना परोस देते कि अपने लिए कुछभी नहीं बचा पाते। बेचारे भूखे बच्चे, रुआंसे होकर नंद'दा मुंह ताकने लगते।

नंद'दा उनका चेहरा देख-देखकर खूब हंसते फिर बाकी बच्चों को मीठी-सी डांट पिलाते हुए कहते, "चलो, अपने-अपने में से थोड़ा-थोड़ा हिस्सा इन्हें भी दो वरना ये लोग खायेंगे क्या? सब बच्चे खुश-खुश, उन बच्चों को भी अपने साथ खिलाने बैठा लेते और इस तरह उन बच्चों को ही सबसे ज्यादा हिस्सा मिल जाता।

नंद'दा हँसकर कहते, "देखा न! सब दे डालने से, सबसे ज्यादा मिलता है।"

एक दिन इसी बात को लेकर जो मजा हुआ, नारायणी तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। उस दिन एक बच्चे ने जान-बूझकर अपने लिए खाने को कुछ नहीं रखा, सब साथियों में बाँट दिया। लेकिन नंद'दा भी कम शरारती नहीं थे। उन्होंने उसका मतलब समझ लिया। उस दिन अपने हिस्से में से थोड़ा-सा देते हुए कहा, "इस लड़के ने ज्यादा पाने के लोभ में, सारा कुछ दे डाला। इसे आज खाना कम मिलेगा।"

सबने जोर का ठहाका लगाया। वह लड़का बुरी तरह शरमा गया।

खाने के बाद पढ़ने-लिखने का दौर। पढ़ाते वक्त भी नंद'दा तरह-तरह का तमाशा करते, लेकिन न पढ़नेवाले से बिलकुल जवज्जोह नहीं रखते। नारायणी जान गयी थी, यूँ वे चाहे जितने खुशमिजाज नजर आते हों, लेकिन काम-काज के मामले में बेहद सख्त आदमी थे। उनके छोटे-छोटे बच्चे अपनी कमीज-पैंट खुद धोते थे, अपने बरतन खुद माजते थे, अपने बिस्तर भी खुद बिछाते थे। अगर कोई बच्चा बीमार पड़ जाता, तो सब मिलकर उसका काम करते। शुरू-शुरू में, उन बच्चों के लिए नारायणी को बहुत तकलीफ होती थी। उसके मन में हमेशा यह कसक होती कि उन बेचारों का घर-द्वार नहीं, कोई अपना नहीं! लेकिन अब बहुत अच्छा लगता है। उन लोगों की खिलखिल हँसी, फुर्ती देखकर एकदम से लगता है, अकेले नंद'दा को पाकर, उन्हें सब कुछ मिल गया है। उसे लगता था, नंद'दा और गब्बू के बाद ये चौदह बच्चे उसके भी सबसे अपने सगे हैं।

नंद'दा बहुत अच्छा काम कर रहे हैं, यह बात माँ के हाव-भाव से भी साफ जाहिर थी। उसकी पढ़ाई के मामले में, नंद'दा जो कहते, माँ सुनते ही सारा इंतजाम कर देती। इसके अलावा, माँ जब भी कोई अच्छी चीज बनाती, टिफिन में भरकर गब्बू के हाथ, उन बच्चों के लिए भी जरूर भेजती। टोकरी में भर-भरकर फल वगैरह भी भेजा करती। नंद'दा भी गब्बू को इस घर से कुछ लेकर आते देखते, तो खुशी के मारे गद्गद हो जाते।

तेरह साल की होते ही, नारायणी फ्रॉक छोड़कर, पक्के तौर पर साड़ी पहनने लगी। बस, उसी वक्त से घर में हल्का-सा हंगामा शुरू हो गया। दादी अक्सर ही उसके ब्याह की बात छेड़ बैठतीं।

हालाँकि माँ कुछ नहीं कहती थी, लेकिन दद्दू हुक्का गुड़गुड़ाते हुए, शायद इसी फिक्र में डूबे रहते थे। हाँ, माँ के इशारे पर नदी किनारे टहलना, या अकेले-अकेले मुहल्ले का चक्कर लगाना उसे कम करना पड़ा था। इन दिनों वह खुद भी

अपने अंदर कुछ बदलता हुआ महसूस कर रही थी। अब उसे भी अकेले-अकेले घूमने या नहाते समय उछल-कूद मचाने में खुद ही संकोच होने लगा। मुहल्ले की बड़ी-बूढ़ियों और लड़कियों की निगाहें कुछ और अर्थभरी हो गयीं! लड़के भी अब उसे जब-तब आवाजें नहीं लगाते। ठीक उसी वक्त जब दादी भी ब्याह की चर्चा उठाने लगीं तो, वह वाकई परेशान हो उठी! ब्याह का मतलब तो यह हुआ कि उसे मां, नंद'दा, गब्बू और उन बच्चों को छोड़कर कहीं और जाना होगा। हां, उसे अच्छी तरह मालूम है कि ब्याह होने पर उसे उस जगह जाना होगा जिसे ससुराल कहते हैं। उसके देखते ही देखते इस गांव से कितनी ही लड़कियां तो चली गयीं। लेकिन जब अपने बारे में यह ख्याल आता, तो दम घुटने लगता। बस नारायणी भगवान से मनाने लगी—हे भगवान, उसका ब्याह कभी न हो। कुछ ही दिनों में नारायणी को लगा, मानो भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली है। उस दिन दद्दू की ही उम्र के कोई बुजुर्ग उनके यहां तशरीफ लाये। उनकी खातिर-तवज्जोह देखकर, नारायणी को लगा, यह काफी परिचित आदमी है। शाम को दद्दू ने मां से उसकी जन्मपत्री लेकर उस आदमी को दिखायी। वह बुड्ढा नाक की नोक पर चश्मा लटकाकर, जन्मपत्री खोलकर बैठ गया। काफी देर तक हिसाब-किताब करता रहा। नारायणी की छाती धक-धक करती रही—! इस बुड्ढे खूसट ने उसके ब्याह की बात अब छेड़ी, तब छेड़ी। लेकिन काफी देर तक जन्मपत्री उलटने-पलटने के बाद उस बुड्ढे ने उलटी ही बात कही। नारायणी के बिलकुल मनलायक बात। कहा, "तुम्हारी नातिन के ब्याह में अभी बहुत देर है। लेकिन कोई फिकिर की बात नहीं। तुम्हारी नातिन राजरानी होगी। बड़ी सुलक्षणी बिटिया है।"

नारायणी इसलिए इतनी खुश नहीं हुई कि वह राजरानी होगी, बल्कि इसलिए कि उसके ब्याह में अभी काफी देर है। उसे मानो दुबारा नया जीवन मिला। उसने शरमाते-शरमाते यह खबर नंद'दा को भी बता दी। असल बात यह थी कि कोई भी बात नंद'दा को बताये बिना उससे रहा ही नहीं जाता। अभी से उसके ब्याह की बात उठने लगी है, यह सुनकर नंद'दा अवाक् रह गये, लेकिन सारा किस्सा सुनकर वह उतना ही हंसते रहे। नंद'दा हमेशा ही हंसते रहते, लेकिन उन्हें यूं ठहाका लगाते, नारायणी ने बहुत कम देखा था। अंत में नंद'दा ने भी अपनी राय दे डाली, "सुन, उस बुड्ढे ने ठीक ही कहा है, सचमुच तू राजरानी होगी!" मारे गुस्से के नारायणी का मन हुआ वह नंद'दा की दाढ़ी नोंच ले। पहलेवाला बचपना होता, तो वह दो-एक बार दाढ़ी पकड़कर झकझोर भी देती। उनकी गाल-भर, काली-काली दाढ़ी ठुड्डी से नीचे तक झूलने लगी थी। नारायणी तो खुश-खुश यह खबर सुनाने आयी थी कि अभी उसके ब्याह में काफी देर है और वे समझ रहे थे, उसे राजरानी बनने की खुशी है।

कुछ दिनों के लिए दादी चुप मार गयीं। लेकिन नारायणी का चौदहवां साल लगा होते ही, फिर ब्याह की चर्चा उठाने लगीं। नारायणी उनकी पीठ-पीछे जाने कितनी तरह से उन्हें मुंह चिढ़ाती रही। आजकल एक- और वजह से भी उसका मन बुझा रहता। मा अब अक्सर बीमार रहने लगी थी। हल्का-हल्का बुखार और चेहरा दिनोदिन सूखकर बिलकुल सफेद होता जा रहा था। खैर, इस बार फिर उसके ब्याह का प्रसंग दब गया। उनके यहां कोई आया था। नारायणी उन्हें नहीं पहचानती थी। उसने सुना, वह सज्जन रिश्ते में उसके चाचा लगते हैं। खैर, चाचाओं के प्रति उसकी खास श्रद्धा-भक्ति नहीं थी। लेकिन ये साहब उसके सगे चाचा नहीं थे। उसके बप्पा के वहां कलकत्ते वाले फुफेरे भाई थे, जिनके साथ वे लोग कभी एक ही मकान में रहा करते थे। ये चाचा कलकत्ते के किसी कॉलेज में प्रोफेसर थे। काम के सिलसिले में उन्हें ढाका की किसी मीटिंग में शामिल होना था। वापसी में उन्होंने यहां आने की योजना बना ली।

खैर, नारायणी उन्हें पहचाने या न पहचाने, लेकिन ये चाचा उसकी मा की बेहद इज्जत करते थे, यह उसने कुछ ही घंटों में समझ लिया। सच्ची संवेदना, प्यार या श्रद्धा का स्पर्श, दिन के उजाले की तरह सहज और स्पष्ट होता है। मा ने भी बीमारी के बावजूद उनकी खातिर में कोई कसर नहीं उठा रखी। काका उसके माथे पर हाथ फेरते हुए मा से बीते दिनों की बातें करते रहे। बार-बार उनकी आखें भर आती थीं। वे मा और नारायणी को कलकत्ता ले जाना चाहते थे। ना, उनकी बातों में कोई बनावट नहीं थी, वे सचमुच ले जाना चाहते थे। इतने दिनों से मा को देखा नहीं था, लेकिन फिर भी मा की गिरती सेहत उनकी निगाहों से छिपी नहीं रही। कलकत्ते में मा का अच्छी तरह इलाज होगा, नारायणी भी पढ़ाई-लिखाई करेगी।

नारायणी मन ही मन खुशी से बौरा गयी। जाने कितने-कितने दिन-रात उसने नदी पार करने के सपने देखे थे, काका वही नदी पार करने का लोभ दे रहे थे। इस तरह की खुशी की कल्पना मात्र से रोमांच हो आया। लेकिन मा का प्रस्ताव सुनकर मानो वह आसमान से गिरी। मा खुद तो नहीं जाएगी, लेकिन वे नारायणी को अपने साथ लेते जाएं। वह अच्छी तरह लिख-पढ़ जाएगी।

काका ने पूछा, "क्यों, मेरे साथ चलेगी न ?"

लोभ दबाने के दुःख से नारायणी की आखें भर आयीं। उसे अपनी मा पर भयंकर गुस्सा आने लगा। लेकिन काका को जवाब देते हुए कहीं उसका गुस्सा या क्षोभ प्रकट न हो जाए, अतः उसने होंठ दबाये-दबाये, सिर हिलाकर असहमति जता दी, वह नहीं जाएगी। यूं भी नद'दा, गब्बू, नद'दा के घर के उन बच्चों को छोड़कर जाने के ख्याल भर से, उसकी छाती कचोट उठी थी। उस पर से मा को छोड़ने का धक्का! लेकिन मा का गुस्सा देखकर, वह सच ही, अवाक् रह गयी।

मां सचमुच उसे काका के साथ भेजना चाहती थी। उसके जाने में कितना-कितना फायदा है, उसे तरह-तरह से समझाती-बुझाती रहीं। अंत में वह उबल पड़ी, "तू जाएगी या नहीं ?"

मारे गुस्से और क्षोभ के नारायणी ने दुगनी झुंझलाहट जाहिर की, "नहीं ! नहीं ! नहीं ! मेरी मर्जी, मैं नहीं जाऊंगी, किसी का क्या ?" वह पैर पटकती हुई मां के पास से उठ आयी।

लेकिन काका उसे इसलिए सचमुच अच्छे लगे थे कि वे उन दोनों को पद्मा-पार ले जाना चाहते थे। दादी से बात करते हुए, वे और ज्यादा अच्छे लगे।

उसके ब्याह का प्रसंग छिड़ते ही उन्होंने हैरानी जाहिर करते हुए कहा, "अरे, वित्ते भर की लड़की का ब्याह ? सबको पुलिस पकड़ ले जाएगी।" एकाध पल के लिए उनकी निगाहें नारायणी के चेहरे पर ठहर गयीं। उन्होंने दादी को समझाते हुए कहा, "ऐसी सुंदर-सलोनी आपकी पोती ! अगर इसे अच्छा घर-वर नहीं मिला, तो समझूंगा किसी लड़की की तकदीर में अच्छा घर-वर नहीं लिखा होता। आप इसके बारे में चिंता-फिक्र छोड़ दीजिए।"

उन्होंने मां को भी करीब-करीब इसी लहजे में समझाया। नारायणी आड़ से उनकी बातें सुन रही थी।

काका कह रहे थे, "भाभी, तुम इस लड़की के लिए बिलकुल फिक्र न करो। भगवान ने जब उसे भेजा है, तो खुद ही उसकी चिंता-फिक्र भी कर लेंगे।"

नारायणी बखूबी जानती थी, ये बातें भी उसके रूप की तारीफ में कही गयी हैं। अब वह इस तरह की बातें कुछ ज्यादा ही समझने-गुनने लगी थी। वह मन ही मन खुश भी होती। वैसे अब उसे इतनी अक्ल भी आ गयी थी कि इस खुशी को जाहिर न होने दे।

काका यहां तीन दिन रहे थे। नारायणी उन्हें अपने नंद'दा के यहां भी ले गयी। उसके बाद काका खुद ही दोनों वक्त उनके यहां पहुंच जाते। दोनों में ऐसी दोस्ती हो गयी, जैसे बेहद पुरानी जान-पहचान हो। नारायणी को बड़ा मजा आ रहा था। उसे अकेले में पाकर नंद'दा काका की खूब-खूब तारीफें करते, और काका भी मौका पाते ही उसके सामने नंद'दा की प्रशंसा में पंचमुख हो उठते। उन्होंने मां से भी कहा—"ऐसा खरा इंसान मिलना दुर्लभ है !"

मां ने कोई जवाब नहीं दिया। नंद'दा वाकई तारीफ के काबिल हैं, उन्होंने यह भी जाहिर नहीं किया। सिर्फ इसी आदमी के मामले में मां का चेहरा कुछ का कुछ हो जाता था। उनकी भलमनसाहत की तारीफ करनी तो दूर, वे तो ऐसी तटस्थ नजर आती थी, मानो इस नाम का कोई आदमी वहां रहता ही नह हो। यहां तक कि सिर्फ उसी आदमी के प्रति, कभी-कभी वह बेहद निर्मम नजर आती थी। नंद'दा के प्रति मां का यह व्यवहार देखकर उसे हमेशा ही कोफ्त होती थी।

काका के जाने के महीने भर बाद ही मा ने एकदम से बिस्तर पकड़ लिया। कई-कई वैद्य आये-गये, लेकिन मा की बीमारी में सुधार का कोई लक्षण नजर नहीं आया। उल्टे दिनोंदिन वह बढ़ती जा रही थी! नारायणी मा को देख-देखकर अंदर ही अंदर सहम गयी। अकेले में छिप-छिपकर वह खूब-खूब रोती।

अंत में एक दिन वह नंद'दा की गोद में सिर छिपाकर फफक-फफककर रो पड़ी। बच्चे भी आड़ से यह दृश्य देखते हुए सहमे-सहमे रहे। वे अपनी दीदी को अपनी जान से भी बढ़कर प्यार करते हैं, यह मानो उसी दिन उजागर हुआ। सब के सब रो उठे। नंद'दा ने कोई बात नहीं की, सिर्फ उसके माथे पर हाथ फेरते रहे। गब्बू भी फटी-फटी आंखों से अपनी दीदीमणि को बिलखते हुए देखता रहा!

शाम को नंद'दा वैद्य जी से मिलने जा रहे थे कि वे खुद ही आ पहुंचे। ऐसे रोबीले चेहरे के बावजूद वे काफी उदासे नजर आ रहे थे। उनकी बातें सुनकर नारायणी बिल्कुल भौचक्की रह गयी। बेवकूफ गब्बू उनके यहां जाकर उन्हें धमका आया है कि अगर उन्होंने उसकी ठकुराइन मा को ठीक नहीं किया तो वह उनका घर-बार मिट्टी में मिला देगा। उसका ख्याल था, उन्हें अच्छी दवा नहीं दी जा रही है, शायद इसीलिए मा ठीक नहीं हो रही हैं। अपनी दीदीमणि की आंखों में आंसू देखकर उसका मिजाज बिगड़ गया है। वैद्य जी को आश्वस्त करके नंद'दा ने मा की तबीयत के बारे में दो-चार सवाल किये, ' वैद्य जी के जाते ही नारायणी अचानक और डर गयी। नंद'दा का चेहरा भी जाने कैसा गंभीर हो आया था।

ऐसे ही तीन-चार दिन और गुजर गये। नारायणी का मन कह रहा था, कहीं कुछ अशुभ होनेवाला है! हालांकि वह समूचे जी-जान से इस आशंका को झुठलाने की कोशिश कर रही थी—"नहीं! कुछ नहीं होगा। सब ठीक हो जाएगा। क्या होगा? क्या हो सकता है?" कल अचानक नंद'दा जाने कहां गायब हो गये। अगले दिन अपने साथ ढाका का कोई बहुत बड़ा डॉक्टर लेकर लौट आये। डॉक्टर ने मा को अच्छी तरह देख-भालकर दवा दी। उस दिन भी नंद'दा कमरे के अंदर नहीं आये, बाहर ही खड़े रहे। डॉक्टर के निर्देशानुसार सारा इंतजाम कर दिया। उस दिन डॉक्टर भी नंद'दा के यहां रह गया। अगले दिन वह फिर मा को देखने आया।

इसी तरह एक-एक करके और चार-पांच दिन गुजर गए। नारायणी की छाती में मानो कोई तीर-सा किरकने लगा था। उस चुभन की यंत्रणा और दहशत से उसका तन-बदन कांपता रहा। सिर्फ नंद'दा जब उसकी पीठ पर हाथ रखते या माथा सहलाते, उसे थोड़ी-बहुत ताकत और भरोसा मिलता। लेकिन वे घर के अंदर कभी नहीं आते थे। चौबीसों घंटे बाहर खड़े पहरा दिया करते थे। नारायणी हर वक्त मा के सिरहाने! नंद'दा आखिर उसे किसी-सी देर मिलते

थे ! उस रात नारायणी बेतरह घबरा गयी। मां ने उसे पास बुलाकर पहली बार नंद'दा के बारे में कुछ कहा। उसने कहा, "सुन, हमेशा अपने नंद'दा का कहना मानना। जो-जो वे कहें, वही करना।" बस, और कुछ नहीं कहा। नारायणी को लगा कोई उसके दिल के टुकड़े-टुकड़े किये दे रहा है ! उसकी आंखों में जमाने भर का खौफ आ समाया ! मां ने यह बात क्यों कही ? मां क्या करेगी ? कहां जाने-वाली है ? उसी रात चौदह साल की नारायणी को अहसास हुआ, मां ने यह बात क्यों कही, मां कहां जानेवाली थी ?

अगले दिन भोर हुई ! धूप भी चढ़ आयी। दादी जमीन पर बैठी-बैठी सिर पीट-पीटकर रो रही थीं। दद्दू भी रो रहे थे। पड़ोसी भी बिलख उठे। गब्बू तो चीख-चीखकर रो रहा था ! और मां को दोनों बांहों में घेरे हुए, उसकी छाती में मुंह गड़ाकर बेभाव रोये जा रही थी—नारायणी ! नारायणी के दिल में मानो बिजली कड़क उठी। उसने सिर उठाकर देखा—नंद'दा ! नंद'दा कमरे में खड़े थे। नारायणी किस असहनीय दर्द से टूटकर रो पड़ी, "तुम क्यों आये ? अब क्यों आये हो नंद'दा ? मां के जीते-जी तुम क्यों नहीं आये ? तुमने मां को रोक क्यों नहीं लिया ? अब तुम जाओ यहां से ! मैं तुम्हारा मुंह भी नहीं देखना चाहती ! मुझे तुम भी नहीं चाहिए।"

उस दिन सबको छोड़कर अकेले नंद'दा पर ही यूं क्यों बिफर पड़ी थी, क्यों पागलों की तरह उन्हें जो-सो करती रही थी, नारायणी आज भी अच्छी तरह नहीं समझ पायी।

लेकिन नंद'दा गये नहीं ! सिर्फ निर्वाक, स्तब्ध-से खड़े रहे···

उसके बाद नंद'दा रोज आते रहे। उन्हें कोई बुलाने नहीं गया। वे खुद ही घर के अंदर आकर बैठ जाते। नारायणी उनकी गोद में मुंह छुपाये चुपचाप रोया करती। मां की आखिरी रातवाली बात भी उन्हें बतायी थी। लेकिन उसे लगा, उनके कानों तक वे बातें पहुंची ही नहीं। मानो वे वहां हों ही नहीं।

दिन ! महीने ! साल सरकते रहे ! दो साल बीत गये !

इस बीच पद्मा नदी की आबोहवा भी बदल चुकी थी, जमीन भी !

कीर्तिनाशिनी पद्मा नदी ! इतने युगों की संचित कीर्ति, मानो वह खुद ही विनष्ट करने को आमादा हो उठी हो···आहिस्ता-आहिस्ता मानो खुद ही अपने को निगलती जा रही हो ! इस नदी को लेकर उसके सीने में जितने-जितने सपने दबे थे, अब वे सपने मानो टुकड़े-टुकड़े होकर बस, बिखरने ही वाले थे। दिनोंदिन तबाही के लक्षण बिलकुल स्पष्ट हो उठे थे।

दादी और दद्दू को अकेले छोड़कर, अब वह घर से बाहर भी बहुत कम

निकलती थी। बहुत-सी दिक्कतें थीं। सबसे बड़ी दिक्कत उसे अपने को लेकर थी। जिस पर भी उसकी नजर पड़ती, उन आंखों के आईने में उसे अपना ही अक्स नजर आता। ऊपरवाला अदृश्य कारीगर, उसके अंदर जो सौंदर्य रचता जा रहा था, उसकी उसे बिलकुल जरूरत नहीं थी! लेकिन वह उससे बच भी तो नहीं सकती। अतः उसने अपने पर ही सख्त पहरा लगा लिया था।

चूंकि वह बाहर नहीं निकलती, अतः नंद'दा ही चले आते। अब नंद'दा की दाढ़ी में एकाध सफेद बाल भी दिखने लगे थे। वे उसे थोड़ा-बहुत पढ़ने में लगाये रहते, इधर-उधर की बातें भी करते। लेकिन नारायणी की निगाहों ने साफ पकड़ लिया, उनकी हंसी की परतों के पीछे कहीं कोई परेशानी, कोई फिक्र भी जमती जा रही है। नहीं, जमी हुई नहीं, है, दिनोंदिन बढ़ रही है। उससे बातें करते हुए नंद'दा अक्सर अनमने हो उठते।

नारायणी को उनकी फिक्र, अन्यमनस्कता और परेशानी की वजह भी मालूम है। नदी के उस पार का उन्मुक्त वातास मानो किसी अज्ञात आशंका से भारी हो उठा था। कहीं बहुत पास ही किसी अशांत आंधी की आहट सुनाई देती; कहीं कोई आग धधक रही हो! उस आग की लपटें पता नदी के इस पार तक भी आ पहुंची हों। नहीं, अब इस बढ़ती हुई आग को रोका भी नहीं जा सकता।

नंद'दा अपने मुंह से चाहे कुछ न कहते हों लेकिन उनके लड़के आपस में कह-सुनकर इससे बचाव का रास्ता ढूंढ़ रहे थे। सब के सब आपसी सलाह-मशविरे में व्यस्त हो उठे थे। नंद'दा के यहां अब उन्नीस लड़के रहने लगे थे। सभी की उम्र दस से पंद्रह साल के दरमियान। नारायणी उन सब की दीदी बन गयी। उन्हें देखकर नारायणी की आंखें तृप्त हो जातीं, मन में असीम सुख भर जाता। वे लोग अक्सर ही आते, दंगे की खबर सुनाते हुए अक्सर यही जाहिर करते कि वे लोग कहीं से भी परेशान नहीं। नन्हें-नन्हें…इन उन्नीस बच्चों की मिली-जुली शक्ति भी मानो अजेय हो उठी थी।

अड़ोस-पड़ोस के चेहरों पर आतंक की छाया। गब्बू तो चौबीसों घंटे उसके घर पर ही बना रहता था। मां की मौत के बाद, नंद'दा ने उसे यहीं तैनात कर दिया था। नारायणी को नहीं मालूम, वह कहां-कहां से कौन-सी खबरें सुनकर आता है! उसे जो खबरें मिल रही थीं खास अच्छी नहीं थीं। रह-रहकर वह नासमझ की तरह भड़क उठता, "आने दो! मैं अकेला ही उनको काट-काटकर नदी का पानी लाल कर दूंगा, मैं तुमसे कहे देता हूं। तुम बिलकुल मत डरो।"

अचानक एक दिन समूचे गांव में भगदड़ मच गयी! नदी पार करने की हुड़क! कैसे यह नदी पार करके, किसी तरह अपनी जान बचायें. सबकी सूरत-शक्ल पर यही आतंक! रोज-रोज जहाजों में भर-भरकर लोगों के जाने की खबरें! आज वह घर खाली! कल वह घर खाली! दद्दू हाथ-पैर सिकोड़े बस, चुपचाप

बैठे रहते; हुक्का गुड़गुड़ाते हुए, धुंधलायी नजर से नारायणी को देखा करते। दादी हर वक्त पूजा-घर में पड़ी रहतीं। गब्बू के बुद्धू-बुद्धू चेहरे पर अजब-से रहस्य का आभास ! जलती हुई आंखें। नंद'दा के उन बच्चों की आंखें भी अजब गंभीर-गंभीर !

नंद'दा ने आते ही ऐलान किया, "सुन, तुझे कलकत्ते जाना है। कल ही। तेरे कलकत्ते वाले काका का खत आया है। तुझे वहीं रहना है।"

नारायणी समझ गयी, उन्होंने खुद काका को खत लिखकर यह इंतजाम किया होगा। लेकिन इसके लिए वह जरा भी तैयार नहीं थी, अतः उनकी घोषणा सुनकर वह अचकचा गयी। नंद'दा ने ही बताया कि दद्दू और दादी को भी जाने को कहा गया था, लेकिन इस उम्र में वे लोग अपना घर-बार छोड़कर जाने को राजी नहीं हुए। अतः बूढ़े-बूढ़ी यहीं रहेंगे, लेकिन नारायणी के लिए डर की कोई बात नहीं ! जाने कैसे नारायणी को यह भी आभास हो गया कि इस फैसले में कोई रद्दोबदल भी नामुमकिन है, लेकिन फिर भी उसने पूछा, "और तुम्हारे यहां के लड़के ?"

"वे लोग भी जाएंगे। जरा बाद में।" तय हुआ कि नंद'दा उसे कलकत्ते छोड़ने जाएंगे। लेकिन जहाज में सवार होने के ऐन वक्त पता चला, उनके बजाय गब्बू जा रहा है। और कोई समय होता तो सोलह साल की जवान-जहान लड़की को, ऐसे अंगरक्षक के साथ इतनी दूर यात्रा पर भेजने का सवाल ही नहीं था। लेकिन जब आंखों के सामने पूरी जिंदगी की अनिश्चितता का सागर लहरा रहा हो, वहां कौन हमसफर बना, यह बात कोई अहमियत नहीं रखती। नंद'दा के लिए चार-पांच दिनों के लिए भी यह जगह छोड़ना संभव नहीं था, क्योंकि यहां के लोग अपने जड़-मूल सहित सारा विश्वास खो बैठे थे। इस वक्त अगर नंद'दा भी यहां से चल दिये, तो लोगों का आखिरी आसरा-भरोसा भी टूट जाएगा। उनके नजर से ओट होते ही, उनकी हिम्मत का पहाड़ हिल जाएगा।

एकमात्र गब्बू ही ऐसा था, जो इस जगह से हिलने को भी तैयार नहीं था। उसका ख्याल था, वह अकेले ही सबकी पहरेदारी कर लेगा। मुसीबतों को मार भगाने के लिए, वह अकेला ही काफी है। इसी आत्मविश्वास की वजह से वह सीना फुलाकर चलता था। अपने लापरवाह तौर-तरीकों की वजह से, मुसीबत की संभावना उसी के लिए सबसे ज्यादा थी, यह बात एकमात्र नंद'दा ने ही समझी थी।

लेकिन गब्बू, खैर खुद तो जाने को राजी नहीं ही था, उसे दीदीमणि का जाना भी कतई जरूरी नहीं लगा। रवाना होने के पहले तक वह बार-बार कहता रहा, "मैं जो हूं यहां ! वह क्यों जाएगी ?"

लेकिन कुछ देर बाद ही गब्बू महाशय बिलकुल गुमसुम हो गये। नारायणी को नहीं मालूम, नंद'दा ने उसे क्या समझाया-बुझाया ! लेकिन वह अंदाज लगा

सकती थी। देखा गया, गब्बू चुपचाप उसके साथ जाने की तैयारी करने लगा। वैसे उस स्टीमर में गाव के और भी बहुत-से परिचित लोग जा रहे थे। वे लोग भी काफी विश्वासी थे, लेकिन इस तकलीफदेह सफर में नद'दा की जगह गब्बू की सुरक्षा भी उसे बहुत बड़ी तसल्ली लगी थी।

उसके बाद पद्मा नदी पार करने की यात्रा शुरू हुई। जिस नदी को अब तक सिर्फ कल्पनाओं और सपनों में सैकड़ों बार पार किया था, आज उसे सचमुच पार कर रही थी। लेकिन जब सच ही स्टीमर में सवार हो गयी, तब नदी कब खत्म हो गयी, उसे पता ही नहीं चला। हालांकि नारायणी ने कुछ भी सोचना नहीं चाहा था। दुख के मारे बूढ़े दद्दू और दादी की छाती फटी जा रही थी। उन्होंने नारायणी को कैसे विदा किया—वह यह भी भुला देना चाहती थी, लेकिन न चाहते हुए भी आड़ी-तिरछी झुर्रियों से भरे दो चेहरे वह पल भर के लिए भी अपनी आंखों के आगे से हटा नहीं पायी। आने के दिन वह एक बार नद'दा के यहां भी गयी थी। वहां के बच्चों के मासूम-उदास चेहरे उसकी आंखों के आगे तैरते रहे। वे सब दल बांधकर उसे छोड़ने आये थे। नारायणी अगर फूट-फूटकर रो लेती, तो भी उसे चैन आ जाता। लेकिन उससे रोया भी नहीं गया।

स्टीमर चल पड़ा!

पद्मा का वह जाना-पहचाना किनारा क्रमशः दूर होता गया। जितना-जितना वह दूर होता जा रहा था, वह उसे कसकर जकड़ लेना चाहती थी। स्टीमर के बहुत सारे लोगों की निगाहें उसी पर गड़ी हुई थीं। कुछेक लड़कियों ने उससे बातचीत करने की भी कोशिश की। लेकिन नारायणी निर्वाक! निस्पंद! उसके साथी को देखकर, बहुतों की आंखों में शक तैर आया, कुछ की आंखें गोल-मोल होकर रह गयीं, किसी-किसीके मन में संशय का कांटा चुभ गया, किसी-किसी ने गब्बू से ही जान-पहचान जमाने की कोशिश की ताकि वे पता लगा सकें, ऐसी रूपसी को लेकर आखिर वह कहां जा रहा है। अपने-अपने कामों में व्यस्त खलासी और कर्मचारी भी अनजाने में दो-एक बार लंबी उसांस भर कर रह गये। जाने कैसी आफत घिर आयी इस गांव पर, ऐसी खूबसूरत लड़की को भी अपना देश छोड़कर परदेसी हो जाना पड़ा।

गब्बू मौन पहरेदार की तरह सारे रास्ते उसके साथ-साथ रहा। उसने किसी की बात पर न भौंहें सिकोड़ीं, न किसी के नयन-बाण से विचलित हुआ! उसके चेहरे-मोहरे और दृष्टि में सिर्फ एक मौन, कठिन संकल्प की छाया तैर रही थी—दीदीमणि की रक्षा का संकल्प!

लेकिन सियालदह स्टेशन पर उतरकर सिर्फ नारायणी ही नहीं, गब्बू भी मानो दिशाहारा हो उठा। इस जन-अरण्य में वे जिसे ढूंढ़ रहे थे, उसको खोज निकालना बहुत आसान काम नहीं लगा। लेकिन उनकी खोज भरी मौन निगाहों की तरफ

बहुत से लोगों की आंखें ठहर गयीं। बहुत से लोग जबरन उनसे जान-पहचान करने के इरादे से, आलतू-फालतू सवाल करने लगे। शक्ल-सूरत से भलेमानस दिखने वाले एक आदमी ने तो इतना अपनापन दिखाया कि किसी सगे की तरह उन्हें अपने साथ लिवा जाने को तयार हो गया।

एक आतंक के मुंह से निकलकर नारायणी मानो फिर किसी अजाने आतंक में स्तब्ध हो आयी। उसकी विह्वल निगाहें किसी परिचित की तालाश में भटकती रहीं। लेकिन वह भलेमानसनुमा चेहरेवाला व्यक्ति मानो किसी अंतरंग की तरह, उनकी सारी मुश्किल आसान करने को तुल गया और उन्हें इस नरक से छुटकारा दिलाने को तत्पर हो उठा! नारायणी अब क्या करे, क्या कहे—उसकी तो मानो बुद्धि ही फेल हो गयी थी।

अशिक्षित और मूर्ख होने के बावजूद गब्बू के स्वभाव में जाने क्या खूबी थी, उसे भावी विपत्ति की गंध पहले से ही मिल जाती थी। वह उस आदमी के सामने आकर खड़ा हो गया—क्रूर और कुटिल दृष्टि! उसने कर्कश आवाज में पूछा, "कौन हो जी तुम ?"

वह आदमी ठिठक गया। अगले ही पल उसने कोमलता से हंसकर कहा, "जो लोग मुसीबत में पड़कर, यहां तक बहते हुए किनारे आ लगे हैं, हम उनकी खिदमत के लिए मौजूद रहते हैं। तुम घबड़ाते क्यों हो ? जब अपने देश की सरजमीन तक आ पहुंचे हो तो कोई न कोई इंतजाम भी हो जाएगा। अपनी दीदीमणि के साथ चलो मेरे साथ।"

गब्बू की तीखी निगाहें, छुरी की तरह उसके चेहरे को टुकड़े-टुकड़े कर गयीं। उसने उसी तरह तीखी आवाज में दुबारा सवाल किया, "मुसीबत में तो कितने सारे लोग पड़े हैं, जाओ, कोई और आदमी तलाश करो और करो उसकी खिदमत! यहां क्यों आये हो ?"

उनके आसपास एक भीड़-सी लग गयी। ऐसी विकट परिस्थिति में अचानक नारायणी को उसके काका आते हुए दिख गये! वे बेचारे तो ठीक वक्त से ही आ गये थे, लेकिन इतनी विशाल भीड़ में, उन्हें खोज निकालने में देर हो गयी।

चार

उसके बाद एक नये अध्याय की शुरुआत!

इस अध्याय में कोई विचित्रता या माधुर्य नहीं था। जिंदगी मानो थकानभरा बोझ बन गयी हो, जिसे महज खींचते रहना था। काका तो पहले ही भले लगे थे,

काकी भी अच्छी ही थी ! वे अपने काका नहीं थे, बप्पा के फुफेरे भाई थे ! उनकी गृहस्थी में दिन गुजारना उतना निर्विघ्न तो नहीं था, फिर भी शिकायत जैसी कोई बात नहीं थी ! यहां की जीवन-यात्रा काफी सहज और स्वच्छंद थी ! उसकी आंखों के आगे जो इतना बड़ा विपर्यय घट गया था, कम से कम इस दुनिया पर उनकी कोई छाया नहीं पड़ी थी !

काका की दोनों बेटियां उम्र में नारायणी से बड़ी थीं, दोनों ही कालेज में पढ़ती थीं। उन दोनों ने उसे बेहद सहजता से स्वीकार कर लिया। यहां तक कि शुरू-शुरू में उसके प्रति थोड़ा-बहुत आग्रह भी दिखाया। कोई लड़की इतनी खूबसूरत भी हो सकती है, यह बात उनकी कल्पना से परे थी। उसके सामने, यहां तक कि अपनी मां के सामने भी उसके रूप को लेकर हलका-फुलका मजाक कर बैठतीं। नारायणी इस किस्म की बातें सुनकर अचकचा जाती थी !

उसके आने के कुछ ही दिनों बाद ही बुला'दी ने हंसी-हंसी में ही अपनी मां से कहा, "उसे ऐसे कमरे में रखा करो, जिसके खिड़की-दरवाजे सब बंद हों। अड़ोस-पड़ोस के बरामदों में लोग मुंह-बाये इधर ही ताकते रहते हैं—"

छोटी बहन श्यामा'दी की देह का रंग जरा सांवला था। हंसी-खुशी और चुहल में वह अपनी बड़ी बहन से भी दस हाथ आगे थी। नारायणी के बांह से अपनी बांह रगड़-रगड़कर या अचानक उसके गाल से गाल रगड़कर शरारत से हंसते हुए कहती, "अगर मेरा बस चलता, तो तेरा रंग छील-छीलकर, अपने बदन पर चढ़ा लेती।"

काका ने भी शुरू-शुरू में उसकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में थोड़ा-बहुत आग्रह दिखाया। हां, वह सब समझती थी। बप्पा का ख्याल करके वे उसके प्रति ममता महसूस करते थे। उन्होंने अपनी बेटियों को भी ताकीद की थी, वे लोग उसका ध्यान रखें; खुद भी दो-चार बार अपने पास पढ़ने बिठाया था। लेकिन वजह चाहे जो भी हो, नारायणी को पढ़ना-लिखना संभव नहीं लगा। जैसे ही वह पढ़ने बैठती, बुला'दी, श्यामा'दी उसे आवाज देतीं, "इ पहले तू ये जड़बी-गड़बी'''छोड़कर, ढंग से बात करना तो सीख ले, उसके बाद पढ़ना।"

नारायणी अगर जरा भी सजग होती या कोशिश करती, तो करीब-करीब उन्हीं की तरह बातचीत कर सकती थी। लेकिन असल में उसका मन हर वक्त उड़ा-उड़ा रहता, अतः बातचीत में एकाध गवंई शब्द मुंह से निकल ही जाते ! दोनों बहनें या तो जोर का ठहाका लगातीं या आंखें तरेरने लगतीं। श्यामा'दी के मास्टर साहब तो बुला'दी से भी ज्यादा कड़े थे। दो-चार दिन बाद ही उन्होंने राय सुना दी, "सुन, तेरा कुच्छ नहीं होने का ! तू बैठे-बैठे, अपना रूप धो-धोकर पानी पी।"

काकी भी टहोका मारतीं, "एइ, तू क्या मोम की गुड़िया है ? इन लड़कियों

की तरह, तू भी हंसती-बोलती, घूमती-घामती क्यों नहीं ?"

नारायणी से यह सब कुछ नहीं होता। हां, पूरे दो साल गुजार देने के बाद भी···वह अपने को बदल नहीं पायी। यहां की जिंदगी की उसे आदत तो हो गयी, लेकिन इसमें घुलमिल नहीं पायी। ये लोग कैसी सहजता से उन्मुक्त दिन गुजारते हैं, उसे कभी-कभी बेहद अचरज होता है। पद्मा के उस पार के दंगों की खबरें यहां भी नियमित रूप से पहुंच रही हैं। लेकिन यहां के लोग सिर्फ अखबार पढ़ते हैं और निरर्थक बहस करते हैं। वहां की बड़ी से बड़ी लहरें इन किनारों को नहीं तोड़तीं ! किसी के सुख-चैन में रत्ती भर भी फर्क नहीं आता !

कभी इसी कलकत्ते के बारे में नारायणी ने न जाने कितने-कितने सपने देखे थे। इन दो सालों में वे तमाम सपने धूल हो गये। अब वह हांफ उठी है। आज भी उसके दिलो-दिमाग में पद्मा की छाया उभरती है। नंद'दा के यहां के बच्चों के मासूम चेहरे हर वक्त आंखों में तैरते रहते हैं। उसे तो यह भी नहीं मालूम कि कीर्तिनाशा पद्मा की खूंखार लहरें उन्हें अपनी चपेट में बहाकर जाने कहां-कहां बिखेर आयी होंगी। शुरू-शुरू में नंद'दा का सिर्फ एक खत उसे मिला था, जवाब में उसने दो-तीन खत लिखे। लिफाफे या पोस्टकार्ड के लिए फिर उन्हीं दीदियों या काकी के सामने हाथ फैलाना पड़ता, लेकिन उन्नीस साल की होते न होते उसकी सारी मांगें मानो खत्म हो चुकी हैं !

पिछले दो सालों से मन के अंदर ही अंदर विस्मृति की मानो कोई नदी बह रही है, और नारायणी उसमें क्रमशः गुम होती जा रही है। सिर्फ एक व्यक्ति नितांत अपना और करीब लगता है—गब्बू ! वह भी यहां नहीं रहता। शुरू-शुरू में दो-तीन महीने वह यहीं रहा। ना, उसे किसी ने रहने को कहा नहीं, फिर भी वह यहीं डटा रहा। उसे यहां रहने का हक भी है या नहीं, उस बुद्धू ने यह भी नहीं सोचा। उसे सिर्फ इतना मालूम था उसकी दीदीमणि यहां रहती हैं, अतः उसका भी यहां रहना जरूरी है ! काकी या दीदियां जो-जो हुक्म देतीं, वह चुप-चाप बजा लाता। हर वक्त कामों की फरमाइश। उन दो महीनों में काकी ने तो उससे इतना काम कराया कि घर का सारा चेहरा ही बदल गया। बदले में उसे दो जून का खाना खिला दिया जाता। लेकिन वह ठहरा गांव-गंवई आदमी। उसकी खूराक ही इतनी थी कि शहरवालों की आंखों में चुभ जाती थी। तीन-तीन लोगों जितना खाना भी उस अकेले आदमी के लिए कम पड़ जाता था। खाने के बारे में वह कभी मना नहीं करता था। बहनें उसकी रावण खूराक को लेकर आपस में खिल्लियां उड़ातीं। काकी ने सीधे-सीधे तो कुछ नहीं कहा, लेकिन उसे आश्रित समझकर उसके बारे में दो-चार ऐसे वाक्य कहे, जिसे सुनकर नारायणी की छाती कसक उठी। बहरहाल उसकी खूराक के बारे में काकी भी खास उदार नहीं थीं ! उसका राक्षसी खाना देखकर कभी-कभी वे भी संकोच से गड़ जातीं।

लेकिन गब्बू इतना बोका नहीं था कि इस तरफ उसका कभी ध्यान ही नहीं जाता हो। लेकिन वह मानो समझकर भी समझना नहीं चाहता। नारायणी को कभी-कभी उन पर बेहद गुस्सा आता। एकमात्र वही तो है, जिस पर वह गुस्सा कर सकती है! जब दो महीने गुजर गये, नारायणी ने मौका देखकर उसे उसके कर्तव्य के बारे में थोड़ी-बहुत सुबुद्धि दे डाली। उसने उसे समझाया, "तुम फालतू-फालतू यहां क्यों पड़े हो? कहीं कोई बढ़िया-सा काम खोज लो न!'

उसकी बात पर गब्बू पहले तो एकबारगी अवाक् रह गया। नारायणी ने जो समझाना चाहा था, पता नहीं, उसने कितना-सा समझा! लेकिन अगले दो-तीन दिन वह काफी गंभीर दिखाई दिया। चौथे दिन उसने खबर दी, उसे किसी काठ के गोले में नौकरी मिल गयी है; वह जा रहा है!

नारायणी ने उसे भी विदा कर दिया। उस दिन भी वह सबसे छिपकर, अकेले में खूब-खूब रोयी थी!

जाते हुए गब्बू से उसने पूछा था, "बीच-बीच में तुम यहां आते रहोगे न?"

गब्बू की गंभीर निगाहें चुपचाप, उसके चेहरे पर टिक गयीं। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

हर बृहस्पतिवार को उसका गोला बंद रहता है यानी उसकी छुट्टी रहती है। गब्बू खाना-पीना निपटाकर शाम तक रहता है। उसके बाद लगातार दो सातों तक नारायणी मानो हर दिन, हर पल, बस, इसी दिन का इंतजार किया करती। गब्बू के प्रति ग्राम्य-रूपसी का इतना खिंचाव भी उसकी बहनों के लिए हंसी-मजाक का कारण बन गया। खैर, उन्हें तो हर बात पर हंसी-मजाक सूझने लगता है।

दो जून खाने के बदले गब्बू घर का कितना-कितना काम करता था, काकी को इस बात का अहसास उसके जाने के बाद हुआ था। सिर्फ खाने के बदले में ऐसा आदमी घर में मौजूद हो, तो कामकाज में सुविधा होती है। उसकी कीमत समझने के बाद उन्होंने इशारे-इशारे में, उसे दुबारा बहाल करने की चाह व्यक्त की। उन्होंने गब्बू को फुसलाते हुए कहा, "अगर तुझे अपनी दीदीमणि को छोड़कर रहने में मुश्किल हो रही है, तो तू लौट आ।"

उन्होंने नारायणी से भी कहा, "भइ, तेरी जान-पहचान का एक ही तो आदमी है, उसे अपने पास ही क्यों नहीं रख लेती?"

बृहस्पतिवार को गब्बू जब आता, काकी उसे तबीयत से नाश्ता करातीं। यहीं गब्बू कभी-कभी अपनी बुद्धिमानी का परिचय दे जाता है। उन कुछेक घंटों में ही वह अपने भरसक इस घर के बहुत सारे काम कर देता है।

अर्मा-भी, श्यामा'दी, बुला'दी नारायणी से ठिठोली करने से बाज नहीं आतीं। बल्कि दिनोंदिन उनकी जुबान की लगाम और ढीली पड़ती जा रही है! गब्बू के आते ही वे ऐलान करती हैं, "लो—सीता मइया का भक्त हनुमान आ

पहुंचा।" उसके वाद वे लोग मुस्कराते हुए खुद ही गहरी-गहरी डुवकियां लगाकर दूर की कोड़ी खोज लाने की कोशिश करती हैं, "अच्छा, हनुमान भी क्या सीता मइया के पांवों में ऐसे ही लोटा करता था ?" उसीसे सवाल करतीं, "ऐसा सुंड-मुसंड हनुमान तूने जुटाया कैसे, रे ?"

खैर, वे लोग इस तरह की ढेरों वकवास किया करतीं। नारायणी को बहुत वुरा लगता। सिर्फ गब्बू को लेकर ही नहीं, आजकल वे खुद भी मानो किसी अन-वूझ खुशी में मगन रहने लगी हैं। वूला'दी किसी तरह मार-काटकर बी० ए० पास करके एम० ए० पढ़ रही हैं! श्यामा'दी अभी तक बी० ए० में ही अटकी हुई हैं। इन दोनों के साथ दो-दो लड़कों की खासी पटरी वैठने लगी है! ये लड़के हमउम्र हैं, कमोवेश स्मार्ट और सुंदर भी हैं। रहन-सहन से भी संपन्न लगते हैं। मुमकिन है, काका को सचमुच खवर न हो, काकी मानो सव जान-समझकर भी अनजान वनी रहतीं। काका की अनुपस्थिति में उन दोनों लड़कों में से एक न एक जरूर यहीं धरना दिये रहता। देर-देर तक गप्पें भी होती थीं। दीदी लोगों के साथ वाहर निकलने पर दोनों में से एक का मिलना भी लगभग निश्चित है।

लेकिन आजकल दीदियां उसे थोड़ी-सी फुरसत भी देने लगी हैं। उसे लेकर वाहर निकलने का आग्रह फिलहाल कम होता जा रहा है। अपने दोस्तों के सामने उसकी वुलाहट भी कम ही होती है। इस मामले में भी वे दोनों भौंहें नचाकर इशारे करतीं और मुंह दवाकर हंसती रहतीं। कभी-कभी उनके मुंह से निकल ही जाता, "तुझे लेकर निकलूं, तो तेरी पहरेदारी कौन करेगा ? तुझे तो जो देखता है, ऐसे घूरने लगता है, जैसे तुझे कच्चा ही खा जाएगा।"

नारायणी सव देखती, समझती है! उसकी वहनें उसे अपने से कम बुद्धिमती समझती हैं, यही गनीमत है। सिर्फ वूला'दी, श्यामा'दी ही नहीं, अपनी इस उन्नीस साल की उम्र में उसके सिर पर और एक मुसीवत मंडराने लगी है। पता नहीं मर्दों की निगाहों की ऐसी सही-सही पहचान उसे कव से और कैसे होने लगी है! इन दिनों अपने प्रति किसी शख्स की प्रच्छन्न एकाग्रता अक्सर महसूस कर रही है। कम से कम पिछले छह महीनों से उसकी अनुरक्ति विलकुल साफ-साफ समझ में आ रही है। नारायणी ने यह वात किसी पर जाहिर नहीं होने दी। वह अपने पर ही सख्त पहरे लगाने की कोशिश करती। लेकिन इस घर में वह अपने को आखिर कहां छिपाये ?

इस घर में उस आदमी का काफी आना-जाना है। मामा जी—वूला'दी और श्यामा'दी का वड़ा स्पोर्टस्मैन मामा! काकी का सगा भाई!

नारायणी से उम्र में काफी वड़ा! करीव वत्तीस साल उम्र होगी! कलकत्ते के किसी मशहूर क्रिकेट-क्लव का मशहूर खिलाड़ी। वह किसी शानदार मेस में रहता है। कहीं वढ़िया-सी नौकरी भी करता है। दरअसल खेलना ही उसकी

नौकरी है! क्रिकेट की दुनिया में समरेंद्र गांगुली एक अहम नाम है। हफ्ते में दो दिन बहन के घर आ धमकता, भांजियों के साथ हो-हुल्लड़ मचाता, खेल-तमाशे दिखाने ले जाता। नारायणी से भी चलने की जिद की जाती।

उसे खेल चाहे समझ में आये या न आये लेकिन कई बार उसे भी खेल के मैदान में जाना पड़ा है। वहां मामा के ढेरों भक्त भी दिखाई दिये। खेल के वक्त मामा का नाम ले-लेकर सैंकड़ों-हजारों दर्शकों की उल्लास भरी चीत्कार भी वह सुन चुकी है। यानी खेल समझ में आया हो या न आया हो, मामा जी की अहमियत जरूर समझ में आ गयी थी।

उसे खेल समझने के बारे में मामा जी का आग्रह क्रमशः बढ़ता जा रहा था। बॉलर किसे कहते हैं, वे कितनी तरह की गेंद फेंकते हैं, किस गेंद की क्या खासियत है, खिलाड़ियों को किस तरह और कहां-कहां तैनात किया जाता है, बल्लेबाज को कितनी ओर निगाह रखनी पड़ती है, बल्लेबाजी में कितनी तरह की करामातें दिखायी जाती है—इस तरह की ढेरों छोटी-मोटी बातों के बहाने, वह उसे उल-झाये रहता।

नारायणी उसकी बातों का एक अक्षर भी नहीं समझती थी, सिर्फ अपने प्रति उसका तीव्र आग्रह जरूर महसूस करती थी। अंदर ही अंदर उसे अजीब-सी परे-शानी भी होने लगी। उन महाशय का आना-जाना भी क्रमशः बढ़ता जा रहा था। अब वह यहां देर-देर तक जमा रहता, कभी-कभी तो दो-तीन दिन टलने का नाम नहीं! अगर कहीं छुट्टी का दिन हुआ, तब तो कहना ही क्या? तब तो यह घर ही उनका डेरा! बूला'दी, श्यामा'दी की दबी हंसी, कुटिल दृष्टि भी क्रमशः स्पष्ट होने लगी! आंखों की इशारेबाजी भी बढ़ गयी। अब उनकी जुबान भी बेलगाम होती गयी!

आखिरकार एक दिन उसने खेल देखने जाने से साफ-साफ मना कर दिया। श्यामा'दी मानो आसमान से गिरी! उसने बनावटी गुस्सा दिखाते हुए कहा, "अरे, जाएगी कैसे नहीं? मामू को क्या गुस्सा दिलाना चाहती है?"

हां, इसमें पहलेवाले खेल में मामा ने जब पचास से ज्यादा रन बनाने शुरू किये, तो मैदान में तालियों की धूम मच गयी थी! दर्शकों के उत्साह भरे अभि-नंदन के जवाब में, मामाजी अपनी टोपी हिला रहे थे! अचानक श्यामा'दी ने नारायणी को कुहनी मारकर कहा, "देख! देख! मामा किसकी ओर देख-देख-कर टोपी हिला रहा है? तू ताली क्यों नहीं बजा रही?"

लेकिन उस दिन बूला'दी की जुबान जरा और खुल गयी थी। नारायणी आखिर कब तक अबूझ की तरह गवई-गवार, मासूम लड़की बनने की ऐक्टिंग करे? खेल में मामा जी के हाथ में चोट भी लग गयी। उनकी उंगलियां सूज गयीं। यानी जख्म काफी गहरा लगा था! सुनने में आया, उनके क्लब वाले फौरन उन्हें

एक्स-रे कराने दौड़े ! नहीं, हड्डी नहीं टूटी थी—यह जानने के बाद ही वे निश्चित हुए ! जाहिर है कि कई दिनों तक मामा इसी घर में थे !

उस दिन बूला'दी ने उनकी उंगलियों में दवा लगाने के लिए अचानक उसे भेज दिया। निरुपाय नारायणी को उनके हुक्म की तामील करनी ही पड़ी। उसकी पीठ पीछे दो जोड़ी निगाहें आपस में हंसी-ठिठोली कर रहीं हैं, यह भी उसने महसूस किया। जितनी देर वह दवा लगाती रही, मामा जी की निगाहें एकटक उसके चेहरे पर गड़ी रहीं। वे उसको घूरते हुए, उसके गांव और गांव-वालों, नाते-रिश्तेदारों के बारे में आलतू-फालतू सवाल भी करते जा रहे थे। अचानक उसका हाथ पकड़कर उन्होंने दर्द की सही जगह बताने की कोशिश की। नारायणी बेजान हाथों से वहां दवा लगाने लगी।

"अच्छा, तुम्हारी उम्र क्या होगी ?" उसकी सही-सही उम्र जानने के इरादे से उनकी निगाहें उसके चेहरे पर गड़ी रहीं।

नारायणी एकबारगी घबड़ा ही गयी। लेकिन उसने जानबूझकर अपनी घबड़ाहट व्यक्त नहीं होने दी। अगर कहीं वे समझ जाते, तो बचाव की कोई राह न बचती।

"उन्नीस !"

नारायणी की निगाहें दवा और जख्मी उंगलियों पर गड़ी रहीं। उसे किसीकी लंबी उसांस सुनाई दी !

"मैं सोच रहा था नौ-दस साल !"

पता नहीं यह हलका-सा मजाक भी वह कैसे बरदाश्त कर पायी। दवा लगाने के बाद, जब वह हाथ धोकर कमरे में लौटी तो दोनों बहनों ने बनावटी गंभीरता ओढ़ ली। उनका तना हुआ चेहरा देखकर वह घबरा गयी।

बूला'दी ने उसकी तरफ आंखें तरेरते-हुए कहा, "एइ, लड़की, जरा इधर तो आ !"

नारायणी सामने जाकर खड़ी हो गयी। "दवा लगा दी ?"

नारायणी ने सिर हिला दिया।

"मामू का दर्द कम हुआ ?"

नारायणी ने असहमति में सिर हिलाया।

"तब तूने क्या दवा लगायी ?"

नारायणी बुद्धू की तरह उन्हें देखती रही ! हंसी दबाने की कोशिश में श्यामा'दी का चेहरा लाल हो गया।

बूला'दी बेभाव हंस पड़ी।

वह उसी तरह सन्न खड़ी रही।

"सुन, तू हमारी मामी बनेगी ?"

उस दिन नारायणी उन्हे जितनी बेवकूफ लगी थी, उतनी शायद पहले कभी ही लगी। दोनों बहनें हसती-हसती कमरे से बाहर चली गयी।

···उस रात नारायणी तकिये मे मुह छुपाकर बेतरह रो पडी और अपनी मा को आवाजें देती रही। जब वह आवाजें देती-देती थक गयी तो मारे अभिमान के उसने खुद ही मुह फेर लेने की कोशिश की।

लेकिन ऊपरवाला कौन-सा खेल खेलने जा रहा था, इसकी किसी को खबर नहीं थी।

अल्ला मिया जब एकात तन्मयता के पलों मे किसी औरत का रूप रचता है, तो उसके पीछे शायद कोई खास मकसद भी होता है! इस रूपरसिक दुनिया में इसीलिए रूपसी की भूमिका इतनी विचित्र होती है!

विपुलानद ने नारायणी को पहले-पहल देखा था अलीपुर चिडियाघर में। जाहिर है कि उस वक्त तक उसे उसका नाम भी नही मालूम था। उसके स्वभाव या हैसियत के बारे में भी उसे कोई जानकारी नही थी। सामने फूलों के बाग के पास अचानक उस पर निगाह पडते ही मामाजी तपाक से आगे बढे। इसी से अदाज लग गया था कि वह कोई खास आदमी है। यू भी अगर वह जरा गौर से देखती, तो वह सबसे अलग, सबसे अनोखा···कोई खास शख्स नजर आता। दम-कता हुआ चेहरा! चुस्त-दुरुस्त पोशाक! चौबीस-पचीस साल का नौजवान!

यह भी समझ में आ गया कि खेल की बदौलत ही मामाजी से जान-पहचान हुई होगी। दो-चार बातों के बाद ही जाने कहा से खेल की चर्चा छिड गयी। नारायणी अपनी बहनों के साथ कुछ फासले पर खडी थी। मामाजी बहन के यहा होते तो भाजियो को लेकर कही न कहीं सैर को निकल पडते। भाजिया उन्हें खुद ही घेर लेतीं। नारायणी के लिए मना करने का भी उपाय नही। रसीले मजाक के नाम पर उनके कसैले व्यग्य दिल में कहीं गहरे चुभ जाते थे। इससे तो आसान था, आख-कान बद करके उनके साथ निकल पडना।

मामाजी से बातें करते हुए वह आदमी मुड-मुडकर उन लडकियों को भी देख रहा था। वैसे नारायणी को अगले ही क्षण आभास हो गया, वह खास तौर पर उसे ही देख रहा था और उसकी निगाहें घूम-फिरकर बार-बार उसी पर टिक जाती है। अब उसे मर्दों की निगाह झेलने की आदत पड चुकी है। चिडियाखाने में दाखिल होते ही जाने कितनी-कितनी जोडी निगाहों ने उसे घेर लिया था।

मामाजी साग्रह उसे साथ लेकर उन लडकियों के करीब चले आये।

उन्होने धीमी आवाज में अपनी भाजियों से कहा, "आओ, तुम लोगो परिचय करा दू। करोड़पति आदमी हैं। हमारे क्लब के बहुत बडे पैट्रन य सरक्षक!" उसके चेहरे पर सरक्षक का गुमान चमक उठा।

परिचय हुआ।

"ये हैं—बहुत बड़े उद्योगपति ए० ए० बागची के एकलौते सुपुत्र विपुलानंद बागची ! और ये हैं मेरी भांजियां बूला और श्यामा !"

बहुत बड़े उद्योगपति के बेटे के सहज सौजन्य में कहीं कोई त्रुटि नहीं थी। होंठों पर मीठी-सी मुस्कान। उसने भी हाथ जोड़ दिये। उसकी निगाहें बूला और श्यामा से फिसलती हुई नारायणी की तरफ मुड़ गयीं। वह एकाध पल को ठिठक गया।

"और इनकी तारीफ···?"

"ये···? ये नारायणी हैं। दूर के रिश्ते में इनकी चचेरी बहन।"

नारायणी ने देख लिया था, बूला और श्यामा बमुश्किल हंसी दबाने की कोशिश कर रही थीं। हां, मामा जी ने उसे अपनी नहीं कहा, यह बात किसी से छिपी नहीं रही।

विपुलानंद के दो विनीत संगी भी उसके पास ही खड़े थे। उसने इशारे में उन्हें चले जाने को कहा और खुद इस नए गिरोह के साथ धीमी चाल में आगे बढ़ने लगा।

मामाजी ने बताया कि सर्दी के मौसम में वे अक्सर ही दल-बल सहित जू-गार्डेन की सैर के लिए आते हैं।

विपुलानंद ने भी बताया कि वह यहां के अधिकारियों से फूलों के सिलसिले में बातचीत करने आया है।

बूला और श्यामा ने मन ही मन सोच लिया, बातचीत अगर अब तक नहीं हुई तो अब होगी भी नहीं। किसी रईस का बेटा इस वक्त जिस फूल के साथ-साथ चल रहा है, उसके मुकाबले बाग के फूल अब फीके पड़ चुके हैं। हां, उनका अंदाज गलत नहीं था। विपुलानंद के हाव-भाव से भी यही जाहिर था मानो वह जान-बूझकर उनके साथ नहीं आया, बल्कि लड़कियों ने ही उसे साथ लेकर उसे कृतार्थ कर दिया है। अपनी छोटी-सी उम्र में ही विपुलानंद ने ऐसी पढ़ी-लिखी, शांत-सौम्य खूबसूरती कम तो नहीं देखीं। लेकिन इस वक्त जो लड़की उसके सामने थी, उसके अंग-अंग से खूबसूरती मानो खिली पड़ती थी। इसके अलावा उस लड़की में ऐसा कुछ भी था, जिसे वह महसूस तो कर सकता था, लेकिन उसे ख्यालों में ठीक-ठीक बांध नहीं पा रहा था। उस वक्त सिर्फ यही लग रहा था कि राह चलते हुए ऐसी भरपूर खूबसूरती का साथ उसे पहले कभी नसीब नहीं हुआ ! अगर ये राहें कभी खत्म ही न हों, तो भी कोई नुकसान नहीं !

गप्पें होती रहीं, चिड़ियाखाने की सैर भी होती रही। लेकिन नारायणी को मानो उनकी बातों से कोई मतलब ही न हो। वह तो एकाग्रचित्त से ज़ीव-जंतुओं को देख रही थी। लेकिन बीच-बीच में उसकी तन्मयता टूट भी जाती थी। बहनों की हंसी मानो पैनी छुरी की तरह उसे टुकड़े-टुकड़े किये दे रही थी। नारायणी

लगा उस रईसजादे के बारे में वे लोग पहले से ही जानती थीं, इसीलिए उनकी दबी-दबी हंसी के साथ, उनके हाव-भाव में दबी उत्तेजना का भी आभास था। मामाजी अपने मेल के किस्सों में मस्त थे और यह सद्यः परिचित आदमी रह-रहकर सिर हिला रहा था, बीच-बीच में हंस भी रहा था, लेकिन ज्यादातर उसकी अनमनी निगाहें नारायणी के चेहरे पर ठिठक जाती थीं। इधर-उधर गरदन घुमाते हुए, नारायणी ने कई-कई बार उसकी निगाहें अपने चेहरे पर महसूस कीं। जितनी बार उस पर नजर पड़ी, वह नर्वस हो गयी। यूं और लोग भी उसे चोर निगाहों से देखा करते हैं, लेकिन उस शख्स की निगाहों में कोई बनावट या फरेब नहीं था। किसी भी देखने लायक चीज को बिलकुल इसी तरह मुग्ध निगाहों से देखते रहने की—मानो उसे आदत हो।

अगर सोचने बैठो तो इस दुनिया में जाने कितना कुछ असंभव और अस्वाभाविक लगता है ! ना ! कोई तर्क या सभव-असभव को लेकर वह परेशान नहीं थी। सिर्फ कोई अजानी अनुभूति उसे रह-रहकर उदास करती जा रही थी। लंबे-चौड़े जू-गार्डन का आधा चक्कर पूरा करने के पहले ही दिन की रोशनी धुंधली पड़ने लगी। नारायणी के दिल में भी बिलकुल उसी किस्म की एक उदास छाया उतर आयी। उसका दिल कह रहा था, शायद अब फिर किसी मुसीबत के आसार नजर आने वाले हैं। शायद अब फिर किसी खतरे से जूझने के दिन करीब आते जा रहे हैं। कहीं कुछ फिर बदलने वाला है। यह सब उसे क्यों लग रहा है, वह खुद भी नहीं जानती। अच्छा, क्या सच ही उसके अंदर कोई छठी इंद्रिय भी है ? वर्ना उसे इस तरह के ख्याल क्यों आ रहे हैं ?

बहनों के हंसी-मजाक और किस्सों का दौर किंचित् सहज हो आया। मामा की जुबानी उन्हें इस रईसजादे का नाम मालूम हो चुका था।

अरबपति आदमी आखिर कितना अमीर होता है, इसका कोई अंदाजा न होने के बावजूद उस आदमी की थोड़ी-बहुत खुशामद के इशारे से बूला'दी ने अपने मामा से कहा, "अब चला नहीं जा रहा मामू, चलो, अब कहीं चाय पिलाओ।"

श्यामा ने कहा, "लेकिन मुझे तो भूख भी लग आयी है—"

समरेंद्र सागुली यानी मामू ने फौरन सामनेवाले फैशनेबल रेस्तरां की तरफ इशारा करते हुए कहा, "चलो, वहां चलते हैं।"

हरी-हरी घास पर सजी हुई मेज-कुर्सियां ! बहुत से लोग वहां पहले से सार्थ रहे थे। श्यामा, बूला खुशी-खुशी आगे बढ़ी ही थीं कि अचानक ठिठक गयीं।

रईस मेहमान जाने किस दुविधा में पड़ गया था !

"चलिए न—"

मामू के अरबपति सरक्षक के चेहरे पर संकोचभरी दुविधा झलक रही थी।

"वहां···? इससे तो बेहतर है, हम बाहर निकलकर, कहीं और चलकर बैठें।"

श्यामा किसी अनिश्चयता में पड़ने को राजी नहीं थी! उसने कहा, "बाहर टैक्सी खोजने में ही जान निकल जाएगी।"

विपुलानंद ने कहा, "नहीं, जान नहीं निकलेगी। चलिए।"

खिलाड़ी समरेन्द्र-गांगुली चटपट राजी हो गया, "हां, हां! चलिए, बाहर ही चलते हैं। यहां मजा नहीं आयेगा।"

मौका पाकर उसने श्यामा को कुहनियाते हुए फुसफुसाकर कहा, "तू न किससे क्या कह जाती है! कित्ता बड़ा आदमी है! उसके पास गाड़ी है! इसके अलावा उसे ऐसी जगहों में खाने की आदत भी नहीं होगी। तू देख तो सही, वह कहां ले जाता है।"

बाहर उसकी गाड़ी देखकर, समरेंद्र गांगुली की न सही, लड़कियों की आंखें अचरज से फैली रह गयीं। चढ़ने की बात तो दूर ऐसी गाड़ी उन्होंने शायद पहले कभी देखी भी नहीं थी। तगमाधारी ड्राइवर ने अदब से दरवाजा खोल दिया। तीनों बहनें पिछली सीट पर बैठ गयीं। मामू सामने। ड्राइवर इशारा पाकर उसी तरह खड़ा रहा। विपुलानंद ने ड्राइवर की सीट संभाली।

नारायणी मानो कोई सपना देख रही हो! मन के अंदर पहले कभी इस तरह के अहसास नहीं जागे। गाड़ी की बजाय मानो वह किसी निश्चित धार में बही जा रही हो। इस धार में उसे बहना चाहिए या नहीं, यह एक बार भी नहीं सोचा। बस, उसका मन कह रहा था, कुछ होनेवाला है और उस पर उसका रंच-मात्र भी वश नहीं!

बाद में···बहुत बाद में···नारायणी खुद ही अवाक हुई है। आनेवाले दिनों की छाया उसके मन के आकाश पर, इतनी साफ-साफ कैसे उभर आयी थी?

बीच-बीच में दोनों बहनें एक-दूसरे के कान में कुछ-कुछ फुसफुसा भी रही थीं! उनकी फुसफुसाहट के बारे में वह अंदाजा लगा सकती थी। श्यामा' दी ने एकबार उसकी जांघ में जोर से चिकोटी भी भरी। उसे चौंकते देखकर, उसके कान में फुसफुसाते हुए विरक्ति जाहिर की, "एइ, लड़की, तू जरा हंस भी नहीं सकती?"

मामू बंगला-दल के आगामी चुनाव के बारे में धाराप्रवाह बोले जा रहे थे। और किसी तरफ उनकी न आंखें थीं, न कान, न मन। बस, बेसिर-पैर की हांके जा रहे थे! बगलवाला चालक उनकी बातें सुन भी रहा है या नहीं, पता नहीं चल रहा था। यहां तक कि वह गाड़ी भी चला रहा है, या नहीं, यह भी समझ नहीं आ रहा था। शिथिल मुद्रा में बैठा हुआ। दोनों हाथ अलसभाव से स्टीयरिंग थामे हुए। गाड़ी मानो खुद ही जमीन से जरा ऊपर उठकर हवा में तैर रही हो!

नारायणी खामोश निगाहों से बस देखती रही !

गाड़ी रुकते ही, सब लोग कहां आ गये, नारायणी मानो इसका भी अंदाजा नहीं लगा पायी। दुनिया में कहीं ऐसी जगहें भी हैं, उसे पता नहीं था। बाहर के लंबे-चौड़े हॉल में चमकती-दमकती मेजें ! जाने कितने-कितने लोग ! मानो वहां कोई खामोश उत्सव चल रहा हो। नहीं, ठीक खामोश भी नहीं, कहीं कोई मीठी-सी धुन भी बज रही थी। वे लोग किसी गोल कमरे में दाखिल हुए। फिट फाट किस्म का एक साहबनुमा आदमी लपककर उनकी ओर बढ़ा। विपुलानंद ने उससे जाने क्या कहा ? वह आदमी एक चिट पर पेंसिल से कुछ-कुछ लिखता रहा उसके बाद तेज-तेज कदमों से बाहर निकल गया। उसके बाद जाने कितनी-कितनी तरह की प्लेटों का ढेर लग गया !—खाने की चीजों का ढेर ! छुरी ! कांटा ! चम्मच !

मामाजी उस वक्त भी खेल के मैदान में ही भटक रहे थे। खाने की खुशबू पाकर उनके खेल का नशा मानो और तेज हो उठा। उन्होंने कहा, "सोच रहा हूं, अगले सेल में यहां मैच होने का प्रस्ताव दे डालूं।"

बूला'दी ने नारायणी को फिर एक ठुनका मारा। सबसे नजरें बचाकर उसने फुसफुसाकर निर्देश दिया, "हम लोग कैसे खाते हैं, पहले यह अच्छी तरह देख ले।"

नारायणी के सामने मानो कोई कठिन परीक्षा की स्थिति हो ! अपनी ही इज्जत बचाने के तकाजे पर श्यामा'दी भी मानो उसे पास करने की कोशिश में लगी हुई थी ! श्यामा'दी ने बायें हाथ में कांटा और दाहिने हाथ में छुरी पकड़ी। दोनों चीजें कैसे पकड़नी होंगी, आहिस्ते-से यह भी बता दिया। लेकिन नारायणी सब देख-सुनकर भी मानो अपने पर भरोसा नहीं कर पा रही थी। कांटे को तो चम्मच की तरह पकड़ लिया लेकिन छुरी का उल्टा-सीधा पता ही नहीं चल रहा था। उसे तो यह भी पता नहीं था, कि चम्मच आखिर किस काम आयेगा ! मौका देखकर श्यामा ने ही नैपकिन उठाकर उसकी गोद में बिछा दी। वैसी गर्मी भी नहीं थी, लेकिन नारायणी अंदर ही अंदर पसीने से नहा उठी, क्योंकि उसे पता चल गया था कि उसे देखकर दोनों बहनों का चेहरा लाल हो उठा है।

जितना-सा उसने मुंह में डाला, उसे बहुत अच्छा लगा ! उसे भूख भी इतनी कसकर लगी थी कि अगर उसे किसी तरह का संकोच न होता, तो वह कई प्लेटें साफ कर जाती। लेकिन उसके अंदर तो धुकधुकी मची हुई थी। छुरी-कांटे के सहारे जो टुकड़े काट रही थी, वह भी ठीक तरह नहीं खा पा रही थी। वह मन ही मन मामाजी की कृतज्ञ हो आयी। खाते वक्त भी वे उत्साहित लहजे में गेंदबाज से मुकाबले का कायदा और बल्लेबाज की करामातें समझाने की कोशिश में लगे थे। नारायणी का ख्याल था, फिलहाल इस वक्त सबका ध्यान खाने और मामाजी

"वहां···? इससे तो बेहतर है, हम बाहर निकलकर, कहीं और चलकर बैठें।"

श्यामा किसी अनिश्चयता में पड़ने को राजी नहीं थी ! उसने कहा, "बाहर टैक्सी खोजने में ही जान निकल जाएगी।"

विपुलानंद ने कहा, "नहीं, जान नहीं निकलेगी। चलिए।"

खिलाड़ी समरेन्द्र-गांगुली चटपट राजी हो गया, "हां, हां ! चलिए, बाहर ही चलते हैं। यहां मजा नहीं आयेगा।"

मौका पाकर उसने श्यामा को कुहनियाते हुए फुसफुसाकर कहा, "तू न किससे क्या कह जाती है ! कित्ता बड़ा आदमी है ! उसके पास गाड़ी है ! इसके अलावा उसे ऐसी जगहों में खाने की आदत भी नहीं होगी। तू देख तो सही, वह कहां ले जाता है।"

बाहर उसकी गाड़ी देखकर, समरेंद्र गांगुली की न सही, लड़कियों की आंखें अचरज से फैली रह गयीं। चढ़ने की बात तो दूर ऐसी गाड़ी उन्होंने शायद पहले कभी देखी भी नहीं थी। तगमाधारी ड्राइवर ने अदब से दरवाजा खोल दिया। तीनों बहनें पिछली सीट पर बैठ गयीं। मामू सामने। ड्राइवर इशारा पाकर उसी तरह खड़ा रहा। विपुलानंद ने ड्राइवर की सीट संभाली।

नारायणी मानो कोई सपना देख रही हो ! मन के अंदर पहले कभी इस तरह के अहसास नहीं जागे। गाड़ी की बजाय मानो वह किसी निश्चित धार में बही जा रही हो। इस धार में उसे बहना चाहिए या नहीं, यह एक बार भी नहीं सोचा। बस, उसका मन कह रहा था, कुछ होनेवाला है और उस पर उसका रंच-मात्र भी वश नहीं !

बाद में···बहुत बाद में···नारायणी खुद ही अवाक हुई है। आनेवाले दिनों की छाया उसके मन के आकाश पर, इतनी साफ-साफ कैसे उभर आयी थी ?

बीच-बीच में दोनों बहनें एक-दूसरे के कान में कुछ-कुछ फुसफुसा भी रही थीं ! उनकी फुसफुसाहट के बारे में वह अंदाजा लगा सकती थी। श्यामा' दी ने एकबार उसकी जांघ में जोर से चिकोटी भी भरी। उसे चौंकते देखकर, उसके कान में फुसफुसाते हुए विरक्ति जाहिर की, "एइ, लड़की, तू जरा हंस भी नहीं सकती ?"

मामू बंगला-दल के आगामी चुनाव के बारे में धाराप्रवाह बोले जा रहे थे। और किसी तरफ उनकी न आंखें थीं, न कान, न मन। बस, बेसिर-पैर की हांके जा रहे थे ! बगलवाला चालक उनकी बातें सुन भी रहा है या नहीं, पता नहीं चल रहा था। यहां तक कि वह गाड़ी भी चला रहा है, या नहीं, यह भी समझ नहीं आ रहा था। शिथिल मुद्रा में बैठा हुआ। दोनों हाथ अलसभाव से स्टीयरिंग थामे हुए। गाड़ी मानो खुद ही जमीन से जरा ऊपर उठकर हवा में तैर रही हो !

नारायणी खामोश निगाहों से बस देखती रही !

गाड़ी रुकते ही, सब लोग कहां आ गये, नारायणी मानो इसका भी अंदाजा नहीं लगा पायी। दुनिया में कहीं ऐसी जगहें भी हैं, उसे पता नहीं था। बाहर के लंबे-चौड़े हॉल में चमकती-दमकती मेजें ! जाने कितने-कितने लोग ! मानो वहां कोई खामोश उत्सव चल रहा हो। नहीं, ठीक खामोश भी नहीं, कहीं कोई मीठी-सी धुन भी बज रही थी। वे लोग किसी गोल कमरे में दाखिल हुए। फिट फाट किस्म का एक साहबनुमा आदमी लपककर उनकी ओर बढ़ा। विपुलानंद ने उससे जाने क्या कहा ? वह आदमी एक चिट पर पेंसिल से कुछ-कुछ लिखता रहा उसके बाद तेज-तेज कदमों से बाहर निकल गया। उसके बाद जाने कितनी-कितनी तरह की प्लेटों का ढेर लग गया!—खाने की चीजों का ढेर! छुरी! काटा! चम्मच!

मामाजी उस वक्त भी खेल के मैदान में ही भटक रहे थे। खाने की खुशबू पाकर उनके खेल का नशा मानो और तेज हो उठा। उन्होंने कहा, "सोच रहा हूं, अगले खेल में थर्ड मैन होने का प्रस्ताव दे डालूं।"

बूला'दी ने नारायणी को फिर एक ठुनका मारा। सबसे नजरें बचाकर उसने फुसफुसाकर निर्देश दिया, "हम लोग कैसे खाते हैं, पहले यह अच्छी तरह देख लें।"

नारायणी के सामने मानो कोई कठिन परीक्षा की स्थिति हो ! अपनी ही इज्जत बचाने के तकाजे पर श्यामा'दी भी मानो उसे पास करने की कोशिश में लगी हुई थीं ! श्यामा'दी ने बायें हाथ में काटा और दाहिने हाथ में छुरी पकड़ी। दोनों चीजें कैसे पकड़नी होंगी, आहिस्ते-से यह भी बता दिया। लेकिन नारायणी सब देख-सुनकर भी मानो अपने पर भरोसा नहीं कर पा रही थी। काटे को तो चम्मच की तरह पकड़ लिया लेकिन छुरी का उलटा-सीधा पता ही नहीं चल रहा था। उसे तो यह भी पता नहीं था, कि चम्मच आखिर किस काम आयेगा ! मौका देखकर श्यामा ने ही नैपकिन उठाकर उसकी गोद में बिछा दी। वैसे गर्मी भी नहीं थी, लेकिन नारायणी अंदर ही अंदर पसीने से नहा उठी, क्योंकि उसे पता चल गया था कि उसे देखकर दोनों बहनों का चेहरा लाल हो उठा है।

जितना-सा उसने मुंह में डाला, उसे बहुत अच्छा लगा ! उसे भूख भी इतनी कसकर लगी थी कि अगर उसे किसी तरह का संकोच न होता, तो वह कई प्लेटें साफ कर जाती। लेकिन उसके अंदर तो धुकधुकी मची हुई थी। छुरी-काटे के सहारे जो टुकड़े काट रही थी, वह भी ठीक तरह नहीं खा पा रही थी। वह मन ही मन मामाजी की कृतज्ञ हो आयी। खाते वक्त भी वे उत्साहित लहजे में गेंदबाज से मुकाबले का कायदा और बल्लेबाज की करामातें समझाने की कोशिश में लगे थे। नारायणी का ख्याल था, फिलहाल इस वक्त सबका ध्यान खाने और मामाजी

की वातें सुनने में लगा हुआ है।

लेकिन अचानक उसके हाथ रुक गये। कम से कम एक इंसान का ध्यान उसी की तरफ लगा हुआ था। मामाजी की वकवास सुनते-सुनते उसकी निगाहें कई-कई वार उसके खाने पर टिक गयीं। अंत में उसने सीधे-सीधे ही उसकी तरफ देखा। उसकी देखादेखी, मामाजी की निगाहें भी नारायणी की तरफ घूम गयीं। वहनों के चेहरे पर अव्यक्त झल्लाहट अव शायद व्यक्त होने वाली थी।

नारायणी ने विना कुछ सोचे-समझे छुरी-कांटा मेज पर रख दिया। वह कभी ऐसी फजीहत में नहीं पड़ी थी।

"आप खा नहीं रही हैं?" विपुलानंद ने पहली वार उससे वात की, "और कुछ मंगाऊं?"

नारायणी जवाव भी दे सकती है, किसीने नहीं सोचा था। शायद खुद नारायणी भी इसके लिए तैयार नहीं थी। उसने वेहद परेशान और ठंडी निगाहों से विपुलानंद की तरफ देखा और हठात ही कह उठी, "···असल में मुझे छुरी-चम्मच से खाने की आदत नहीं!"

विपुलानंद ने आभिजात्य का भरा-पूरा रूप अक्सर देखा है, लेकिन किसी मामूली घर की ऐसी खवसूरत लड़की के मुंह से ऐसी निश्चित, और सहज-सरल मधुरता के अधूरेपन पर शायद पहली वार नजर पड़ी थी। करोड़पति का वेटा अगर हैरानी या संकोच जाहिर करता, तो वाकी लोग भी शर्म से गड़ जाते। वहनें तो उसे कभी माफ नहीं करतीं। लेकिन किसी को भी शर्म से मुंह छिपाने की जरूरत नहीं पड़ी। विपुलानंद ने वेहद सहज-सा काम किया। कांच के वर्तन में पानी उंड़ेलकर, उसकी तरफ वढ़ा दिया, "लीजिए, हाथ धो लीजिए! आदत न हो तो शर्म की क्या वात है?"

नारायणी भी कुछ सोच नहीं पायी। उसने पानी में हाथ भिगो लिया। हां, उसके हाथ में पसीना आने लगा था। उसे मालूम था, खाने की मेज पर यूं चुपचाप वैठे रहना सवको वुरा लगेगा। जिस वरतन में उसने हाथ भिगोया था, विपुलानंद ने उसे अपनी तरफ खींच लिया और उसने भी हाथ धो डाले। उसके वाद, छुरी-कांटा एक ओर हटाकर, उसने भी हाथ से ही खाना शुरू किया।

नारायणी ने राहत की सांस ली। वह मन ही मन उस आदमी के प्रति कृतज्ञ हो आयी। मामाजी ने वारी-वारी से दोनों की तरफ देखा और फिर जोर का ठहाका लगाते हुए छुरी-कांटा फेंककर, उन्होंने भी सीधे-सीधे हाथ से ही खाना शुरू किया। वे हाथ-वाथ धोने के चक्कर में भी नहीं पड़े। अव दोनों वहनें अजव आफत में फंस गयीं। अगर वे भी हाथ से ही खाना शुरू कर देतीं तो वे वेहद नकलची समझी जातीं।

वूला ने कहा, "असल में अभी यह गांव से नयी-नयी आयी है, इसीलिए शहरी

कायदे अभी तक ठीक तरह सीख नहीं पायी है।"

नारायणी की आखो मे अचरज भर गया। उसे यहा आये दो साल होने को और बूला कह रही है—'अभी वह गाव से नयी-नयी आयी है?'

विपुलानद ने नारायणी की आखो मे झाकते हुए सवाल किया, "गाव से··· मे गाव मे?"

नारायणी ने अस्फुट आवाज मे जवाब दिया, "तारपाशा—"

तारपाशा गाव के बारे मे विपुलानंद की कोई जानकारी नहीं, न ही कोई दिलचस्पी! कानो मे तो बस, उसकी मीठी आवाज भर गूजती रही। कुछेक पल चुपचाप उसी आवाज की रुनझुन मे डूबा रहा, उसके बाद दुबारा पूछा, "यहा घूमने आयी है?"

जिसके पास खूबसूरती होती है, न चाहते हुए भी उसके आस-पास भीड लग जाती है; बेजरूरत ही बहुत कुछ मिलता है। बूला और श्यामा शायद यही सोच रही थीं।

नारायणी को चुप देखकर, श्यामा ने ही जवाब दिया, "तारपाशा ढाका की तरफ है। वहा अब कैसे जाएगी? अब तो हमेशा के लिए चली आयी है।"

"ओ···अच्छा!" विपुलानद को मालूम है, और ज्यादा बात बढाना शोभा नहीं देगा।

खाना खत्म होते ही बैरा बिल ले आया। विपुलानद के हाथ मे बिल देखकर समरेन्द्र गागुली जरा चंचल हो उठा। उसने मूली-सी आपत्ति जताते हुए कहा, "····आप क्यों—?"

लेकिन जेब के पैसे, बिल चुकाने मे पूरे पड़ेंगे या नहीं, इसका कोई अदाजा न होने की वजह से उसकी आपत्ति जरा कमजोर सुनाई दी। खैर, बिल का अदाजा बूला को भी नहीं था, अतः उसने जोर देकर कहा "अरे, यह तो सरासर नाइसाफी है! हम लोग ही आपको जोर-जबरदस्ती पकड लाये—"

फिर वही गाडी! फिर घर! गाडी से उतरकर, बूला ने ही सब की तरफ से आमत्रण दिया, "अरे, आप यहीं से क्यो लौटे जा रहे हैं? जरा देर बैठिएगा नहीं?"

जवाब मे विपुलानद ने हाथ जोडकर नमस्कार करते हुए कहा "नहीं, आज नहीं। फिर कभी आऊगा।"

चूकि नारायणी को आदत नहीं थी, अत एकमात्र उसीने उसके नमस्कार का जवाब नहीं दिया। फिर भी उसे यही लगा, जाते-जाते उस आदमी की नजर उसी पर थी और उसने विदा भी मानो सिर्फ उसी से ली हो!

घर मे दाखिल होते ही दोनो बहनों ने उसे घेर लिया। श्यामा ने उसके गाल पर चिकोटी काटकर, उसका सिर बायें से दायें झकझोर दिया। बूला उसकी

तरफ देखती हुई हंस दी। उन्हें यह भी होश नहीं रहा कि मामू उनके पीछे ही खड़े हैं।

मामा ने कहा, "आज न तूने नाक काट दी! अब से तेरा घर में भी हाथ में खान बंद!"

बूला ने चूहल के अंदाज में नारायणी का पक्ष लेते हुए कहा, "उसे क्यों डांटा जा रहा है? नाक उसने कटायी नहीं, बल्कि रख ली! ऐसा खाना क्या तुम्हारी या हमारी बदौलत मिला?"

दोनों बहनों ने जोर का ठहाका लगाया। लेकिन अगले ही पल उन्हें अपनी हंसी पर अंकुश लगाना पड़ा। मामू की विस्मित-विमूढ़ आंखें उन्हीं दोनों के चेहरे पर टिकी हुई थीं। इतनी देर बाद अब जाकर उनकी आंखों के आगे से क्रिकेट का मैदान धीरे-धीरे बिलकुल सूना और वीरान हो गया।

विपुलानंद ने अपना वादा निभाया था। वह दुबारा आया।

उस वक्त शाम के चार बजे थे। बूला'दी, श्यामा'दी अभी कालेज से लौटी नहीं थीं। काका भी घर पर नहीं थे। काकी अभी-अभी दोपहर की नींद पूरी करके उठी थीं, अभी भी अलसायी हुई थीं। कुंडा खटखटाने पर नारायणी ही दरवाजा खोलने आयी। जरूर कोई घर का ही आदमी होगा।

दरवाजा खोलते ही वह भौंचक्की रह गयी। उसके सामने खड़ा था—मामू का संरक्षक, करोड़पति का बेटा—विपुलानंद बागची! उसके पीछे, पिछले दिन की तरह ही चमचमाती हुई एक नये मॉडल की गाड़ी!

विपुलानंद ने हंसते हुए नमस्कार किया!

लेकिन नारायणी के दोनों हाथ मानो दरवाजे से ही चिपक गये थे। हैरान-परेशान सूरत! वह एकटक उसे देखती रही। घुटनों तक खुले-खुले बाल। बदन पर पड़ी हुई मामूली-सी। साड़ी नंगे पांव। उसकी गहरी-काली आंखें एकटक उसके चेहरे पर गड़ गयीं। उसे जैसे मालूम था कि वह आयेगा। लेकिन इस वक्त वह क्यों आया है, उसके चेहरे पर शायद वह यही टटोल रही थी।

विपुलानंद को ऐसी अभ्यर्थना शायद जिंदगी में पहली बार मिली थी। जहां कहीं वह आता-जाता, बाकायदा हलचल मच जाती। मर्द-औरतों में आग्रह और हंगामा मच जाता। पल भर की यह मुलाकात भी विपुलानंद को असाधारण लगी।

उसने पूछा, "समरेंद्र साहब नहीं हैं?"

"वे यहां तो नहीं रहते।"

"मालूम है। मैं पहले उन्हीं के यहां गया था, पता चला वे यहां आये हैं।

आपने शायद मुझे पहचाना नही ?"

नारायणी ने सिर हिलाया यानी वह पहचानती है !

भविष्यवाला विपुलानंद होता, तो ऐसी स्थिति मे जाने क्या करता, लेकिन उस दिनवाला विपुलानंद पूरे तौर पर उद्योगपति नही बना था, अपने उद्योगपति पिता के हाथो, व्यापार की दुनिया मे उसका अभी श्रीगणेश भर ही हुआ था। इसी-लिए उस दिनवाले विपुलानद को यह अजीबोगरीब अभ्यर्थना भी बेहद अनोखी और आकर्षक लगी। वह अदर ही अदर विस्मय और कौतुक से भर उठा। अभ्यर्थना की यह अनभ्यस्त सकपकाहट भी उसे बेहद भली लगी।

"आपकी दीदिया भी घर पर नही है ?"

नारायणी ने इकार की मुद्रा मे सिर हिला दिया।

"समरेंद्र साहब आते ही होंगे ! जरा इतजार कर सकता हू ?"

नारायणी ने दरवाजे पर से हाथ हटा लिया। इतनी देर बाद उसे होश आया, उसे घर के अदर बुलाकर बैठने को कहना चाहिए। लेकिन वह किसी दुविधा मे पड गयी।

उसने कहा, "घर मे तो कोई भी नही है ! आप बैठिए ! मैं काकी को बुलाती हूं।"

विपुलानद ने कोई आपत्ति नही की। शात-शिष्ट बच्चे की तरह वह उसके पीछे-पीछे कमरे मे दाखिल हुआ और लकडी की कुर्सी खीचकर बैठ गया।

उसी ने कहा, "काकी मुझे पहचानेंगी कैसे ? समरेंद्र साहब को आ लेने दीजिए; तब तक आप ही बैठिए न ! आपकी दीदी लोग कहा है ?"

"कॉलेज गयी है। लौटने का वक्त हो आया है।"

"आप नही पढ़ती ?"

नारायणी ने सिर हिला दिया—नही, वह नही पढ़ती !

विपुलानद अवाक् हो उठा। उसके जवाब मे कही हलकी-सी भी कुठा नही थी। उसकी खामोश निगाहे एकटक उसके चेहरे पर टिकी रही। ऐसी सहज दृष्टि भी शायद उसने पहले कभी नही देखी !

"आप अपने गांव से कब आयी ?"

"दो साल हुए !" इतना कहकर वह अचानक सकपका गयी। उसे ख्याल आया, पिछले दिन बूला'दी ने कुछ और कहा था।

लेकिन विपुलानद को कुछ याद नही। शायद उसकी आवाज सुनने के लिए ही वह बातें किये जा रहा था। उसकी आवाज की रुनझुनाहट ही कानो मे बज रही थी।

"आपने अपने गाव का क्या नाम बताया ?"

"तारपाशा ! पद्मा पार !"

विपुलानंद ने पद्मा नदी नहीं देखी लेकिन उसकी उत्सुक निगाहें पद्मा-पार की बेटी पर गड़ गयीं, "आपके माता-पिता भी वहीं रहते हैं ?"

"बप्पा-मां नहीं हैं।"

विपुलानंद ईषत सकपका गया, "और कौन-कौन है आपका ? और कोई नहीं है ?"

उसकी काली-गहरी आंखों में कोई छाया उभर आयी। नहीं, उसका कोई नहीं है, ऐसा तो वह आज भी नहीं सोच सकती। जो लोग हैं, वे लोग उसके कितने अपने हैं, नंद'दा हैं, बच्चे हैं, गब्बू भी है ! नहीं, उसका कोई नहीं है, ऐसा वह नहीं कह सकती। ऐसा बोलना अशुभ होगा। लेकिन जो लोग उसके नितांत अपने और सगे हैं, उनके बारे में कहे कैसे ? नारायणी ने कोई जवाब नहीं दिया, बस, चुप हो रही।

विपुलानंद सोच रहा था, यह चर्चा न छेड़ता, तो बेहतर होता। यह प्रसंग छेड़कर उसने अचानक ही मानो उसका अकेलापन याद दिला दिया हो।

उसे एकबारगी होश आ गया—वह बैठा हुआ है, वह लड़की अभी तक खड़ी है ! उसकी सौजन्यता में कभी ऐसी भूल नहीं हुई। उसने हड़बड़ाकर कहा, "आप खड़ी क्यों हैं ? बैठिए न !"

नारायणी ने जुबान नहीं खोली। वह बैठी भी नहीं। उस दिन चिड़ियाखाने और रेस्तरां में जैसे उसकी चुभती हुई निगाहें महसूस की थीं, आज भी वह चुभन ! बूला'दी और श्यामा'दी का हंसी-मजाक, फिकरे अभी तक वह भूली नहीं थी मामाजी की वह विमूढ़ मुद्रा भी उसे याद है ! इन तमाम बातों की प्रतिक्रिया में वह उसकी तरफ एकटक देख रही थी। उसके देखने में कहीं कोई दुराव-छिपाव भी नहीं। कहीं कुछ नजरअंदाज कर देने की भी कोशिश नहीं। जुबान से चाहे कुछ न बोले, लेकिन उसकी निगाहों में एक अव्यक्त-सा सवाल कुछ ज्यादा ही स्पष्ट हो उठा था। मानो वह जानना चाहती हो—वह यहां क्यों आया है ? उसे बैठने को क्यों कह रहा है ?

विपुलानंद समझ गया। उसने दुबारा उसे बैठने को नहीं कहा। अब उसका भी उठ जाना उचित है। लेकिन यह उचित काम भी वह नहीं कर पाया। यूं उसकी चौबीस साल की जिंदगी में आनेवाली वह कोई पहली खूबसूरत औरत नहीं थी। ऐसी औरतें दुर्लभ भी नहीं थीं, बल्कि वही उनके लिए दुर्लभ था। लेकिन इस वक्त जो उसके सामने खड़ी थी, उसकी खूबसूरती में रूप गौण था, औरत की लोभनीय सुषमा ही मानो रूप के मुहाने पर आकर स्थिर हो गयी थी।

समरेंद्र गांगुली अभी तक नहीं आया ! पता नहीं, वह सचमुच आनेवाला भी था या नहीं !

बूला और श्यामा यथासमय आ पहुंचीं ! मेहमान की यथासंभव खातिर-

तरजीह भी की। हंसी-दिल्लगी में वह शहर की अन्य आधुनिकाओं की तरह मुखर हो उठी। मेहमान के विदा हो जाने के बाद उन्होंने नारायणी से मानो पानी में भिगो-भिगोकर ऐसे-ऐसे सवाल पूछे कि उसकी नाक में दम कर दिया। लेकिन आज नारायणी को कोई खास घबराहट नहीं हुई। अंदर ही अंदर मानो किसी बाजी की अनजान तैयारी चल रही हो। बेहद हैरतंगेज बाजी। उसे याद आया, दद्दू के उस बूढ़े मेहमान ने भविष्यवाणी की थी—यह राजरानी बनेगी! इतनी-सी उम्र में उसने जाने कितने-कितने परिवर्तन झेले हैं! उसका मन कह रहा था, अब वह फिर किसी परिवर्तन के मुहाने पर खड़ी है।

इसीलिए कुछेक दिनों बाद ही, जब समूचे घर में अचानक उत्तेजना की लहर फैल गयी, उस वक्त भी एक मात्र वही बेहद शांत और निर्लिप्त दिखी। काका अचानक बुरी तरह हड़बड़ा गये। काकी की नजर भी उस पर खास मेहरबान हो उठी। बहनें भी उसे बुरी तरह घेरने लगीं। मामाजी की हंसी पहीं गायब हो गयी, शायद उन महाशय की आंखों के आगे खेल का मैदान बिलकुल गायब हो चुका था। वे एकदम गुमसुम-से बस, टुकुर-टुकुर देखा करते। नारायणी भी बस, खामोश निगाहों से तमाशा देख रही थी और अपने को किसी भी नियति के कदमों पर समर्पित कर देने की कोशिश में बस थकती जा रही थी।

लेकिन नारायणी सचमुच दिशाहारा हो उठी थी—ब्याह के बाद!

दिन भी शुभ था! लग्न भी शुभ था! अतः शुभ-लग्न, और शुभ क्षणों में देखे हुए इंसान को, मानो फिर नये सिरे से देख रही हो! उस वक्त भी उसकी खामोश निगाहों में अव्यक्त-सा सवाल था—"सुनो, मैं जो हूं, बस, वही हूं! लेकिन कहीं तुमने मुझे उससे ज्यादा तो नहीं समझ लिया? कहीं कोई भूल तो नहीं कर बैठे? अगर भूल भी कर बैठे हो, तो उसका बोझ संभाल सकोगे न? जिंदगी की यह मिठास अमिट और विशुद्ध होगी या नहीं?"—नारायणी उस वक्त भी इसी दुविधा, इसी द्वंद्व, इन्हीं शंकाओं में घिरी हुई थी।

आधुनिक युग में रहते हुए, काल्पनिक परी-कथा को वह भला वास्तविक कैसे समझ ले? इस घर और परी-देश में कहीं कोई फर्क नहीं था। परी-कथा के राजकुमार की नजर अचानक अपने सपनों की राजकुमारी पर पड़ गयी। उसे देखकर वह मोहित हो गया, आकुल-व्याकुल हो गया। राजकुमारी कुटिया में रहती थी और भयंकर दिवालिया भी थी—लेकिन यह भी कोई समस्या नहीं थी। पलक झपकते ही राजकुमारी सारी बाधा-विघ्न पार करके, उस तरुण राजकुमार के अंतःपुर में पहुंच गयी। लेकिन माहौल या स्थिति की भिन्नता का वह पहाड़ या सागर पार करके, परी-कथा की उस बिचारी लड़की ने अपने को उस राजसी माहौल में कैसे फिट किया, कैसे सुख-चैन की गृहस्थी चलायी—इस बारे में तो कभी किसी कहानीकार ने नहीं लिखा!

सच, किसी तरह के विघ्नका जरा-सा आभास भी नहीं मिला। जहां वह जा रही है, उस घर में सास नहीं है, वह जानती थी। वहनें सास न होने की खवर पाकर, वेहद खुश थीं। उस वक्त नारायणी उनकी खुशी का सही-सही मतलव नहीं समझ पायी थी। उसे लगा था अगर सास जिंदा होती, तो मुमकिन है वे इस शादी में ऐतराज करतीं। हां, उसके ससुर साहव ने उसे एक वार देखा भी नहीं और अपनी रजामंदी दे डाली। यहां तक कि व्याह के घर में इतने-इतने अनुष्ठान हुए, लेकिन वे कहीं दिखाई नहीं दिये। वे व्याह में भी नहीं आये थे।

इसी वजह से उसके दिल में एक अजव-सा ऊवड़-खावड़ भय जम गया था। व्याह के पहले काका ने उसके भावी ससुर साहव के पास काफी दौड़धूप की, लेकिन हर वार नाकामयाव लौटे। उनसे मुलाकात होकर भी नहीं हुई। दोनों वहनें, खासकर श्यामा, अव उसकी खास खातिर करने लगी थी। हालांकि वह अच्छी तरह जानती थी कि श्यामा'दी मन ही मन हंस रही है। कुवेर के यहां के लोग इतने आदर-सम्मान से कैसा कसैला फल लिये जा रहे हैं!

श्यामा'दी ने ही वताया, "कित्ते अमीर आदमी हैं, रे! वावू की तो आंखें ही चुंधिया गयीं। तेरे ससुर तो इतने धीर-गंभीर हैं कि वावू भी उनसे डर-डरकर वात करते रहे।"

काका को उस घर के काफी चक्कर लगाने पड़े। लेकिन ज्यादातर वेटे से ही मुलाकात हुई। वेटे के पिता काफी व्यस्त जीव थे। उस व्यस्त आदमी से कुल मिलाकर दो वार मुलाकात हो पायी। वह मुलाकात भी कितनी अजीव थी, श्यामा'दी ने उसे यह भी [illegible]ा। काका ने व्याह की वात छेड़ी ही थी कि उन महाशय ने उनकी वात [illegible] [illegible]ा, "विपुल ने मुझे सव कुछ वता दिया है। व्याह कर दीजि[illegible]

के लिए बरदाश्त-बाहर थे। अपने हाव-भाव से, अपनी पसंद-नापसंद समझा देने में, उसने कोई कंजूसी भी नहीं की। चाहे इच्छा से चाहे अनिच्छा से, बुला'दी, स्यामा'दी कोहवर खाली करके हट गयीं।

···परीकथा के राजकुमार ने गूंगे की तरह बैठे रहकर, वक्त बरबाद नहीं किया। वह उसके करीब चला आया। उसे इतना करीब देखकर नारायणी डर गयी, मारे घबराहट के पसीने-पसीने हो गयी। राजकुमार उसे अपलक देखता रहा। देख-देखकर निःशब्द हंसता रहा। अचानक उसे बांहों में भरकर खड़ा कर दिया। उसे और करीब खींचकर एकटक उसका रूप निहारता रहा। उसकी आंखों में मानो नशा छाता जा रहा हो। होंठों पर तीखी प्यास उभर आयी थी। आवेग में कांपता हुआ, वह बार-बार अपने होंठ चबा रहा था। मानो कोई नशीला स्पर्श उस परीकथा की राजकुमारी का अंग-अंग पीस डालने को आतुर हो उठा। नारायणी पसीने से बिलकुल नहा गयी। वह थर-थर कांप रही थी। अचानक उसका कसाव और निर्मम हो उठा। किसी पुरुष के जलते हुए होंठ जाने क्या पाने के लिए उसके होंठों को बेरहमी से पीसते रहे। नारायणी को लगा, ये होंठ मानो कभी नहीं हटेंगे; बस उसी तरह चिपके रहेंगे।

···लेकिन कुछ ही पलों बाद किसी ने अपने होंठ हटा लिये। उसका हाथ पकड़कर, उसे कंधे से घेरे हुए बेहद सदभाव से उसे बिस्तर पर ला बिठाया। खुद भी उससे सटकर बैठ गया। बातों का दौर शुरू हुआ। उसने खूब हंस-हंसकर बातें कीं, मेल-जोल की पहल की, उसकी भी आवाज सुनने को आग्रही हो उठा।

···पुरुष के उस उद्दाम स्पर्श की अनुभूति अभी तक नारायणी के सीने में तेज-तेज धड़क रही थी। उस वक्त भी वह उससे यूं सटकर बैठा था कि उसकी सांसें डूब-डूब रही थीं। आखिरकार उसे बोलना ही पड़ा!

उसने अस्फुट आवाज में पहली बार पूछा, "बाबू जी नहीं आये?"

कोई उत्साहवर्धक जवाब नहीं मिला।

"बाबू जी? यानी मेरे डैडी? इन दिनों उनकी तबीयत ठीक नहीं। इसके अलावा इतना शोर-शराबा उन्हें पसंद भी नहीं।"

"क्यों?"

···कोई जवाब नहीं मिला।

नारायणी ने डरते-डरते दुबारा सवाल किया, "कहीं, वे इस ब्याह से नाखुश तो नहीं?"

यह सवाल मानो नितांत अप्रत्याशित था। उसने जवाब दिया, "भई, ब्याह तो मुझे करना था, भला वे नाखुश क्यों होने लगे! तुम्हें देखकर वे खुश ही होंगे।"

···हां, शायद वे सच ही खुश हुए थे। इतने बड़े राजप्रासाद में आकर नारायणी अभी भी संकोच और भय से सिकुड़ी हुई थी। ससुर साहब को जब पहले-

पहल देखा, तो लगा व्यक्तित्व का कोई सजीव पहाड़ ही उसके सामने आ खड़ा हुआ हो। नारायणी ने घुटने टेककर, उन भारी-भरकम वूटधारी जूतों पर अपना सिर रख दिया था !

ससुर साहव वेतरह चौंक गये। उन्होंने हड़वड़ाकर पैर खींच लेने की कोशिश की, लेकिन कहीं उसे चोट न लग जाये, यह सोचकर उनके पैर ज्यों के त्यों स्थिर रहे। उसे वेहद ममता से उठाते हुए कहा, "दैट्स वैड—यह वुरी वात है !"

'वुरी वात' सुनकर नारायणी वेतरह घवड़ा गयी। आखिर वह नयी वहू थी। उसे ससुर की तरफ आंख उठाकर देखना चाहिए या नहीं ? जव वह विदा होकर गाड़ी में सवार हुई थी, तव भी लंवा-सा घूंघट काढ़े हुए थी। लेकिन घर के करीव आकर, विपुलानंद ने ही उसे खींच-खींचकर वेहद छोटा कर दिया। चाहे डर से हो या और कोई वजह हो, नारायणी उस गुरु-गंभीर व्यक्ति को सीधे-सीधे देखे विना रह नहीं पायी। ना, उनका चेहरा और आंखें दोनों ही सदय जान पड़ीं। उन्होंने उसका हाथ पकड़कर अपने पास विठा लिया और थोड़ी देर उसे अपलक निहारते रहे। नारायणी को उनकी आंखों में खुशी का दवा-दवा आभास मिला था।

अचानक उन्होंने वेटे की पीठ ठोंकते हुए कहा, "मुवारक ! माइ व्वॉय ! मुवारक !"

अतः इस घर में पांव रखते ही नारायणी अचकचा गयी थी। धीरे-धीरे उसका ससुर-भय कम होता गया था, लेकिन अव भी जव कभी वह उनके करीव होती, उसे अपना सारा अस्तित्व ही विलकुल तुच्छ जान पड़ता। उसे अपने सामने हमेशा ही व्यक्तित्व का कोई सजीव पहाड़ नजर आता।

वैसे उनसे मुलाकात वहुत कम ही होती। दिन भर में शायद एक वार—रात डिनर के वक्त ! अगर वाहर कहीं पार्टी-वार्टी हुई तो वह भी नहीं, लेकिन रात का वह टुकड़ाभर वक्त मानो उसके लिए कठिन इम्तहान का वक्त होता।

हां, नारायणी ने उनकी वेशुमार दौलत, वेशुमार ऐश्वर्य की कहानियां सुनी थीं। लेकिन असल में वह इतना अनंत और अछोर है, उसकी उसे धारणा भी नहीं थी। वह विस्फारित आंखों से वस देखा करती थी। ऐश्वर्य की यह वाढ़ पद्मा की वाढ़ से भी तेजतर लगती थी। पद्मा की वाढ़ उसने देखी भर है, लेकिन इस वाढ़ में तो वह खुद भी ऊव-डूव रही है। जितनी दूर तक निगाहें जातीं, अटूट दौलत ! जमाने भर का प्राचुर्य !

विपुलानंद उसके मन की हालत समझ रहा था और मन ही मान हंस भी रहा था। जाने उसकी हंसी में कौतुक था या करुणा, उसे ठीक-ठीक समझ नहीं आता। उसकी वहनें भी यहां आकर विमूढ़ रह जाती हैं। उनकी भी जैसे जुवान वंद हो जाती है। किसी लड़की की किस्मत यूं वदल भी जाती है कि वह आकाश छूने लगे —यह देखकर मानो वे अपनी आंखों पर भरोसा न कर पाती हों। नारायणी को

का हकवकाया चेहरा देखकर बहुत मजा आता है। वह भी मन ही मन हंसती
बहनें खुशी और विस्मय से ऊलजलूल बकने लगती।
उस दिन श्यामा दी ने कहा, "मामा को लाकर एक दिन दिखाना होगा।
चारा अभी तक उदास-उदास घूमा करता है। यहां तुझे देखकर, तेरे लिए उदास
ोना, उसे खुद ही हास्यास्पद लगेगा।"
हां, नारायणी को भी लगता है, मानो वह किसी सपनों के देश में आ पड़ी है।
यह कितना सच है, कितना झूठ—कभी-कभी वह उलझन में पड़ जाती है। अचा-
नक पगा-पारवाला वह बूढ़ा याद आने लगता है। ददद् के उस दोस्त ने, उन्हें
उसके ब्याह की हड़बड़ी मचाने को मना कर दिया था। उसने कहा था, वह राज-
रानी बनेगी। यह सुनकर नद'दा भी निश्चित हो गये थे—वह जरूर राजरानी
ही बनेगी। नारायणी मन ही मन नद'दा को आवाजें देती है—"तुम्हें मालूम है
नद'दा, तुम्हारी नारायणी सच राजरानी ही बन गयी है? तुम सब कहां हो?"
इतने सारे सुखों के बावजूद मन कभी-कभी बेचैन हो उठता है। अपना आपा
भी बेतरह वजनी हो आता है। इतनी अटूट दौलत और प्राचुर्य में अपने को बिखेर
देना, कम से कम एक जन्म में तो शायद संभव नहीं! हां, उस वक्त विपुलानंद को
भी उस पर ध्यान देने की बेभाव फुरसत थी। कारोबार के कर्ता-धर्ता अभी तक
उसके पिता ही थे। हालांकि, अब वे काफी बीमार भी रहने लगे थे।
खैर, अगर फुरसत न भी होती, तो भी, घर का राजकुंवर हर वक्त ऐसे रंगीन
मूड में रहा करता था कि अक्सर वह खुद ही फुरसत के वक्त चुरा लिया करता
था। औरत की जवान देह उसमें इतनी तीखी प्यास जगा गयी थी कि कभी-कभी
वह डाकू नजर आने लगता। उसने अपने कमरे में ढेर-ढेर आईने फिट करा लिये
थे। जिधर भी उसकी नजर जाती, वह लाज से गड़ जाती। कभी-कभी उसे धक्का
भी लगा है, जवान देह की उच्छृंखल बेपर्दगी उसे नंगापन लगी है। उसकी देह
मानो आविष्कार की चीज हो। मानो उसे लेकर तरह-तरह के आविष्कारों का
उत्सव चल रहा हो।
उसकी हलकी-सी उदासी भी विपुलानंद फौरन समझ लेता। बेहद प्यार से
उमड़कर पूछता, "लगता है, तुम्हें कुछ चाहिए। क्या चाहिए, बोलो न?"
नारायणी को यह भी बताना होगा कि उसे क्या चाहिए? यहां कुछ [illegible]
को बाकी है? उसके पास ढेर सारे निजी कमरे हैं, कपड़ों से भरी हुई [illegible]
आलमारियां हैं, बेशुमार गहने, अपनी गाड़ी, अपने दास-दासी, अपना [illegible]
इस राजमहल में मांगने की जरूरत ही नहीं, सिर्फ पाने का आयोजन है [illegible]
किसी चीज की कल्पना भी नहीं कर सकती, जो मांगने की जरूरत [illegible]
इसके बावजूद कुछ दिनों बाद उसने दुविधाभरे लहजे में [illegible]
दुविधा की आड़ में छिपा उसका आग्रह और उत्साह भी स्पष्ट [illegible]

मांग मंजूर की जाएगी या नहीं, मानो वह टटोल लेना चाहती हो। उसने कहा, "यहां कितने ही लोग हैं, एक जन को और रख लोगे?"

उसका आवेदन सुनकर विपुलानंद अवाक् हो उठा, "किसे?"

"गब्बू को! बड़ा भला लड़का है।" उम्मीद और आग्रह से नारायणी का चेहरा दमक उठा, "किसी कारखाने में काम करता है। मेरे कहते ही, वह यहां काम करने लगेगा।"

बीवी के इस बचपने पर वह मन ही मन भले हंसा हो, उसने चेहरे पर जाहिर नहीं होने दिया। उसने दुगना आग्रह दिखाया, फौरन राजी भी हो गया। यहां तक कि उसको बुला लाने के लिए आदमी भेजने तक को तैयार हो गया।

···इसके बदले में किसी का आवेग भरा समर्पण हरण करने के लिए, उसे डाकू बनने की जरूरत नहीं पड़ी।

लेकिन परहस्तं गता गता—

नारायणी अब पूरी तरह किन्हीं पराये हाथों में समर्पित हो चुकी है। समर्पण का कोई ओर-छोर नहीं। इन बारह सालों में शायद उसके पास ऐसा कुछ भी नहीं बचा, जिसे वह अपना कह सके।

ब्याह के फौरन बाद से ही अंदर ही अंदर साज-बदल और वेश-बदल का करिश्मा शुरू हो गया। वह बखूबी जान गयी थी, सिर्फ अपने रूप के दम पर उसे इस सुख के महल में प्रवेश मिला है। इस आभिजात्य अंतःपुर में दाखिल होने लायक उसके पास रूप के अलावा और कोई गुण नहीं था। हां, उसमें और कोई खूबी भी नहीं। यह बात हर किसी ने बेहद शराफत और उदारता से स्वीकार कर ली थी। यहां तक कि, जो उसका हाथ पकड़कर इस घर में ले आया था, उसने भी उसे स्वीकार करके बदले में उसका भी फर्ज समझाने की कोशिश की थी। हां, रंग-ढंग बदलने का फर्ज।

इस समझाने के पीछे ससुर जी का भी कोई इशारा था या नहीं, नारायणी को नहीं मालूम। लेकिन कभी-कभी संदेह जरूर होता था। उसका अपना घर-वाला तो हर वक्त ऐसे रंग-रस में डूबा रहता था, इतनी बेसब्री से रात की प्रतीक्षा करता था कि नारायणी को एक बार भी नहीं लगा कि बीवी के अधूरेपन को लेकर उसके मन में कहीं कोई अफसोस है।

···सबसे पहला हमला उसके नाम पर हुआ था। नहीं, हमला ससुर साहब ने नहीं किया, उसकी तरफ से हुआ, जिसके हाथों में उसने अपने को पूरी तरह सौंप दिया था। पहला वार उसी ने किया।

रात के अंधेरे में नहीं, दिन के तीखे उजाले में उसने ऐलान किया; "नारायणी

…से बदल देना होगा। बड़ा फटीचर, बाबा आदम के जमाने का लगता है।" और
…स दिन…कुल पांच मिनट के अंदर, इतने सालों की नारायणी, एकदम से रीना
…गची बन गयी।

नहीं, नारायणी ने कोई आपत्ति नहीं की। कुछेक पलों के लिए, हैरान-सी
उसकी तरफ देखती रही, अंत में हंस पड़ी। वैसे इस घर में कदम रखने के बाद
अब तक ऐसा कोई मौका नहीं आया था, जब उसे यूं हंस देने की जरूरत पड़ी हो।

उसने खुशी से गद्‌गद होकर जो जवाब दिया था, उसे सुनकर विपुलानंद को
कम-से-कम इतना तो विश्वास हो गया कि उसकी बीवी निरी बुद्धिहीन नहीं है।

नारायणी ने हलकी, कौतुक भरी आवाज में कहा था, "हां, तुम्हारा नाम
काफी आधुनिक लगता है।"

विपुलानंद ने भी हंसते हुए जवाब दिया, "हां, सो तो है। मर्द का अगर ऐसा
भारी-भरकम नाम न हो, तो वह मर्द ही नहीं लगता।"

उस दिन के बाद, कभी गलती से भी उस आदमी ने उसे 'नारायणी' कहकर
आवाज नहीं दी। हमेशा 'रीना! हलो, रीना! हलो, रीना, माई डार्लिंग!'
लेकिन सर्वांगीण रद्दोबदल के बावजूद कभी-कभी सिर्फ इसी आदमी के मुंह से
अपने लिए 'नारायणी' सुनने की साध जागती थी। आखिर उसे अपने नाम का
मोह क्यों है, उसे खुद ही अचरज होता था। लेकिन उसने अपनी जुबान से उसे
कभी 'नारायणी' बुलाने को नहीं कहा। उसे मालूम है, यह जिद बहुत हास्यास्पद
होगी; किसी नाकाबिल या अयोग्य पर नजर पड़ने जैसी हास्यास्पद।

हालांकि उस घर के लोग इतने शरीफ थे कि उसके सामने कभी जाहिर नहीं
किया कि उसमें कोई खूबी नहीं, लेकिन खूबियों का ऐसा विराट रूप उसकी आंखों
के आगे अंकित करते रहे कि नारायणी ने खुद ही समझ लिया था कि उसमें
कितनी-कितनी सारी खामियां हैं। हां, इस घराने की रीत ही यही है—कुछ न
कहते हुए भी, सारा कुछ समझा देने की रीत।

हर रोज सुबह-सवेरे उसे अंग्रेजी पढ़ाने के लिए प्रोफेसर आ धमकते, दो घंटे
के अंदर कोई मेम साहब उसे अंग्रेजी का सही-सही उच्चारण सिखाने के लिए
हाजिर होती। दोपहर कुछ देर आराम के बाद, रेकार्ड चलाकर, बातचीत का
सबक लेना। शाम होते न होते, गाने-बजाने के उस्ताद जी हाजिर। दिन-रात
कुछ घंटे गवर्नेस की संगति में गुजारना जरूरी है। वह उसे ऊंचे लोगों के अदब-
कायदे, हंसने-बोलने-चलने के तौर-तरीके सिखाती है।

यानी नारायणी निरंतर गुणों के अवगाहन में ही डूब गयी है। इसके बावजूद
कभी-कभी उसके अंदर छिपी हुई, पद्मा-पार की वही सदा चंचल लड़की …
उठती है। उस वक्त उसे अपने अंदर भयंकर दिवालियेपन का अहसास होता …
अपने उद्धार की अक्खड़ जिद जाग उठती है। उसके अंदर ही, कहीं कोई …

सी चीज खो गयी है, वह उसे अक्सर खोज निकालने की कोशिश करती। अचानक कोई ख्याल उसे बुरी तरह उकसाने लगता है, वह ऐसे बाप की बेटी है, जिसने देश की आजादी के लिए कैदखाने में जान दे डाली। उन पलों में नारायणी बेतरह अक्खड़ हो उठती। सारा कुछ एकबारगी छोड़-छाड़कर ऐलान करती—उससे अब कुछ नहीं होने का। प्रोफेसर साहब से पढ़ना, मेमसाहब से अंग्रेजी सीखना, गाना-बजाना, गवर्नेस—सब छूट जाते। हां, वह जो है, बस वही है। विपुलानंद भी मानो विपुल विस्मय से बस उसे देखता रहता। नहीं, न वह झगड़ा करता है, न अनुरोध। वह उसे समझाने-बुझाने की भी कोशिश नहीं करता। इसीलिए नारायणी शायद हार जाती और फिर नये सिरे से अपने को बदल डालने का संकल्प लिये तेज रफ्तार में दौड़ लगाती। अंदर ही अंदर कोई दुर्जेय जिद सवार हो जाती—हां, वह देखना चाहती थी, आखिर ऐसा कौन-सा गुण है, जिसे वह दखल नहीं कर सकती।

ब्याह के बाद उसके ससुर करीब ढाई साल जिंदा रहे। उनके जीते जी नारायणी के मन से संकोच और आतंक कभी नहीं मिटा। हालांकि वे काफी हंसमुख, मितभाषी और मिठबोले इंसान थे। लेकिन नारायणी को उनसे बेहद डर लगता था। विधाता के बारे में वह कुछ नहीं जानती, लेकिन उसे तो यह इंसान ही विधाता नजर आता! उसकी इच्छा पर मानो एक पूरी की पूरी दुनिया घूम रही हो। अगर कोई बूंद भर भी उसकी इच्छा के खिलाफ गया तो वह सारा का सारा साम्राज्य उलट-पलट सकता है।

लेकिन व्यतिक्रम हुआ था। यानी उनके भी खिलाफ कुछ घटा था।

नारायणी ने वह व्यतिक्रम अपनी आंखों से देखा है—ससुर की मौत के कुछ दिनों पहले। सिर्फ उन्हीं चंद दिनों में उसके मन का सारा भय, सारी दुविधा, सारा संकोच मिट गया था। उस वक्त वह शख्स किसी शिशु की तरह असहाय और अकेला लगा था। लगता था, कोई पहाड़ ढह गया है!

ब्याह के बाद ही, उसने सुना, उसके ससुर ब्लड-प्रेशर के रोगी हैं। लेकिन उनके चेहरे पर कभी किसी रोग का लक्षण नजर नहीं आता था। उनके बंधे-बंधाये दैनिक कार्यक्रमों में कभी कोई रद्दोबदल भी नहीं होता था। सुबह-सवेरे पांच बजे उठकर ही वे टहलने निकल जाते, नाइट-गाउन पहने कंपाउंड में ही चक्कर लगाया करते। उनके लिए गर्म कॉफी भी वहीं पहुंचा दी जाती। थोड़ी देर बाद ही घर और दफ्तर का काम-काज शुरू हो जाता। उस वक्त उनकी लेडी सेक्रेटरी की आपाधापी देखने लायक होती थी। घड़ी के कांटों में सुनिश्चित साढ़े आठ बजे नाश्ता। साढ़े नौ बजे वे दफ्तर के लिए रवाना हो जाते। उनके जाते ही कुछ पलों के लिए समूचे महल में एक अजीब-सी स्तब्धता उतर आती। कहीं बाहर अगर पार्टी-वार्टी में जाना नहीं हुआ, तो शाम तक घर वापसी। वे अपने कमरे के सामने

कोच पर बैठ जाते। सबसे पहले उनका खास बैरा आकर उनके जूते-मोजे
ता, उसके बाद नर्स राधा आती और गर्म पानी और स्पंज से उनके हाथ-पैर
जाती। नारायणी ये दोनों काम खुद करना चाहती थी। खास खाने की मेज
बेटे ने गंभीर मुद्रा और विनयी आवाज में पिता के सामने बीवी की इच्छा
स्त कर डाली।

उनकी गंभीर मुद्रा देखकर नारायणी को लगा वह मन ही मन कहीं मजा भी
रहा था। ससुर साहब के होठों पर हलकी-सी मुस्कान झलक आयी। उन्होंने
सर उठाकर एक बार उसकी तरफ बस, देखा था, लेकिन किसी तरह का मंतव्य
नहीं दिया।

उस दिन भी सुबह के कार्यक्रम में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ था। तूफान तो
रात में आया था। नर्स ने ही हांफते-हांफते आकर खबर दी, "हाथ-पैर साफ
कराने के बाद 'सर' कोच से उठ रहे थे कि अचानक फिर गिर पड़े। अभी भी जाने
कैसा-कैसा तो कर रहे हैं!"

नारायणी दौड़ती हुई आयी। उफ! कैसा भयंकर दृश्य था! मानो कोई
जीता-जागता इंसान, किसी भूत-प्रेत से जूझ रहा हो।...कुछ ही देर में उनकी
छटपटाहट शांत हो गयी। वे लगभग निस्पंद हो आये।

घंटे भर में नारायणी ने क्या-क्या कर डाला, उसे कुछ होश नहीं। उसे याद
है, उसने ढेर सारे टेलीफोन किये थे। समूचा घर डॉक्टर, नर्स और बाहरी अधि-
कारियों से भर गया था। 'स्ट्रोक' शब्द उसने उसी दिन पहली बार सुना था।
इतने अमीर आदमी का ऐसा चिंताजनक केस, अस्पताल में न सही, किसी बड़े
नर्सिंग-होम में ले जाना चाहिए था। लेकिन अगर बेशुमार दौलत हो, तो नर्सिंग-
होम के बजाय घर में चौगुना बेहतर इंतजाम हो सकता था। हुआ भी यही।
कलकत्ते का शायद ही ऐसा कोई मशहूर विशेषज्ञ होगा, जो बुलाया न गया हो।

दो दिन बाद संकट कुछ टल गया, यानी बचने की थोड़ी-बहुत आशा बंधी।
लेकिन उसके बाद लगातार कई दिनों की तसवीर उसकी आंखों में विभीषिका
की तरह अंकित हो उठी। भरे-पूरे व्यक्तित्व से दमकता हुआ चेहरा एकदम ग
टेढ़ा-बांका होकर लटक गया। उनके एक पांव पर भी फालिज मार गया था
पंद्रह-बीस दिनों में हालत इतनी बिगड़ गयी कि बात करते हुए उनका चेहरा औ
विकृत हो उठता।

नारायणी हर दिन सुबह से लेकर दोपहर-शाम-रात तक बस इसी कमरे
मौजूद रहती। नहीं, करने को खास कुछ नहीं था। सिर्फ खड़े-खड़े, टुकुर-टु
देखते रहना। वैसे आभिजात्य घराने में यूं एक पांव पर खड़े रहने का भी सि
नहीं है। यहां तो हर रोज देखने आने के लिए भी सुदृढ़ नियम-कानून होते
दिन में तीन-चार बार घड़ी देखकर पिता को देख जाता। यहां उ

खास काम भी नहीं था। जो करना था, वह तो डॉक्टर-नर्स कर ही रहे थे। लेकिन नारायणी इस कमरे में आती, तो उसका वहां से हिलने का भी मन नहीं करता। इस नियमोल्लंघन के लिए पति से ही मीठी-सी झिड़की मिली।

जिसके कमरे में वह आती है, शायद इस व्यतिक्रम पर उसकी भी नजर पड़ी। उसने इशारे-इशारे में उसे कई दिन अपने कमरे में जाकर आराम करने को भी कहा। अभी भी वे ठीक तरह से बोल नहीं पाते थे, इसीलिए इशारे में बात करते थे। उनका इशारा समझकर नारायणी उस वक्त हट-बढ़ भी जाती, लेकिन दुबारा आने पर, उसे लौटने की याद नहीं रहती थी। उस आदमी का टूटा-फूटा शरीर, जब तक बिलकुल ठीक न हो जाए, जब तक वह चलने-फिरने न लगे, उसे कुछ अच्छा नहीं लग सकता।

बिस्तर पर लेटे-लेटे ही उस आदमी ने लगातार कई दिनों तक उसकी इस नियम-विरुद्ध हरकत पर गौर किया। आहिस्ता-आहिस्ता उनकी प्रतिक्रिया बदलने लगी। नारायणी को लगा मानो वे भी उसके आने की बाट जोहते रहते हैं।

उस दिन इशारे में उसे अपने पास बुलाया। वह दुविधाग्रस्त मुद्रा में धीरे-धीरे उनके करीब आकर खड़ी हो गयी। उन्होंने उसे सामने वाली कुर्सी पर बैठ जाने का इशारा किया। हां, ऐसा पहली बार हुआ था।

वह इतमीनान से कुर्सी खींचकर उनके सिरहाने बैठ गयी। थोड़ी देर बाद उसने डरते-डरते पूछा, "सिर पर जरा हाथ फेर दूं ?"

मानो ऐसी बात वे जिंदगी में पहली बार सुन रहे हों। थोड़ी देर वे उसकी तरफ एकटक देखते रहे। नारायणी को उनकी आंखों में किसी अनजानी खुशी का अव्यक्त आभास मिला। वह धीरे-धीरे उनका सिर सहलाने लगी। वैसे अंदर ही अंदर उसे घबराहट हो रही थी, हाथ भी झनझना रहे थे। उसे डर था कहीं उसकी हथेलियों में पसीना न आने लगे।

अचानक उसके हाथ बिलकुल जड़ हो आये। उसके ससुर ने···नहीं, उसके ससुर ने नहीं, लोगों के 'सर' ने उसका हाथ खींचकर अपनी कांपती हथेलियों में दबा लिया। उसकी हथेलियां अपने सीने पर रख लीं। उसकी तरफ एकटक देखते रहे। थोड़ी देर बाद पूछा, "तुम्हारे माता-पिता हैं ?"

हां, ब्याह के पूरे दो साल बाद उससे यह सवाल पूछा जा रहा था। नारायणी ने धीरे से सिर हिला दिया, "नहीं हैं।"

"आइ एम सॉरी, माइ चाइल्ड !"

उन्होंने हाथ हटा लिया। नारायणी फिर उनके माथे पर हाथ फेरने लगी। इन कुछेक पलों में ही उसने जाने कैसे यह आविष्कार किया। उसे लगा, आभि-जात्य के दुर्भेद्य मुखौटे के अंदर हर आदमी नितांत असहाय शिशु होता है। वह हर किसी को अपने भरसक अस्वीकार करता रहता है। वहां तक सिर्फ वही पहुंच

सकता है, जो उसके मन को छू सके।

व्यक्तित्व के उस पहाड़नुमा इंसान की आंखों में आंसू? नारायणी क्या अपनी आंखों पर विश्वास करे?

अचानक उसकी नजर दरवाजे पर जा पड़ी। विपुल विस्मय से प्रायः विमूढ़ चेहरा लिए विपुलानंद खड़ा था। मानो उस दृश्य जैसा अप्रत्याशित उसने दुनिया में कभी कुछ नहीं देखा! खैर, उसे भला लगा या बुरा, यह समझ में नहीं आया, लेकिन इतना भर जरूर स्पष्ट था कि उसे भयंकर अचरज हो रहा था।

लेकिन अनजाने में विपुलानंद पर कोई न कोई प्रतिक्रिया जरूर हुई थी, इसका पता उसे रात में चला। उस रात विपुलानंद रह-रहकर उसके बेहद करीब आने की कोशिश कर रहा था। इधर-उधर की बातें करते हुए उससे बिलकुल सटकर खड़ा हो गया। उस वक्त नारायणी कुछ काम कर रही थी और उसकी बातें भी सुनती जा रही थी। किन्हीं हाथों का असंयत स्पर्श पाकर, उसने चौंककर पीछे देखा। दूसरी बार उसका चेहरा पढ़ते हुए, अचानक वह हंस पड़ी।

···और उस रात जब कोई उस पर दखल लेने को आगे बढ़ा, तो नारायणी ने महसूस किया, अपनी प्यास बुझाते हुए वह बर्बरता की हद तक असंयत और बेसब्र भी हो उठा था।

लेकिन आभिजात्य की महिमा सच ही अलंघ्य दीवार है। शायद वह किसी स्थिति में किसी भी शर्त पर समझौता करना नहीं जानती।

करीब चार महीने बाद ससुर साहब कमरे से बरामदे तक आने-जाने लगे। चेहरे पर 'सर' का व्यक्तित्व मानो दुबारा फिट हो गया हो। सिर्फ नारायणी के सामने ही थोड़ा-बहुत हेर-फेर हो जाता।

उस दिन चलना-फिरना कुछ ज्यादा हो रहा है, शिक्षिता मेम नर्स ने शिकायत की। वह उनकी पाव धोने वाली बेतनयाफ्ता नर्स नहीं थी, किसी बहुत बड़े डॉक्टर के साथ काम करने वाली बड़ी नर्स थी। नियम तोड़ने पर टोकना उसका फर्ज था। उसकी शिकायत पर 'सर' की भृकुटियां तन गयीं, लेकिन उन्होंने उसकी हिदायतों पर ध्यान नहीं दिया। उस वक्त नारायणी भी वहीं खड़ी थी। वह भी सोच रही थी, उसे टोकना चाहिए या नहीं। उनका तना हुआ चेहरा देखकर हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

नर्स ने दुबारा ताकीद की, "सुनिए, अब और चलना गलत होगा।"

"गो एंड माइंड योर ओन बिजनेस—जाओ अपना काम करो।"

"सर, यह मैं अपना ही बिजनेस···मेरा मतलब है अपना ही काम कर रही हूं। प्लीज, अब आप बैठ जाइए।"

इतना बड़ा दुस्साहस! मानो उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था! अब उन्हें नर्स की हिदायत के अनुसार चलना-फिरना होगा? ऐसा भी कोई है, जो उनके

मुंह पर ही ऐसा दुस्साहस करे ? नर्स की तरफ घूरते हुए, उनकी आंखों से मानो चिंगारियां छूटने लगीं। उसके वाद वे तेज-तेज कदमों से आगे वढ़े।

…अगले ही पल वे मुंह के वल जमीन पर लोट रहे थे। नारायणी को भाग-कर संभालने का मौका भी नहीं मिला।

उन्होंने, दो-चार वार हाथ-पैर मारे, उसके वाद स्थिर ! अचल !

हां, वे हमेशा के लिए स्थिर और अचल हो गये !

ससुर की वीमारी की वजह से कारोवार की सारी जिम्मेदारी धीरे-धीरे वेटे के कंधों पर आ पड़ी। उन्हीं दिनों किसी का अजीव-सा वदलाव महसूस करते हुए, वह वेहद उलझन में पड़ गयी थी। दो साल पहले जो शख्स उसका रूप देखकर अपना होशोहवास खो वैठा था, अव वह वेहद तटस्थ और शिथिल हो आया था। उसका उद्दाम आवेग और नशा भी अव वुझने लगा था। उसके चेहरे पर हर वक्त जिम्मेदारियों का मुखौटा ! हूवहू श्वसुर साहव का चेहरा ! उसकी गंभीरता में किसी अवूझ तृप्ति की भी झलक है !

काम ! काम ! वस, काम ! भला इतना क्या काम आ पड़ा है, नारायणी समझ नहीं पाती। सुना है आजकल दो-एक नये कारोवार भी शुरू किये हैं। नये काम की समस्या, परिकल्पना, सैकड़ों झमेले। इसके अलावा जो कारोवार पहले से ही जमा हुआ हो, उस पर ध्यान न दिया गया, तो अंधेर हो जाएगा। इस अंधेर की आशंका में वह शख्स हर पल सजग ! हर पल चौकन्ना ! लेकिन नारायणी को यह वात वेहद अजीव लग रही थी कि जिसके सिर पर इतनी-इतनी जिम्मेदारियां, इतनी समस्या, इतने झमेले हैं, उसके चेहरे पर ऐसी राहत भरी गंभीरता कैसे झलकती है ? अक्सर उसकी निगाहें उसके धीर-गंभीर चेहरे पर गड़ जातीं। शायद वह उसकी राहत का कारण ढूंढ़ने की कोशिश करती थी। लगता है, काम का नशा ही उसके आनंद का उत्स वन गया है। उसके सिर पर सारी दुनिया को अपने वश में कर लेने का मानो गहरा नशा सवार हो गया हो।

ससुर साहव जव जिंदा थे, एक दिन उसने टोका भी था, "तुम न, दिनोंदिन जैसे वदलते जा रहे हो !"

किसी रिपोर्ट पर नजर गड़ाये विपुलानंद ने पूछा, "सो कैसे ?"

नारायणी जो जवाव देना चाहती थी, उसे जुवान पर लाते हुए, उसे दुविधा भी हुई थी। फिर भी उसने कहा, "तुम न धीरे-धीरे अपने पिता की तरह होते जा रहे हो।"

पिता की तरह ? विपुलानंद ने अचकचाकर सिर उठाया। वीवी की यह

जानकारी भी उसे कम मजेदार नहीं लगी।

उसने भी हंसकर जवाब दिया, "देवों के नक्शे-कदम पर चलता, तो वहीं का वहीं रह जाता! मैं कभी तरक्की नहीं कर पाता।"

बीवी की हैरानी पर उसे खुशी हुई थी। अतः उसने दुबारा कहा, "यहां जितने लोग हैं, सब स्वीकार करते हैं कि हरेक मामले में मेरी नजर देवों से भी ज्यादा तेज है। कैसी भी कमजोरी या शिथिलता हो, खुद-ब-खुद मेरी निगाहों में आ जाती है। मुझमें नयी-नयी योजनाओं की जोखिम उठाने का साहस भी कहीं ज्यादा है। और अपनी जुबान से भले न स्वीकारें, लेकिन मन ही मन देवों भी मेरा लोहा मान गये हैं।"

उस दिन उसके चेहरे पर एक अजीब-सी अव्यक्त चमक उभर आयी थी। नारायणी उसे विमूढ़ आंखों से बस, एकटक देखती रही।

अक्सर उसे श्वसुर साहब की अंतिम विदा का दृश्य याद हो आता है। अनजाने में उसके मन में एक अजीब-सी आशंका घर करती जा रही थी। आशंका की वह छाया क्रमशः बढ़ती गयी थी।

ससुर भी चले गये। अखबारों में वह शोक-समाचार सुर्खियों में प्रकाशित हुआ। लोगों ने भी नियमानुसार कुछ दिनों का शोक-पालन किया। शोक की भी ऐसी भव्य और जीवंत तस्वीर, उसने पहले कभी नहीं देखी थी।

नारायणी मन ही मन अवाक् होकर सोचती—जो व्यक्ति उसे साक्षात् विधाता लगता था, आज उनके अभाव का कहीं नामोनिशान तक नहीं। उसके मन में अक्सर यह सवाल उठता—उनके न होने से दुनिया में कहीं कुछ भी खाली हुआ नहीं रहेगा, यह बात क्या उन्हें मालूम थी?

···एक-एक करके जाने कितने साल गुजर गये। अब विधाता मानो कोई और है। वह विधाता कहीं ज्यादा सक्षम, ज्यादा शक्तिमान है, नारायणी भी जान गयी है। हालांकि अपने मन की बात उसने व्यक्त नहीं की, लेकिन यह महसूस तो करती थी। उसने सुना है, सूरज न होते तो दुनिया अंधेरी हो जाती। यहां का विधाता भी अगर निगाह न रखे, तो कम से कम एक छोटी-सी दुनिया में अंधेरा छा जाएगा।

लेकिन इसे छोटी कौन कहता है? दिनोंदिन यह दुनिया बन बढ़ती जा रही थी; कोई बढ़ाता जा रहा था। नये सिरे से एक केबल कंपनी खोली गयी है, मोटर कंपनी तो बहुत पहले ही चालू हो चुकी है। आजकल उसके पति महोदय किसी सरकारी शिल्प-नीति-निर्धारण को लेकर बेतरह व्यस्त दिखाई देते हैं। इसके अलावा वह यह भी देख रही थी कि मोटे-मोटे चेक-बुक, पलक झपकते ही खाली होते जा रहे थे। चेक-बुक मानो कोई दुर्लभ कवच हो। उसका तो ख्याल है, चेक-बुक के जोर पर शिल्प-नीति-निर्धारण तो क्या समूची दुनिया पर भी

नियंत्रण किया जा सकता है !

"आज तुम्हारा प्रोग्राम क्या है ?"

नारायणी कभी-कभी अजीव-सा सवाल कर वैठती। वैसे उसे पता है, उनका कोई न कोई प्रोग्राम जरूर होगा। उसके पति का कार्यक्रम हमेशा ही वेहद व्यस्त रहता है। वक्त भी हिसाव की लगाम में वंधा हुआ। फिर भी वह पूछ वैठती है।

विपुलानंद उसे अपने दो-चार प्रोग्रामों के वारे में वताता है, उसके वाद ही सवाल करता है, "क्यों ? तुम्हें कुछ चाहिए ? या कोई जरूरी वात है ?" ये सारे सवाल महज सौजन्यतावश पूछे जाते हैं, इससे ज्यादा कुछ नहीं !

उसे जो चाहिए या उसे जिस भी चीज की जरूरत हो, उसके मुंह से निकलने के पहले ही लाकर हाजिर कर दी जाएगी। इसके अलावा वहुत वड़े अंकों वाला एक चेक-वुक उसकी हिफाजत में रहता है। नारायणी अगर चाहे तो जिंदगी भर शायद चेक ही काटती रहे। पोखर से अगर लोटा-लोटा पानी निकाला भी जाए, तो वह कभी खत्म नहीं होता। इस चेक-वुक का जोर, उस पोखर से कुछ कम नहीं। जन्मदिन या विवाह-वार्षिकी का उपहार और उत्सव देखकर भी परिचित लोग वस, मुग्ध रह जाते हैं। वे मन और जुवान दोनों से स्वीकार करते हैं, इतना वड़ा उद्योगपति आदर्श पति भी है। वाकई लेडी वागची के सुखों की सीमा नहीं।

नारायणी ने कभी उससे अपनी किसी जरूरत की वात नहीं कही। उससे कभी कुछ मांगा भी नहीं—सिर्फ उसकी तरफ एकटक देखती रहती है।

उसे वह यूं एकटक देखती क्यों रहती है, यह शायद वह खुद भी नहीं जानती। शायद वह यह पता लगाना चाहती है कि आदमी किस हद तक वदल सकता है या कितनी जल्दी वदल जाता है। यह कुछ अस्वाभाविक भी नहीं, लेकिन आखिर उसे ही ऐसा क्यों लगता है ? वह खुद भी तो सिर से पांव तक वदल गयी है। उस पद्मा-पार की लड़की 'नारायणी' का अव सचमुच कोई चिह्न वच रहा है ? काका के घर में रहनेवाली हमेशा भय और दुविधा-द्वंद्व से सहमी हुई नारायणी भी, अव हमेशा के लिए निश्चिह्न हो चुकी है।

श्यामा'दी जव भी आती हैं, यही कहती हैं। वे कहती हैं, "तू क्या थी और क्या हो गयी ! सचमुच सुख का घर मानो जादू कर देता है।"

वूला'दी के वारे में उसे कोई खवर नहीं। व्याह के वाद कहां गृहस्थी वसायी, उसे तो यह भी नहीं मालम। वह अपने उस भक्त साथी से व्याह क्या करती ? श्यामा'दी ही वता रही थीं कि उस लड़के ने इम्तहान पास करके, कहीं स्टेनो-ग्राफर की नौकरी ले ली ! वस, वूला'दी को उससे नफरत हो गयी। हां, श्यामा'दी के व्याह में ऐसी कोई हृदय-विदारक घटना नहीं हुई। उन्होंने अपनी पसंद के लड़के से व्याह किया है। और उस लड़के ने सच्चे पौरुप का परिचय भी दिया।

मिलिटरी में दाखिला लेते ही, पहले लेफ्टिनेंट, उसके बाद कैप्टेन बन गया है। भविष्य में और भी बड़ा अफसर बनेगा। जब वह सिविल इलाके में रहता है, श्यामा'दी को अपने साथ ले जाता है और अगर कहीं कुछ दिनों के लिए अचानक तबादला होता है, तो श्यामा'दी कलकत्ते में रहती हैं। आजकल कुछ दिनों से श्यामा'दी फुरसत में हैं! देश के हालात ठीक नहीं। उनका पति आज नेफा, कल काश्मीर के दौरे पर रहता है। लेकिन इसकी वजह से श्यामा'दी की खुशमिजाजी में कोई फर्क नहीं आया है। वह तो काफी मजे में हैं। उनका कहना है, मर्द के पास रहने में ही झमेला है।

चूंकि यह बात नारायणी को भली नहीं लगती, अतः उनका ख्याल था, यह सब ऊपरी बातें हैं। असल में ब्याह के बाद, बिचारी श्यामा'दी को आखिर कितने कम दिनों का पति-सुख नसीब हुआ था!

कभी-कभी श्यामा'दी ही हठात आ धमकती हैं! खूब हंसी-मजाक, मस्ती और फुर्ती करती हैं! कहती हैं, "तुझे देखकर न, मुझे ईर्ष्या होती है और उस काने भगवान जी की चुटिया उपाड़ लेने की तबीयत होती है।" उनकी जुबान की लगाम अब पहले से भी ज्यादा खुल गयी है। उसकी तरफ देखते हुए, कभी-कभी वह अचानक पूछ बैठतीं, "तेरा मर्द कभी तुझे थोड़ा-बोहुत रिहाई-विहाई भी देता है या नहीं या रोज ही झमेला करता है?"

नारायणी का चेहरा अब भी लाल हो उठता है। उस दिन श्यामा'दी को हमकी-सी झिड़की भी लगायी थी, "तू न दिनोदिन इतनी असभ्य होती जा रही है, तेरे श्रीमान को खबर देनी चाहिए।"

श्यामा'दी का हंसी के मारे बुरा हाल हो गया। वह भी जवाब देने से नहीं चूकी, "मा-कसम, अगर तू उसे खबर दे, तो वह नौकरी छोड़कर फौरन भागा चला जायेगा। ब्याह के बाद उसने तुझे कुल एक बार देखा था और कम से कम सौ बार तेरे बारे में पूछ चुका है।"

कुछ सालों पहले तक नारायणी श्यामा'दी की बातों पर अविश्वास नहीं करती थीं। लेकिन अब तो विश्वास करने की भी ताकत नहीं रही।

लेकिन यह बात श्यामा'दी को नहीं बतायी जा सकती। वैसे उसकी बातचीत का ढंग ऐसा है कि गुस्सा भी नहीं आता। श्यामा'दी आजकल उसके प्रति अचानक बेहद खिचाव महसूस करने लगी थीं। वैसे उनके खिचाव का एक अव्यक्त कारण भी था। असल में उन्हें कीमती बोतलों में बंद पानी का स्वाद पसंद है। और इतने दौलतमंद, अभिजात्य घराने में, वह चीज तो हमेशा ही मौजूद रहती है। सिर्फ कीमती ही नहीं, हर तरह की बेहतरीन और चुनिंदा शराब।

श्यामा'दी पीने-पिलाने के गुण में मानो माहिर हो चुकी हैं। पहले पहल उन्हें पीते देखकर नारायणी को चक्कर ही आ गया था। लेकिन श्यामा'दी का हंसी के मारे

बुरा हाल। उन्होंने आंखों में मीठा गुस्सा भरकर कहा, "तू भी अगर किसी मिलिटरी अफसर की बीवी होती न, तो तेरा सतीपन देखती।"

नारायणी सुन चुकी है, वहां की महफिलों या पार्टियों में पानी को कोई हाथ भी नहीं लगाता। शराब वहां नशा नहीं, जिंदगी है। अगर इस जिंदगी की आदत न डाली जाए तो न कद्र होगी, न संग-साथ मिलेगा। जिस अफसर की बीवी उनकी पार्टियों में शामिल नहीं होती, शराब नहीं छूती, उन अफसरों की मर्दानगी पर भी मानो शक होने लगता है। अतः शराब सिर्फ हंसी-खुशी का ही नहीं, भव्यता का भी अंग है। शराब पीने में कोई दोष नहीं।

नहीं, नारायणी को गुण-दोष की परवाह नहीं। बस, उसे अच्छा नहीं लगता।

गिलास की बेहतरीन चीज के महज दो-एक घूंट लेकर, श्यामा'दी उसके प्रति दुख से भर उठीं। उन्होंने रंजभरी आवाज में कहा, "तू भी पीती क्यों नहीं? जरा चखकर तो देख। कैसी अमृत चीज है! काश, तू जान पाती!"

खैर, कहने का मतलब यह कि वक्त और स्थितियों के तकाजे पर सभी बदल जाते हैं। श्यामा'दी भी बदल गयी थीं। नारायणी खुद भी तो कितना बदल गयी है! उसके घर का मालिक भी बदल गया, तो इसमें अचरज की कोई बात नहीं! जिस घर में वह इंसान बना है, वहां बदलना बेहद स्वाभाविक रिवाज माना जाता है।

लेकिन स्मृतियां क्या इतनी कीमती अनमोल जागीर होती हैं, जिसके लिए आदमी यों बेकल हो जाता है? सालों पहले उस इंसान की जो स्मृतियां संचित हैं, वे क्या उसे अनमोल जागीर लगी थीं? उन रातों की लगभग नंगी और उच्छृंखल स्मृतियां क्या बहुत वांछित थीं? हां, भोग सुंदर भी हो सकता है और कुत्सित भी। पिछले दिनों यह इंसान भोग के मामले में क्या इतना ही पटु था? नहीं। उसके जन्मजात व्यभिचारी संस्कार ही मुखर हो उठे थे।

सिर्फ भोग के मामले में ही नहीं एकांत में सीधी-सादी बातों के दौरान भी कभी-कभी उसे भयंकर धक्का लगा है।

ब्याह के पंद्रह दिन भी नहीं बीते थे कि उसे अपने सीने से सटाकर, बेहद सहज भाव से ही जानना चाहा था, "सुनो, ऐसा सुख तुमने और किसी मर्द को भी दिया है? इस ब्याह की वजह से जाने कितने मर्दों के दिल पर छुरियां चली होंगी।" उसकी बातों का सारा निचोड़ यह था कि उसकी बीवी इतनी खूबसूरत है कि सिर्फ अंग-सुख की ही क्यों, इससे भी बड़ी कोई घटना हो गयी हो, तो उसे खास अस्वाभाविक या असंभव नहीं लगेगा। खूबसूरत औरत के पीछे मर्द तो दीवाने होकर दौड़ेंगे ही, इसमें भला दोष क्या है? उनकी दीवानगी झेलते हुए अगर कोई लड़की अपने को न संभाल पाये, तो इसमें भला उसका भी क्या कसूर?

नारायणी को उसका मतलब समझने में काफी वक्त लगा था। समझ आने पर उसका चेहरा शर्म से जैसे लाल हो उठा था। वह भी उसके पति के लिए विस्मय और कौतुक का कारण बन गया। कोई भी मर्द उसके तीरे-नजर से घायल नहीं हुआ, यह सुनकर उसने जोर का ठहाका लगाया था। उसने हंसते-हंसते कहा था, "तुम न बिलकुल बच्चा हो। अरे, इसमें छिपाने की क्या बात है? एक साहब को तो मैं खुद भी जानता हूं।"

नारायणी उसकी बांहों में बंधी-बंधी बेतरह कांप उठी, फिर भी उसने अस्फुट आवाज में पूछ ही लिया, "कौन?"

"अरे, भई, वह समरेंद्र गांगुली! क्रिकेट का खिलाड़ी! बेचारे की सूरत देखकर, मुझे सचमुच बहुत अफसोस हुआ था। लेकिन मैं भी क्या करता? उस वक्त तो मैं भी दिलो जान से किसी पर दीवाना हो गया था।"

जिस लड़की को देखकर—ऐसे राजमहल में रहनेवाला राजकुमार भी इस कदर दीवाना हो गया था कि दौड़ता हुआ पहुंचा था और एकदम से उसे ब्याह कर हमेशा के लिए अपने घर उठा लाया था—उसे देखकर किसी गैर-मर्द की आंखों की अगर नींद नहीं हराम हुई या उसके ब्याह से किसी और का दिल न टूटा—तो शायद उसे अपनी मर्दानगी भी उतनी बड़ी नहीं लगती। उस दिनों तो इस शख्स को श्यामा'दी की हंसी-दिल्लगी ज्यादा पसंद आती थी, और उनकी ही बातें विश्वसनीय भी लगती थीं।

श्यामा'दी बताने लगतीं, "आपने भी अच्छा तमाशा दिखाया, जनाब! न कहा, न सुना, बस दन्न से पहुंचे और उसे हर लाये। वहां तो यह आलम था कि—सुबह-सवेरे आपकी रानी कब अपनी मीठी-मीठी नींद से जागकर बरामदे में आ खड़ी होगी, इस उम्मीद में आसपास के घरों के मजनू लड़के मुंहअंधेरे से ही हमारे घर की ओर टकटकी बांधे खड़े रहते थे। अब हम लोगों की काली-कलूटी सूरत देखते हैं और दर्दभरी आहें भरते हैं।"

सिर्फ नारायणी के बारे में ही वह उत्सुक नहीं था। शुरू-शुरू के दिनों में जब वह उसके बेहद करीब था—अपने किस्से भी बेहद सहज भाव से सुनाया करता था। उसके किस्से सुनकर भी वह मन ही मन धक्क रह गयी थी। लेकिन जो ये सब किस्से बयान करता था, उसके लिए उस उम्र में औरत-मर्द के अंतरंग संबंध बेहद सहज और जायज थे। इसमें छिपाने जैसी कोई बात नहीं थी। नारायणी ने कभी जाहिर नहीं किया लेकिन बहुत बार उसे लगा था, इस आदमी की अय्याश तबीयत को उन्मुक्त समर्पित होनेवाली या अंग-सुख देनेवाली वह पहली औरत नहीं है।

...हां, उसने सुना है...बहुत सारी लड़कियों ने उसकी अंतरंग घनिष्ठता पायी। खैर, यह सब राग-रंग उसने ब्याह के बाद भी देखे थे। लोगों ने सोचा होगा

व्याह के वाद, उसका इश्क मिसेज वागची में ही सिमटकर रह जाएगा। लेकिन नहीं, विपुलानंद वागची ने किसी भी औरत के संदर्भ में, ऐसी किसी संभावना को अपने मन में कभी जगह नहीं दी। हां, मिसेज डट्टा के मामले में स्थिति जरा नाजुक हो गयी थी।

···उन दिनों वह मिसेज डट्टा नहीं थी—मिस अधिकारी थी। नाच-गान, ऐक्टिंग-पेंटिंग—हर कला में निपुण! अव तो खैर, सव छोड़-छाड़ दिया। उन दिनों वह लड़की थोड़ी-वहुत अच्छी भी लगी हो, तो इसमें कौन-सी वड़ी वात हो गयी?

लेकिन व्याह? नहीं, ऐसा कोई आश्वासन विपुलानंद ने उसे कभी नहीं दिया। लेकिन फिर भी वह वेवकूफ लड़की व्याह की उम्मीद लगा वैठे, तो इसमें भला वह क्या कर सकता था? वह किसी और से व्याह कर रहा है, यह सुनकर उसने विल्कुल पागल लड़कियों जैसी हरकतें शुरू कर दीं। रोना-धोना, गुस्सा, गाली-गलौज। विलकुल सिरदर्द वन गयी। उसकी मां इस घर के मालिक यानी उसके पिता के पास अपनी वेटी की तरफ से शिकायत लेकर आयी। लेकिन उसके डैडी ने सीधा-सपाट-सा जवाव सुना दिया, "सॉरी! यह उसका मामला है!"

लेकिन विपुलानंद को उस लड़की से कोई नाराजगी नहीं थी। वल्कि उसके लिए अफसोस था। आखिरकार डट्टा पर थोड़ा-वहुत खर्चा पानी करके, उस लड़की को उसके मत्थे मढ़कर निश्चित हुआ!

ये सव किस्से सुनने के वाद, नारायणी जव मिसेज डट्टा से मिली तो शुरू-शुरू में उसे वड़े गौर से देखा करती। उसे हमेशा यही लगा था कि मिसेज डट्टा के इतने हंसने-वोलने, शराव पीने के पीछे, छुरी की तेज धार की तरह, कोई भयंकर गुस्सा और दर्द भी छिपा हुआ है।

हालांकि, अव ऐसा नहीं लगता।

खैर, अव तो वह आदमी सिर से पांव तक वदल चुका है, अतः इन सव छोटी-मोटी स्थूल वातों की स्मृतियां भी मिटती जा रही हैं, तो इसमें अफसोस की क्या वात है? अगर ये स्मृतियां न मिटतीं, तो शायद वह ज्यादा परेशान होती। लोभ अपनी दसों उंगलियां फैलाये, अपने खौफनाक पंजों से जाने किस-किस तरफ हाथ वढ़ाता! अव भी वह जरा-से औरताना छल-वल-कौशल से काम ले, तो वह आज भी उस शख्स को अपनी तरफ खींच सकती है। लेकिन अव उसपर मर्यादा का जो आवरण डाल दिया गया है, उसकी चीर-फाड़ करना मुनासिव नहीं होगा।

आज···इतने दिनों वाद भी धक्का लगने वाली घटना, विलकुल नहीं होती, ऐसा भी नहीं है। ऐसे झटकों की वड़ी महीन-सी वजह होती है···फिर भी नारा-

उन्हीं इतनी बुरी तरह हिन क्यों जाती है, वह आज तक नहीं समझ पायी। अब वह अपने बेटे के हर छोटे-मोटे मामले में बुरी तरह घबरा जाती है; बाप-बेटे की अंतरंगता देखकर बौखला जाती है; अतिशय नाजित आभिजात्य के निर्मम रूप का ख्याल भी उसमें बेतरह तिलमिलाहट भर देता है।

'''ज्यादा दिनों पहले की बात नहीं। घर के इस शिल्पपति के बारे में, अखबारों में एक व्यंग्योक्ति पढ़कर अवाक् रह गयी। रात को जब वह डाइनिंग टेबल पर बैठी तो अखबार की उस घटना का जिक्र करने से अपने को रोक नहीं पायी। वैसे, पूरी घटना वह अखबार में ही पढ़ चुकी थी। खाने की मेज पर बातचीत के दौरान दो-चार नयी बातें भी पता चली और सारी घटना आईने की तरह स्पष्ट हो उठी।

'''करीब डेढ़ साल पहले कंपनी की किसी शाखा में एक स्मार्ट स्टेनोग्राफर नियुक्त किया गया। चूंकि वह अपने काम में बेहद होशियार था, अतः अन्य कंपनियों के मुकाबले उसे खासी मोटी तनख्वाह दी गयी, ताकि वह टिका रहे। यह सब काम अधीनस्थ कर्मचारी ही कर लेते हैं, इसके लिए खुद कर्णधार से सलाह-मशविरे की जरूरत नहीं पड़ती। वैसे तमाम बड़े-बड़े अफसरों को खूबसूरत महिला स्टेनो ही ज्यादा पसंद आती है, लेकिन सुयोग्य रत्न कभी धूल में नहीं पड़ा रहता।

शिल्पपति के पास पहले से ही दो चुनिंदा लेडी-स्टेनो मौजूद थी। लेकिन अचानक जाने क्या काम आ पड़ा, किसी तीसरे स्टेनो की जरूरत निकल आयी, जो बेहद स्मार्ट और काबिल हो। मालिक को शायद अपने किसी भाषण की रिपोर्टिंग ठीक करानी थी। भाषण में काफी कुछ वाद का चला गया है या छूट गया है। अतः अब किसी बेहद काबिल स्टेनोग्राफर की जरूरत थी।

जाहिर है कि उसी स्टेनोग्राफर को वहां धकेल दिया गया। लेकिन शिल्पपति मालिक उसका नाम सुनकर ही चकरा गये।

नाम था—विपुल विहारी! विपुल विहारी सेन!

ईषत्-कौतुक से उसकी तरफ देखते हुए बड़े साहब यानी विपुलानंद ने निर्देश दिया, "नाम बदलना होगा।"

स्टेनो अचकचा गया। किसका नाम बदलना होगा, उसे समझ नहीं आया। जब उसे सीधी-सी बात समझ आयी, तो उसने विनम्र लहजे में जवाब दिया, "नाम बदलना संभव नहीं होगा।"

एक नाव में दो प्रतिद्वंद्वी एक साथ सफर नहीं कर सकते—नागपर्णी ने यह तो सुन रखा था, लेकिन एक नाम के दो व्यक्तियों का भी होना नामुमकिन है, यह पहली बार सुन रही थी। उसकी जुबानदराजी पर विपुलानंद ने उस कर्मचारी को फिलहाल अपने कमरे से निकल जाने का हुक्म दिया। थोड़ी देर बाद बैरे

का सलाम पाकर, कंपनी का जनरल मैनेजर हड़बड़ाता हुआ बड़े साहब के कमरे की ओर दौड़ा। कुछ देर बाद बड़े साहब के कमरे से निकलकर वह सीधे उस विपुल बिहारी नामक कर्मचारी पर बरस पड़ा। विपुलानंद के साम्राज्य में विपुल बिहारी नामधारी किसी आदमी का टिकना गुनाह है, जुर्म है। इतनी सीधी-सी बात खुद मैनेजर को भी पहले समझ में नहीं आयी। जब होश आया, तो उसे खुद अपने पर ही गुस्सा आया। यह सुनकर मैनेजर साहब और भड़क गये कि बड़े साहब के हुक्म के बावजूद वह कम्बख्त अपना नाम बदलने को राजी नहीं हुआ। इस साम्राज्य में इससे बड़े गुनाह की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मैनेजर ने समझाया, "भई, नाम में क्या आता-जाता है? व्हाट्स इन ए नेम? काम वही। तनख्वाह भी वही—बाकी जगह वही नाम रखो, सिर्फ दफ्तर के रजिस्टर में नाम बदल लेने में आखिर क्या नुकसान है?"

लेकिन यह आदमी निहायत बेवकूफ किस्म का नादान था।

जनरल मैनेजर ने उसे दुबारा समझाया, "अरे, अपने बड़े साहब इतने उदार हैं, तभी उन्होंने तुम्हारी इस गुस्ताखी को नजरंदाज कर दिया। उलटे तुम्हारी निर्भीकता देखकर खुश हुए हैं। नाम बदल डालो, तनखाह भी बढ़ जाएगी।"

लेकिन वह बेवकूफ इस पर भी राजी नहीं हुआ।

अतः दो दिन के अंदर उसकी नौकरी चली गयी। प्रतिष्ठान की यूनियन भी उस वक्त उतनी मजबूत नहीं थी। वहां भी इस नाइंसाफी को लेकर गर्मागर्म आलोचना हुई, ऊपरवालों के दरबार में एकाध सिफारिशें भी भेजी गयीं—उसके बाद सब ठंडा।

बरखास्त की नोटिस लेकर, वह आदमी सीधे अखबार के दफ्तर में पहुंचा। अखबारों में यह खबर काफी बढ़ा-चढ़ाकर प्रकाशित की गयी।

इस खबर की चर्चा उठते ही सामने वाले व्यक्ति के होठों पर हलकी-सी हंसी उभर आयी। यानी वह काफी खुश नजर आ रहा था। अखबार में जिस आदमी ने इस किस्म का मजाक किया है, अगर वह उस अखबार के मालिक को एक फोन भर कर दे, तो वह उस आदमी की छुट्टी करा सकता है। लेकिन नारायणी को मालूम है, वह ऐसा नहीं करेगा, क्योंकि यह शोभा नहीं देगा। शायद वह खुद भी यही चाहता है कि उसे लेकर खूब चर्चे होते रहें। लोग उसकी जिद देखें। जरूरत पड़े तो चर्चाओं में सरगर्मी लाने के लिए वह भले काम छोड़कर बुरे से बुरा काम भी अनायास कर सकता है। अगर कहीं वह रिपोर्टर मिल जाता, तो उसे डांटने के बजाय छोटा-मोटा इनाम भी दे डालता। हां, उसे इस खबर से खुशी हुई है। निर्मम खुशी।

इसी तरह के बहुत सारे छोटे-मोटे मामलों में नारायणी को धक्का लगा है। कभी-कभी तो उसकी वही बर्बर जिद, थोड़े मार्जित रूप में, उसे भी झेलनी पड़ती

उस वक्त भी वही निर्लिप्तता उजागर हो उठती है।

···लेकिन हर वक्त वह ठीक निर्लिप्त भी नही रहता। नारायणी को उसके
लिप्त आचरण में कभी-कभी कोई खास बात भी नजर आती। कुछेक दिनों
मों मे बेतरह डूबे रहने के बाद, यह रूप अक्सर सामने आता है।

अचानक वह कहता है, "यू लुक वडरफुल! बहुत जच रही हो! कौन-से
फंक्शन में जाना है आज ?"

हा, अब यह बात भी बेहद पुरानी लगने लगी है। जाने कौन-सी धुन मे वह
उसे खूबसूरत नजर आने लगती है, अब इसकी जानकारी भी नारायणी के लिए
बहुत पुरानी पड चुकी है। वैसे भी फक्शनो के बारे मे अब उसे ठीक-ठीक याद भी
नही रहता। फक्शन तो हरदम ही कही न कही होता रहता है।

कभी-कभार बीवी की यह अजीबोगरीब नजर भी विपुलानद की आखो मे
गड़ जाती है।

लेकिन उसे कोफ्त होने की बजाय, भला लगता है।

वह पूछ बैठता है, "ऐसे क्या देख रही हो ?"

नारायणी सभल जाती है, कोई सफाई जड देती है। लेकिन दरअसल वह
क्या देखा करती है, यह उसे नही बता सकती। वह आदमी उसे कोई विशालकाय
मशीन नजर आता है, जिसके हाथ-पैर तो है, सिर्फ दिल की जगह खाली है।
नही, दिल भी है! जब वह अपने बेटे के पास होता है, उसे प्यार करता है, उसकी
नन्ही-मासूम आखों मे जमाने भर के सपने आकता है, सिर्फ उस वक्त लगता है,
उसके पास दिल नाम की भी कोई चीज है।

लेकिन वह दिल भी बडा दबा-ढका है। काफी गौर से देखने पर उसके दिल
मे छिपी सहजता का आभास भर मिलता है वरना वह भी जमाने-भर के रहस्यों
और पर्तों मे ढका हुआ है।

लेकिन कुल छह साल के बेटे के साथ उसका छत्तीस वर्षीय पिता, जब मजेदा
खेल-खिलवाड मे डूबा होता है, तो सबके अनजाने मे, यहा तक कि अपने भी अन
जाने मे, कभी-कभी वह सिहर क्यो उठती है ?

बारह साल!—बारह साल के लबे अर्से मे भी नारायणी का साज-
और गुण-ग्रहण का सबक अभी तक पूरा नही हुआ ?

अभी भी अगर मन के भीतर पुरानी-धुरानी पया की लहरें ही उठा
तो आखिर वह जिंदा कैसे रहेगी ?

पांच

सुवह-सवेरे चाय की मेज पर हांफते-कांपते गव्वू आ धमका।

जव साहव कमरे में होते हैं वह इस तरह कभी नहीं आता। लेकिन इस वक्त कमरे में कौन-कौन है, उसे मानो इसका भी होश नहीं रहा। उसकी आंखों और चेहरे पर अजीव-सी उत्तेजना।

नारायणी पिछली रात ठीक तरह सो नहीं पायी। सारी देह में हलका-हलका दर्द है और सिर भी भारी है। पिछली शाम की शराव की खुमारी भी हो सकती है। उधर वाप-वेटे अपने सुवह-सुवह की रोजमर्रा वातचीत में मशगूल थे। वात-चीत में, वेटे के अंदर वड़े···और वड़े···उससे भी वड़े होने के सपने भरे जाते थे। नारायणी कभी-कभी हंसते हुए चुपचाप उनकी वातें सुना करती, कभी अपनी तरफ से भी दो-चार वाक्य जड़ देती। लेकिन आज उनकी वातों का एक शब्द भी उसके कानों तक नहीं पहुंच रहा है। वेटे के दिमाग में शायद कोई नयी खुराफात जागी है। उसका नन्हा-सा चेहरा उत्साह से चमक रहा था। छह वर्ष के वेटे के तमाम उत्साह और जोश के प्रति उसके श्रद्धेय पापा भी कम से कम उसके सामने वदस्तूर परम उत्साह और अनुराग से गद्‌गद नजर आ रहे थे।

गव्वू के यों अचानक दाखिल होने से उनकी वातचीत में भी व्याघात पड़ा। नौकर-चाकरों का यों अचानक कमरे में घुस आना सरासर गुनाह है। चूंकि वह गव्वू है, इसीलिए वरदाश्त करना पड़ता है। तमीज भूलकर गव्वू नारायणी के विलकुल करीव झुककर खड़ा हो गया। उसकी आंखों और चेहरे पर अव्यक्त विस्मय की चमक थी।

"दीदीमणि ! नंद'दा—"

नारायणी को मानो कोई जोर का झटका लगा। वह भी अचकचा गयी। दीदीमणी क्या नंद'दा को भूल गयीं ? पद्मा-पार के वही चिरपरिचित नंद'दा ! उन्हें भला कोई भूल सकता है ? और कोई चाहे भूल भी जाए, दीदीमणि भला भूल सकती हैं ?

उसने उसी तरह उत्तेजित आवाज में फुसफुसाकर कहा, "अपने तारपाशा-वाले नंद'दा आये हैं। उन्हें नीचे वैठा आया हूं।"

नारायणी ने चाय की प्याली उठाकर होठों से लगा ली। अपने पर दखल लाने की भरपूर कोशिश। नारायणी जानती थी, कम से कम उसके अंदर छिपे मन को पक्का यकीन हो चुका था, पिछली शाम, लैंप-पोस्ट के नीचे उसने जिसे देखा था—वह शराव का नशा नहीं था। अगर उसे महज वहम हुआ होता, तो शायद वह खुश होती। लेकिन उसे मालूम था, उसे कहीं कोई गलतफहमी नहीं

क्लब से वह चाहे जितनी शराब चढाकर लौटी हो, ऐसी गलती हरगिज नही सकती। रात वह ठीक तरह से सो भी नही पायी क्योकि वह आदमी उसके मन सेतु से होकर कई-कई बार उसके सामने आता-जाता रहा था।

नारायणी नही चाहती थी कि वह कभी यहा आये। उसके आने की सभावना क मानो उसे त्रस्त कर गयी थी। उसकी छाती पर एक अनजाना बोझ जमता जा रहा था। नंन'दा अगर आ गये, तो उसके अस्तित्व से मानो कुछ छीन लेने की कोशिश करेगे। इतने दिनो के ताप और खेद का मानो यह नतीजा निकला। वे इस तरह अचानक चले आये है। लेकिन उसे इतना डर क्यो लग रहा है? नारायणी किसी से नही डरती।

आखिर वे क्यो आये है? उन्होने कहा था, नारायणी राजरानी बनेगी। वह सचमुच राजरानी बन गयी है। लेकिन इस राजरानी के साथ पद्मा-पार की उस नारायणी का भला क्या रिश्ता है? राजरानी के साथ नंद'दा का ही भला क्या सबध है? राजरानी के पास आखिर वे क्यो आये है? मा ने कहा था, नद'दा का कहना मानना। लेकिन वह तो उसने नारायणी नामक किसी बेहद असहाय-निरु-पाय लडकी से कहा था। उस लडकी से रीना बागची का क्या वास्ता? नही, यहा 'नारायणी' नामक कोई लडकी नही रहती। अब वह रीना बागची है। लेडी बागची!

गब्बू का यो खडे रहना बाकी दो लोगो को बुरा लग रहा होगा। मामला क्या है? ऐसा कौन आ गया है?—यह समझने की कोशिश मे घर का मालिक किंचित सब्र से काम ले रहा था।

हाथ की प्याली रखकर नारायणी ने गब्बू की तरफ देखा। उसकी भौहे सिकुड आयी। उसने कहा, "जा, पूछ आ, क्या काम है? आज मेरी तबीयत ठीक नही—"

उसकी तबीयत ठीक नही है, इस बारे मे गब्बू को पिछली रात ही शक हो गया था। लेकिन इस वक्त वह बैठी-बैठी चाय पी रही है, उधर लगभग डेढ युग बाद नद'दा आये है, तारपाशा के नद'दा···अभी थोडी देर पहले वह दीदीमणि को हसते-खिलखिलाते देख चुका है, और···जरा नीचे उतरकर नद दा से एक बार मुलाकात करने का भी मन नही हो रहा—गब्बू यह सोच भी नही सकता था। दीदीमणि की यह निर्लिप्तता जितनी दुर्बोध थी, उतनी ही तकलीफदेह।

गब्बू विमूढ-सा वापस लौट गया। इस कमरे मे खडे होकर किसी तरह की बहस की सख्त मनाही है, यह वह बखूबी जान गया है। इस वक्त अगर कमरा खाली होता, तो नारायणी को शायद अच्छी तरह समझाने की कोशिश भी करता।

मन से सब कुछ झाड-बुहारकर नारायणी ने सहज होने की कोशिश की। उसने चेहरे पर मायास हसी बिखेरते हुए बेटे की तरफ देखा।

: नग

विपुलानंद से सवाल किया, "बेटे के दिमाग में आज फिर कौन-सी नयी खुराफात भरी जा रही है ?"

विपुलानंद ने जवाब दिया, "यह तैरना सीखना चाहता है। इसके स्कूल के बहुत-से लड़के तैरना जानते हैं, इसे ही तैरना नहीं आता, यह इसके लिए बहुत शर्म की बात है।"

नारायणी ने आंखों में अचरज भरकर कहा, "वाकई, बे-हद्द शर्म की बात है।" कौतुक का समर्थन करती हुई उसकी आवाज कहीं से बनावटी भी लगी, "अरे, जो वह जानता है, वह कोई न जाने तब न मजा आये···"

मां की बातचीत का रंग-ढंग राजा को जरा कम ही पसंद आता है। उसकी मां ने शायद ही कभी कोई ऐसी बात कही हो, जो उसके मन को भली लगी हो। लेकिन इस वक्त मां की बात उसे पसंद आयी।

बेटे ने कहा, "मैं एक काम करूंगा, बापी। जो लड़के तैरना जानते हैं, मैं उनको भूल जाने को कह दूंगा। कहूंगा—पहले मैं सीख लूं, फिर—"

लेकिन समस्या इतनी छोटी भी नहीं थी।

विपुलानंद ने दुबारा पूछा, "लेकिन सवाल यह है कि तुम्हारे कहने भर से वे भला क्यों भूलने लगे ?"

बेटा मानो आसमान से गिरा। उसने तैशभरी आवाज में जवाब दिया, "मैं कहूंगा—तुमने हुक्म दिया है, उन्हें भूल जाने को—"

बेटे के मुंह से वह हमेशा ऐसी ही अहंकार-भरी बातें सुनने की अभ्यस्त हो चुकी है। अब उतनी तिलमिलाहट नहीं होती। लेकिन फिर भी अच्छा नहीं लगता। बेटे का विश्वास है, दुनिया में उसके बापी से बड़ी ताकत और किसी के पास नहीं। चूंकि वह उनका सगा बेटा है, वह भी जबरदस्त ताकतवर है।

और कोई दिन होता, तो नारायणी भी उनकी बातचीत में कोई व्यंग्य या मजाक जोड़ देती। बाप को न सही, बेटे को तो गुस्सा दिला ही सकती थी। वह खुद भी मन ही मन सुलग उठती। लेकिन उसके भीतर शंका की जो छाया पड़ी थी, बेटे की इस बात पर मानो बेतरह हिल उठी।

गब्बू लौट आया। तमतमाया हुआ, गंभीर चेहरा। हाथ में एक बंडलपत्र। यानी जो आया है, वह गया नहीं—ये कागज-पत्र भेज दिये हैं! गब्बू ने नंद'दा के सामने दीदीमणि की बीमारी कुछ बढ़ा-चढ़ाकर ही बयान की थी। इसके अलावा और उपाय भी क्या था ? वह अपनी दीदीमणि को कहीं से भी छोटा नहीं कर सकता। लेकिन अंदर ही अंदर कहीं उसका सहज विश्वास जड़-मूल सहित हिल गया था।

उसे दुबारा लौटा देखकर, विपुलानंद ने गंभीर आवाज में पूछा, "कौन आया है ?"

गब्बू पत्थर की मूरत बना खड़ा रहा। उसे मालूम है, कुछ पूछे जाने पर फौरन जवाब न देना परम अपराध है। लेकिन दीदीमणि के इस उखड़े व्यवहार पर वह क्या जवाब दे, उसे समझ नहीं आया। हाथ बढ़ाकर नारायणी ने ईषत् विरक्त मुद्रा में कागज-पत्र ले लिये। साथ में एक छोटी-सी नोट-बुक भी थी। उन पर निगाहें गड़ाते हुए उसी ने जवाब दिया, "गांव का एक पुराना परिचित है। पता नहीं क्या चाहता है!"

ना, वह गब्बू की तरफ आंखें नहीं उठा पा रही है। घर में घुसते हुए उसकी आंखों में धिक्कार-भरी शिकायत उसने पढ़ ली थी। वह उन कागज-पत्रों को और छोटी-सी नोट-बुक को उलट-पुलटकर देखती रही। बंगाल के बाहर, किसी खूबसूरत जगह पर, किसी पहाड़ तले, कोई प्रतिष्ठान खोलने का हवाला और विज्ञापन! बहुत-से गण्यमान लोगों की राय और शुभेच्छा। दान देनेवाले शुभा-काक्षियों के नाम। उसने वह नोट-बुक भी देखी। आजकल वहां एक सौ बारह बच्चों का लालन-पालन हो रहा है। अचानक उसकी आंखों के आगे पद्मा-पार के उन सत्रह बच्चों का मासूम चेहरा तैर गया। सिर्फ तैर ही नहीं गया, उन पलों में मानो वह उन्हें बेहद करीब से देख रही हो। लेकिन अगले ही पल उसने अपनी यादों को जबरन ही पीछे धकेलकर विस्मृति की पर्तों तले ढक दिया। वह उस नोट बुक के पन्ने पलटने लगी। उसमें प्रतिष्ठान का उद्देश्य, आदर्श, वहां के बच्चों के रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा का तरीका, वगैरह-वगैरह का लंबा-चौड़ा वृत्तांत दर्ज था। ढेर-ढेर बातें! ढेर-ढेर खेल!

कुल मिलाकर सहायता और संवेदना की अपील!

उसने कमरे में मौजूद व्यक्ति को सुनाते हुए अस्फुट आवाज में कहा, "अजीब झमेला है!"

नारायणी कागज और नोट-बुक समेटकर उठ खड़ी हुई।

"अभी आ रही हूं!" कहकर वह अपने कमरे में चली आयी। गब्बू भी उसके पीछे-पीछे ही आ रहा है, यह जानते हुए भी, उसने पलटकर उसकी तरफ नहीं देखा। उसकी तरफ देखने की शायद हिम्मत नहीं थी। लेकिन मन ही मन उसने राहत की सांस ली। असल में वह चाय की मेज से उठ आना चाहती थी। चेक पर एक मोटा अंक बिठा देने भर से, सारा मामला खत्म! चेक पर रकम का जितना मोटा अंक बैठा पायेगी, उतना ही हलका महसूस करेगी।

नारायणी ने चेक-बुक निकाली। कलम खोली। उसके बाद भी वह गब्बू से नजर नहीं मिला पा रही है। नोट-बुक में नाम देखकर, उसने चेक पर प्रतिष्ठान का नाम लिखा। लेकिन रकम की राशि लिखते वक्त उसके हाथ थम गये। उस सोच लिया था, दस-बीस हजार कुछ लिख देगी। उसने रकम लिख देना था, देना भी कुछ मुश्किल नहीं था। लेकिन क्यों लिखे? क्यों दे? इसके बजाय

दे डाले कि लोग अवाक हो उठें। उसे इतनी सहृदयता दिखाने की क्या जरूरत है? पद्मा-पारवाला मन क्या उसने अभी तक संजो रखा है? इतने सारे रुपये दे डालना मन की कमजोरी ही तो है! ना, लेडी उर्फ रीना वागची के मन में कहीं कोई कमजोरी नहीं। इन सब छोटे-मोटे मामलों में भला कोई दस-बीस हजार रुपयों की सहायता करता है?

उसने नोट-बुक खोलकर दान देनेवालों की फेहरिश्त पर नजर डाली। उनके दान की राशि भी देख डाली। चंदे की सबसे बड़ी राशि थी—पांच सौ एक। नारायणी ने अपने चेक पर पांच सौ एक का अंक बैठा दिया। चेक पर दस्तखत करके गव्वू को पकड़ा दिया। उस पल भी उसकी निगाहें आवेदन-पत्रों पर गड़ी थीं।

"जाओ, दे आओ!"

चेक लेकर गव्वू को जहां का तहां खड़ा देखकर वह बेतरह खीज उठी।

"क्या बात है?"

"नंद'दा से कुछ कहना होगा?"

"कहना क्या है? कह दो, इससे ज्यादा देना संभव नहीं।"

गव्वू चेक लेकर चला गया। नारायणी को लगा, यह एकमात्र व्यक्ति भी आज उससे बहुत दूर चला गया। नहीं, वह खुद दूर नहीं गया। उसके विश्वास को तोड़-मरोड़कर उसे जबरन दूर धकेल दिया गया। अब दीदीमणि के स्नेह पर उसकी बूंद भर भी आस्था नहीं रहेगी। नारायणी हारी हुई मुद्रा में कुर्सी पर ढह गयी। उंह! मरने दो! अरसे से बीमार मिसेज रीना वागची मानो आज ज्वर-मुक्त हुई। कागज-पत्र और नोट-बुक उसी तरह मेज पर पड़े थे। गव्वू के हाथ इन्हें भी वापस भेज देना चाहिए था।

···नारायणी की आंखों के आगे फिर उन्हीं सोलह-सत्रह बच्चों के चेहरे तिर आये। अच्छा, वे लोग भी तो नारायणी के इस व्यवहार के बारे में सुनेंगे? शायद नहीं! नंद'दा उन्हें कुछ नहीं बतायेंगे, यह उसे नहीं मालूम! ···उसके चले आने के कितने दिनों बाद उन बच्चों के साथ, नंद'दा ने वह जगह छोड़ी—उसका जानने को मन हो आया। पता नहीं, वे बच्चे आज भी नंद'दा के साथ ही हैं या नहीं! अच्छा, नंद'दा का यह प्रतिष्ठान कहां होगा? किस पहाड़ के नीचे?··· इत्ती-सी देर में सब भूल गयी। हाथ बढ़ाकर, वह कागज पढ़ते ही तो सारा कुछ याद आ जायेगा।

खैर, जाने दो। जो जहां है, वहीं रहे।

नारायणी कुर्सी छोड़कर फौरन उठ खड़ी हुई। उसका अभी इसी वक्त उस कमरे में जाने को मन कर रहा है। बेटे और बेटे के बाप के पास बैठने की तबीयत हो रही है। उनकी उस बेमतलब की बातचीत में शामिल होने का मन

कर रहा है। हां, बिलकुल इसी वक्त बेटे की पीठ पर हाथ फेरने का मन हो रहा है। हैरत है! एक ही तो बेटा है, उसे भी इतने दिनों अपने से दूर-दूर रखती रही। उसके साथ कभी अच्छी तरह बात नहीं की, कभी उसे प्यार भी नहीं किया। हां, इतने सालों बाद, मानो आज ही वह बिलकुल ठीक-ठीक लेडी बागची हो पायी है।

उसने घड़ी पर निगाह डाली। बाप-बेटे अभी और पंद्रह-बीस मिनट तक साथ-साथ रहेंगे। उनका साथ-साथ रहना भी घड़ी के कांटों से बंधा हुआ है। चौबीस घंटे में कुल तीन बार मुलाकात, बातचीत, छेड़-छाड़। सुबह चाय की मेज पर, शाम दफ्तर से लौटकर, रात सोने से पहले। जिस दिन बेटे के पिता कहीं बाहर के टूर से लौटते हैं, उस दिन शायद दो-एक बार ज्यादा मिल लेते हैं।

सुबह-सुबह ही बेटे के लिए एक के बाद एक दो-दो मास्टर आते हैं—एक मेमसाहब और एक बंगाली सज्जन। उसके बाद आया और बावर्ची की देखरेख में खाना खाकर वह गब्बू के साथ गाड़ी में स्कूल चला जाता है। चूंकि यह नारायणी की इच्छा थी, राजा के साथ गब्बू भी जाता है, वरना राजा के पिता का बिलकुल मन नहीं था। उस स्कूल में बंगाली बच्चे बहुत कम ही आते हैं। बीच में एक बार गब्बू ही जाकर उसे खाना खिला आता है, फिर शाम को उसे गाड़ी में लौटा लाता है। बेटे के लिए अलग से एक गाड़ी है।

शाम को उसके खेल के साथी भी गिने-चुने हैं। उसे किन-किन लड़कों के साथ खेलना चाहिए, इस बारे में कमोबेश राय उसने खुद ही कायम कर ली है। वाकर के बेटे, स्टीफेंस के बच्चे, डट्टा, देसाई, नान्डी और मुंशी के बच्चे! इसी तरह के दस-बारह लड़के हैं, जो अपनी गाड़ी में आते हैं, घड़ी देखकर वापस चले जाते हैं। खेलने का सारा सामान राजा का है। उसके खेल के सामानों से राजमहल का आउट-हाउस ठसाठस भरा हुआ है। खेल के साथियों के लौटने के वक्त या उससे जरा देर पहले, विपुलानंद भी आ जाता है। उनके खेलों में शरीक होता है। इस नियम का खास व्यतिक्रम नहीं होता।

तमाम बड़े-बड़े और धुरंधर कामकाजी लोगों के कुछ खास शगल या शौक होते हैं, जिसे हॉबी कहा जाता है। काम करने के लिए ही काम और फिक्र से मुक्त होना भी जरूरी है। शाम को थोड़ी देर के लिए भी अगर किसी ऐसे शगल या शौक में डूब जाओ, तो कामकाज की थकान से टूटती हुई नसों को आराम मिलता है। विपुलानंद के लिए निजी शगल या शौक शायद अब कुछ भी नहीं बचा। नारायणी को मालूम है, कभी उसे खेल-कूद का बेहद शौक था, लेकिन अब शौक की कौन कहे, शायद अब कौतूहल भी नहीं रहा। कामकाज से या चिंता-फिक्र से फुरसत के नाम पर उसकी सारी ध्यान-धारणा अपने बेटे पर ही केंद्रित हो गयी है। नारायणी सिर्फ देखा करती है, शहर का सफलतम शिल्पपति सिर्फ

इत्ते-से वक्त के लिए मानो दुनिया भर की व्यस्तता के जाल से निकलकर किस कदर मुक्त हो आता है। उस वक्त अगर उनकी बातचीत न सुनाई दे, तो उनके हाव-भाव का दृश्य काफी सहज और सरल लगता है। फुरसत की घड़ियों में बाप-बेटे के खेल-तमाशे, हाव-भाव, रूठने-मनाने, रीझने-खीजने का नाटक देखते हुए, सिर्फ उतने-से वक्त वह बेहद सरल और स्वाभाविक इंसान नजर आता है। हां, उस वक्त उसका सिर आकाश छूता नहीं दिखाई देता। लेकिन मुश्किल तो यह है कि उनकी बातचीत भी कानों तक पहुंचती रहती है। खासकर बेटे की बातें। बेटे का सिर ऊंचा···और ऊंचा···आकाश की ओर तन जाता है और नारायणी किसी अज्ञात दहशत से कांप उठती है।

नारायणी दुबारा चाय की मेज पर लौट आयी। और दिनों वह एक बार उठने के बाद दुबारा नहीं लौटती। इस वक्त वह बेटे से बिलकुल सटकर बैठ गयी। उसे खिजाने के लिए उसे गुदगुदाने भी लगी। उसके सिर के बाल बिखेर दिये। बेटे को, पिता के सामने मां के ऐसे लाड़-प्यार की आदत नहीं। उस पर से इस वक्त तो वह अपनी समस्या-समाधान के आखिरी किनारे तक पहुंच चुका था। मां का हाथ झटककर, उसे परे हटाते हुए उसने सवाल किया, "तुम तैरना जानती हो?"

"ऊं···? न्ना! अच्छा, तो तू अभी तैर ही रहा है?"

उसके सवाल को नजरअंदाज करते हुए राजा ने उत्साहित लहजे में खुश-खबरी सुनायी, "बापी ने कहा है, मेरे जन्मदिन पर वे छत पर एक स्विमिंग-पूल बनवा देंगे। उसके बाद तैरना सीखने में कित्ते दिन लगेंगे?"

छत पर स्विमिंग-पूल? नारायणी अवाक् हो उठी। क्या ऐसा भी संभव है—यह बात तो उसकी कल्पना से भी बाहर थी। अनजाने में ही वह सवाल कर बैठी, "ऐसा भी कहीं होता है?"

पत्नी की मूर्खता पर विपुलानंद मंद-मंद मुस्कराता रहा। नारायणी ने उसके चेहरे से ही अंदाजा लगा लिया कि वह क्या जवाब देने वाला है।

विपुलानंद ने कहा, "होता है! वहां पानी जमा करने का इंतजाम कर दिया जाएगा; पंपिंग की भी व्यवस्था रहेगी और कांट्रेक्टर लगाकर बाथ-पूल की ढलाई करा लेंगे! बस स्विमिंग-पूल तैयार!"

अभी थोड़ी देर पहलेवाली रीना बागची के अंदर आहिस्ते-आहिस्ते फिर वही नारायणी जाग उठी। यह पिता अपने बेटे को झूठमूठ के भुलावे कभी नहीं देता। जब कहा है, तो स्विमिंग-पूल जरूर बनेगा। मुमकिन है इसमें लाख-दो लाख रुपये खर्च हो जाएं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।···जब कहा है कि बनवा

—तो जरूर बनेगा। मानो अब यह उसकी इज्जत का सवाल है। नारायणी
मनी हो आयी। जाने कहा पूरे एक सौ बारह बच्चे अभाव और मोहताजी के
गर मे ऊब-डूब रहे हैं! नारायणी ने उनके लिए चंदे मे सिर्फ पाच सौ एक रुपये
दिये है। खैर, छोड़ो, दुनिया मे ऐसे लाखो-लाख बच्चे पड़े है। उसने जो दिया,
हुत दिया। नारायणी ने मानो अपने को तसल्ली देने की कोशिश की। इस घर
के रुपयो पर धूल ही तो जम रही है, छत पर स्विमिंग-पूल बना, तो बहुत-से लोगों
को रोटी-रोजी नसीब होगी। वे बेचारे भी चार पैसो का मुह देखेंगे! आखिर
इसमे नुकसान क्या है?

बेटा कह रहा था, "स्विमिंग-पूल बन जाएगा, तो मैं तुम्हे भी तैरना सिखा दूगा।"

नारायणी ने होठो पर जबरन हसी लाते हुए कहा, "और अगर कही मैं डूब गयी?"

बेटे की आखों मे हिकारत उभर आयी, "तुम डरपोक हो! लेकिन डर की क्या बात है? मैं जो हूं।"

पिपुलानंद भी बेटे की तरफ देख-देखकर हस रहा था। बेहद तृप्त हसी। वाकई वह उसका असली बेटा है; बिलकुल उसी की तरह तेज-तर्रार! नारायणी बेटे का यह गुमान पहले भी बहुत बार देख चुकी है।

उसने जरा चिंतित-सी मुद्रा मे सवाल किया, "जन्मदिन को तो अब छह-सात महीने भी नही रहे! इतनी जल्दी बन जाएगा?"

बेटे के बजाय पिता ने जवाब दिया, "मजदूर लगा दिये जाएगे,···स्विमिंग-पूल तैयार हो जाएगा।"

बेटा उसी वक्त सीना फुलाकर खड़ा हो गया, "मैं खड़ा रहूंगा। स्विमिंग पूल अगर ठीक समय से तैयार नही हुआ, तो उनमे से एक-एक को गोली से उ दूगा।"

"रा-जा!" नही, नारायणी इसके लिए तैयार नहीं थी। अनजाने मे उसके मुह से चीख निकल गयी। पिता-पुत्र दोनों ही अवाक् हो उठे।

नारायणी ने भी अपने को समाल लिया और अपनी आवाज को बेहद स बनाते हुए पूछा, "उन लोगों को मारेगा क्यो? वे लोग क्या इसान नहीं हैं?

बेटे के सिर पर भी मानो जिद सवार हो। उसने जवाब दिया, "वे लोग समय पर काम क्यो नही खत्म करेंगे?"

"नही करेंगे, यह किसने कहा?"

"पूरा कर देंगे, तो मैं कुछ नही कहूंगा।" राजा के फैसले मे कहीं शिथिलता नही थी, "वक्त पर काम पूरा कर देंगे तो मैं उन्हे और ज्या दूगा।"

इत्ते-से वक्त के लिए मानो दुनिया भर की व्यस्तता के जाल से निकलकर किस कदर मुक्त हो आता है। उस वक्त अगर उनकी बातचीत न सुनाई दे, तो उनके हाव-भाव का दृश्य काफी सहज और सरल लगता है। फुरसत की घड़ियों में बाप-बेटे के खेल-तमाशे, हाव-भाव, रूठने-मनाने, रीझने-खीजने का नाटक देखते हुए, सिर्फ उतने-से वक्त वह बेहद सरल और स्वाभाविक इंसान नजर आता है। हां, उस वक्त उसका सिर आकाश छूता नहीं दिखाई देता। लेकिन मुश्किल तो यह है कि उनकी बातचीत भी कानों तक पहुंचती रहती है। खासकर बेटे की बातें। बेटे का सिर ऊंचा···और ऊंचा···आकाश की ओर तन जाता है और नारायणी किसी अज्ञात दहशत से कांप उठती है।

नारायणी दुबारा चाय की मेज पर लौट आयी। और दिनों वह एक बार उठने के बाद दुबारा नहीं लौटती। इस वक्त वह बेटे से बिलकुल सटकर बैठ गयी। उसे खिजाने के लिए उसे गुदगुदाने भी लगी। उसके सिर के बाल बिखेर दिये। बेटे को, पिता के सामने मां के ऐसे लाड़-प्यार की आदत नहीं। उस पर से इस वक्त तो वह अपनी समस्या-समाधान के आखिरी किनारे तक पहुंच चुका था। मां का हाथ झटककर, उसे परे हटाते हुए उसने सवाल किया, "तुम तैरना जानती हो?"

"ऊं···? न्ना! अच्छा, तो तू अभी तैर ही रहा है?"

उसके सवाल को नजरअंदाज करते हुए राजा ने उत्साहित लहजे में खुश-खबरी सुनायी, "बापी ने कहा है, मेरे जन्मदिन पर वे छत पर एक स्विमिंग-पूल बनवा देंगे। उसके बाद तैरना सीखने में कित्ते दिन लगेंगे?"

छत पर स्विमिंग-पूल? नारायणी अवाक् हो उठी। क्या ऐसा भी संभव है—यह बात तो उसकी कल्पना से भी बाहर थी। अनजाने में ही वह सवाल कर बैठी, "ऐसा भी कहीं होता है?"

पत्नी की मूर्खता पर विपुलानंद मंद-मंद मुस्कराता रहा। नारायणी ने उसके चेहरे से ही अंदाजा लगा लिया कि वह क्या जवाब देने वाला है।

विपुलानंद ने कहा, "होता है! वहां पानी जमा करने का इंतजाम कर दिया जाएगा; पंपिंग की भी व्यवस्था रहेगी और कांट्रेक्टर लगाकर बाथ-पूल की ढलाई करा लेंगे! बस स्विमिंग-पूल तैयार!"

अभी थोड़ी देर पहलेवाली रीना बागची के अंदर आहिस्ते-आहिस्ते फिर वही नारायणी जाग उठी। यह पिता अपने बेटे को झूठमूठ के भुलावे कभी नहीं देता। जब कहा है, तो स्विमिंग-पूल जरूर बनेगा। मुमकिन है इसमें लाख-दो लाख रुपये खर्च हो जाएं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।···जब कहा है कि बनवा

देगा—तो जरूर बनेगा। मानो अब यह उसकी इज्जत का सवाल है। नारायणी अनमनी हो आयी। जाने कहां पूरे एक सौ बारह बच्चे अभाव और मोहताजी के सागर में ऊब-डूब रहे हैं! नारायणी ने उनके लिए चंदे में सिर्फ पांच सौ एक रुपये दिये हैं। खैर, छोड़ो, दुनिया में ऐसे लाखों-लाख बच्चे पड़े हैं। उसने जो दिया, बहुत दिया। नारायणी ने मानो अपने को तसल्ली देने की कोशिश की। इस पर के रुपयों पर धूल ही तो जम रही है, छत पर स्विमिंग-पूल बना, तो बहुत-से लोगों को रोटी-रोजी नसीब होगी। वे बेचारे भी चार पैसों का मुंह देखेंगे! आखिर इसमें नुकसान क्या है?

बेटा कह रहा था, "स्विमिंग-पूल बन जाएगा, तो मैं तुम्हें भी तैरना सिखा दूंगा।"

नारायणी ने होंठों पर जबरन हंसी लाते हुए कहा, "और अगर कहीं मैं डूब गयी?"

बेटे की आंखों में हिकारत उभर आयी, "तुम डरपोक हो! लेकिन डर की क्या बात है? मैं जो हूं।"

पिपुलानंद भी बेटे की तरफ देख-देखकर हंस रहा था। बेहद तृप्त हंसी! वाकई वह उसका असली बेटा है; बिलकुल उसी की तरह तेज-तर्रार! नारायणी बेटे का यह गुमान पहले भी बहुत बार देख चुकी है।

उसने जरा चिंतित-सी मुद्रा में सवाल किया, "जन्मदिन को तो अब छह-सात महीने भी नहीं रहे! इतनी जल्दी बन जाएगा?"

बेटे के बजाय पिता ने जवाब दिया, "मजदूर लगा दिये जाएंगे,…स्विमिंग-पूल तैयार हो जाएगा।"

बेटा उसी वक्त सीना फुलाकर खड़ा हो गया, "मैं खड़ा रहूंगा। स्विमिंग पूल अगर ठीक समय से तैयार नहीं हुआ, तो उनमें से एक-एक को गोली से उड़ा दूंगा।"

"रा-जा!" नहीं, नारायणी इसके लिए तैयार नहीं थी। अनजाने में ही उसके मुंह से चीख निकल गयी। पिता-पुत्र दोनों ही अवाक् हो उठे।

नारायणी ने भी अपने को संभाल लिया और अपनी आवाज को बेहद सहज बनाते [illegible] न नहीं है?" [illegible], "वे लोग ठीक [illegible] समय पर काम क्यों नहीं खत्म करेंगे?"

"नहीं करेंगे, यह किसने कहा?"

"पूरा कर देंगे, तो मैं कुछ नहीं कहूंगा!" [illegible] के [illegible] में कहीं कोई [illegible] नहीं थी, "वक्त पर काम पूरा कर देंगे तो मैं उन्हें और ज्यादा [illegible] दूंगा।"

नारायणी चुप। लेकिन अंदर ही अंदर कहीं आग-सी क्यों जल उठी है ?

वेटा समझ न पाये, ऐसी सख्त अंग्रेजी में विपुलानंद ने उसे इशारे में मना
कया। बच्चे के विश्वास पर चोट करना गलत है। जन्मदिन तक स्विमिंग-पूल
यार हो जाएगा—जब उसने आस बांध ली है, तो उसे पूरा करने की कोशिश
ी जाएगी। विपुलानंद ने कहा, "बस ! तुम देखती रहो, स्विमिंग-पूल तैयार
ता है या नहीं !"

उसी वक्त से···नारायणी बिलकुल गुमसुम ! बस, देखा करती है ! ढेर-ढेर
यारियां ! ढेर-ढेर ताम-झाम ! काम जितना-जितना निपटता जा रहा है, वेटे
चेहरे पर अहंकार की चमक फैलती जा रही है, मानो वह कोई दिग्विजयी
र हो। छत पर स्विमिंग-पूल बनने को लेकर जान-पहचानवाले ऊंचे महलों में
ी हलचल मच गयी है। हर तरफ उत्तेजना, वातों की सरगर्मी। चारों ओर
ाहवाही। औरतें भी खुश—चलो, उनके मनवहलाव का एक और वहाना
मला।

ठीक उसी वक्त एक और घटना भी हुई। कंपनी की यूनियन उतनी मजबूत
हीं हुई थी, लेकिन धीरे-धीरे उसका अस्तित्व नजर आने लगा था। इन दिनों यह
ूनियन प्रतिष्ठान के उच्चाधिकारियों का सिर-दर्द वन गयी। लेकिन जो व्यक्ति
माम अधिकारियों का अधिकारी था, वह इस मामले में बिलकुल निर्लिप्त नजर
ाया।

करीव दो सालों की रस्साकशी के वाद, कंपनी की तरफ से कर्मचारियों के
लिए एक कैंटीन खोली गयी। वहां कर्मचारियों के लिए खाने की चीजें किंचित
स्ते दामों में मिलने लगीं। इससे भी कुछ दिनों पहले, कंपनी की तरफ से ही हर
र्मचारी की टिफिन के लिए छह आने पैसे मंजूर किये गये थे। कंपनी की तरफ
ी कैंटीन खोले जाने पर, कर्मचारियों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।···नारा-
णी को वह दृश्य आज भी याद है। सहस्रों कर्मचारियों की तालियों की गड़ग-
ाहट और जयजयकार के वीच उसने कैंटीन का उद्घाटन किया था। लेडी
ागची उन्हीं के आमंत्रण पर आयी थीं।

कैंटीन-उद्घाटन के उपलक्ष्य में एक उत्सव का भी आयोजन किया गया।
ंस्थान के कर्ता-धर्ता विधायक उस दिन किंचित उदार मूड में थे। उन्होंने उत्सव
ं ऐसा जी खोलकर खर्च किया कि लोग धन्य-धन्य कर उठे।

लेकिन इन दो सालों में स्थितियां काफी वदल चुकी हैं। इन दिनों चीजों
े दाम खासे चढ़ गये हैं। अतः कर्मचारियों ने सामूहिक आवेदन भेजा था कि
उनकी टिफिन की राशि छह आने से आठ आने कर दी जाए। पिछले छह महीने
े इस मसले को लेकर रस्साकशी चल रही थी। कर्मचारियों की तरफ से जितनी
ार इसकी मांग की गयी, उतनी वार उनके विधाता ने उसे रद्द कर दिया।

हां, यह खबर भी उसके कानों तक पहुंची थी कि यूनियन के लोगों में खासी मीटिंग चल रही है और नरम-गरम लहजे में मांग पेश करने के लिए दल गठित किया जा रहा है। विपुलानंद को भी अक्खड़ बन जाने में ज्यादा वक्त नहीं लगता। वह एक पैसा भी बढ़ाने को राजी नहीं। बस, वह पैसा नहीं देगा। जहां राजा-प्रजा का संबंध है, वहां मांग या अधिकार की बात सुनते ही कान गर्म हो जाते हैं।

बस, इसी मांग को लेकर उस दिन भयंकर कांड हो गया। दफ्तर के कामकाज के समय में लगभग एक हजार कर्मचारी दल बांधकर ऑफिस के सामने जमा हुए और खूब नारे लगाये। वे लोग दो आने लेकर ही रहेंगे। देखते ही देखते पुलिस आ गयी, लाठी-चार्ज हुआ। अंत में अश्रुगैस छोड़कर भीड़ को तितर-बितर कर दिया गया।

अगले दिन अखबार में रिपोर्ट पढ़कर नारायणी सन्न रह गयी। अखबार में अगर इस घटना का जिक्र न होता, तो उसे पता भी न चलता। पिछली शाम जब वह घर लौटा था, उसके हाव-भाव में नाममात्र को भी इस घटना का आभास नहीं था। खैर, इससे भी बड़ा कोई कांड हो जाता, तो भी शायद उसके माथे पर बल नहीं पड़ते।

अखबारों में चूंकि ये सब खबरें प्रकाशित होती हैं, इसीलिए जानकारी मिल जाती है। ये अखबारवाले बड़े-बड़े व्यवसायी की अति तुच्छ खबरें भी प्रकाशित कर देते हैं, यह भी कम गर्व की बात नहीं! शायद इसीलिए उसने खुद कुछ नहीं बताया। अगर बता देता, तो अखबार में पढ़कर वह इतना नहीं चौंकती।

'''छत पर स्विमिंग-पूल बन रहा है। बेटे की एक खामख्याली मिटाने के लिए, हजारों-हजार रुपये चिड़ियों की तरह उड़ाये जा रहे हैं। गरीबों की टिफिन के लिए दो आने की मांग वह महज एक दस्तखत भर से मंजूर कर सकता है। लेकि[illegible] की कीमत जो घट जाएगी। ऐसी मिलि[illegible]

लेकिन नारायणी से आखिर नहीं रहा [illegible] लिया, "अखबार में पढ़ा, कल तुम्हारे दफ्तर में जाने क्या गोलमाल हुआ था! कोई मृत या जख्मी तो नहीं हुआ?"

विपुलानंद ने जवाब दिया, "[illegible] उसे कौन रोक सकता है? अच्छा हुआ। [illegible]"

मानो उनको भरपूर सबक मिल गया, इसी से उसकी आत्मा प्रसन्न हो गयी।

नारायणी खुद भी खुश होना चाहती है। उसी पल में अंदर ही अंदर वह एक और संकल्प से भी जूझ रही है। अब से वह नन्दपुत्र नेडी बागची [illegible]

चाहती है। पहले दिन रंगीन पानी गले में उंड़ेलते ही, गले-छाती में बेतरह जलन होने लगी थी, अब ऐसा नहीं होता। अब नींद गायब नहीं होती, बल्कि अच्छी और गहरी नींद आती है। शराब की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। शराब पीकर लेडी बागची बनना ज्यादा आसान लगता है। इधर दो महीनों में वह तमाम परिचित महिला पियक्कड़ों से बाजी मार ले गयी है। अब तो उसकी पीठ-पीछे कानाफूसी भी होने लगी है। सिर्फ शराब ही नहीं, इसके साथ-साथ नारायणी की हंसी और बातचीत भी बढ़ गयी है।

बीवी में यह परिवर्तन देखकर विपुलानंद शुरू-शुरू में काफी हैरान हुआ। यहां तक कि बेटा भी कभी-कभी हैरतअंगेज निगाहों से मां का चेहरा निहारने लगता। लेकिन विपुलानंद ने अपनी जुबान से कुछ नहीं कहा, उसे रोका भी नहीं। वह आदर्श पति था, आभिजात्य संस्कारों के चरम शिखर पर आसीन था। उसे औरत के अधिकारों में हस्तक्षेप करना कभी उचित नहीं लगा। इन मामलों में वह अपने को सबसे ज्यादा उदार भी समझता था। लेकिन लोगों की कानाफूसी मानो हवा के साथ उड़-उड़कर उसके कानों में पहुंचती रही। उसे अंदाजा हो गया था, उसके साधारण कर्मचारी भी अब उसकी बीवी के शराब में चूर रहने की बात जान गये हैं। लेकिन वे लोग भी उसके आदर्श संयम की प्रशंसा में पंचमुख रहते हैं, उसके अपने लोगों को तो इसकी भी खबर नहीं है।

नारायणी ने भी श्यामा'दी से अपने संबंध बिलकुल ही समाप्त नहीं किये हैं। फुरसत के समय वे अक्सर आ जाती हैं, इन दिनों उसे भी झख चढ़ती है, तो कभी-कभार उनके यहां जा धमकती है।

उनके मिलिटरी साहब तो साल के आठ महीने बाहर ही बाहर रहते हैं। श्यामा'दी को कोई बाल-बच्चा भी नहीं है, अत: वे फिल्म, पार्टी, सैर-सपाटे, बेभाव हंसी, धाराप्रवाह बातों में दिन गुजार देती हैं। काफी ऐश में रहती हैं। उनके पास आकर नारायणी बोर भी नहीं होती।

···उस दिन नारायणी बिलकुल अचानक पहुंच गयी थी। श्यामा'दी उसी वक्त एक बड़ी-सी बोतल निकालकर बैठी थीं। इस तरह रंगे हाथों पकड़े जाने पर थोड़ा अचकचा गयीं।

"अरे, तू ? भला इस वक्त क्यों मरने चली आयी ?"

नारायणी जमकर बैठ गयी। कुछेक पल उसकी तरफ गौर से देखती रही। अचानक उसने बेहद नम्र लहजे में सवाल किया, "तुम इतना पीती क्यों हो ?"

"इत्ता पीते हुए कहां देखा तूने ? तूने क्या सोचा है, सब पी डालूंगी ? भई, मैं तेरे जितनी अमीर तो हूं नहीं ! ज्यादा पीने के लिए पैसे भला कहां से आयेंगे ?"

"लेकिन पीती क्यों हो ?"

"खुशी पाने के लिए।"

[खु]शी मिलती है ?"
[ज]रूर ! तेरे लिए तो खुशियों की कोई कमी नही है। फिर भी जरा चखकर
[देख] ! चखेगी ?"
"लाओ, दो।"
श्यामा'दी उत्साह से गद्‌गद हो आयी। मानो किसी बहुत बड़े काम में काम-
[याब] हो गयी हों। वह चटपट गिलास ले आयी। शराब उंडेलकर गिलास उसके
[साम]ने रख दिया। लेकिन थोड़ी देर बाद अब उसके चौंकने की बारी आ पहुंची।
[नार]ायणी ने इतमीनान से आधी बोतल खाली कर दी थी।
श्यामा'दी ने उसका हाथ कसकर थामते हुए कहा, "तू तो बिलकुल उस्ताद
[हो] गयी है, रे ! लेकिन तूने ऐसा मुंह क्यों बना रखा है ? मजा नही आ रहा ?"
नारायणी के होंठो पर फीकी-सी मुस्कान उभर आयी, "—आ रहा है।"
श्यामा'दी ने उसी वक्त एक अर्जी पेश की, "एइ, तेरे पास तो कुबेर का खजाना
[है]। कुछेक बोतलों का इंतजाम कर दे न ! मन-मुताबिक खरीद नही पाती। बहुत
महंगे हैं।"
"ला दूंगी।"
नारायणी ने अपना वादा पूरा किया था। दो दिनों बाद ही उसके सामने पूरी
एक पेटी लाकर हाजिर कर दी। बोतल ही बोतल ! महंगी विलायती शराब !
श्यामा'दी खुशी के मारे पागलो की तरह हंसती रही। बार-बार नारायणी को
गले लगाती रही।
घर लौटकर नारायणी देर-देर तक सोचती रही—श्यामा'दी शराब क्यों
पीती हैं ? अचानक उसके अंदर से सवाल उभरा—वह खुद क्यों पीती है ? वह खुद
इसलिए पीती है कि वह तन-मन-आत्मा से लेडी बागची बन जाए। इतनी सारी
कोशिशों के बावजूद जाने कहां से वह गंवई लड़की नारायणी बार-बार सिर उठाने
लगती है। लेकिन श्यामा'दी आखिर क्यों पीती हैं ?
श्यामा'दी उसे बहुतों से ज्यादा अच्छी लगती हैं। नहीं, उनके अच्छे लगने
की वजह नही मालूम ! कहीं ऐसा तो नही कि ब्याह से पहले वह उनसे बहुत
डरती थी ? लेकिन यह भी सच नहीं लगता ! खैर, इन्हीं श्यामा'दी का एक साधा-
रण-सा अनुरोध नारायणी ने नहीं रखा।
श्यामा ने अपने मामा समरेन्द्र गांगुली के बारे में एक अनुरोध किया था।
बहुत दिन हुए, वह भी ब्याह-शादी करके गृहस्थ बन गया था। बाल-बच्चे भी हैं।
उस दिन शाम को वह अपने बेटे के साथ लौट रही थी। रास्ते में मामाजी
मुलाकात हो गयी। वे बस की इंतजार में खड़े थे।
नारायणी के हुक्म पर गाड़ी उनके सामने रुक गयी। गाड़ी रुकते ही, आ[स]-
पास के लोगो की चकित निगाहें भी उसकी आलीशान गाड़ी की तरफ उठ गयीं।

चाहती है। पहले दिन रंगीन पानी गले में उंड़ेलते ही, गले-छाती में बेतरह जलन होने लगी थी, अब ऐसा नहीं होता। अब नींद गायब नहीं होती, बल्कि अच्छी और गहरी नींद आती है। शराब की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। शराब पीकर लेडी बागची बनना ज्यादा आसान लगता है। इधर दो महीनों में वह तमाम परिचित महिला पियक्कड़ों से बाजी मार ले गयी है। अब तो उसकी पीठ-पीछे कानाफूसी भी होने लगी है। सिर्फ शराब ही नहीं, इसके साथ-साथ नारायणी की हंसी और बातचीत भी बढ़ गयी है।

बीवी में यह परिवर्तन देखकर विपुलानंद शुरू-शुरू में काफी हैरान हुआ। यहां तक कि बेटा भी कभी-कभी हैरतअंगेज निगाहों से मां का चेहरा निहारने लगता। लेकिन विपुलानंद ने अपनी जुबान से कुछ नहीं कहा, उसे रोका भी नहीं। वह आदर्श पति था, आभिजात्य संस्कारों के चरम शिखर पर आसीन था। उसे औरत के अधिकारों में हस्तक्षेप करना कभी उचित नहीं लगा। इन मामलों में वह अपने को सबसे ज्यादा उदार भी समझता था। लेकिन लोगों की कानाफूसी मानो हवा के साथ उड़-उड़कर उसके कानों में पहुंचती रही। उसे अंदाजा हो गया था, उसके साधारण कर्मचारी भी अब उसकी बीवी के शराब में चूर रहने की बात जान गये हैं। लेकिन वे लोग भी उसके आदर्श संयम की प्रशंसा में पंचमुख रहते हैं, उसके अपने लोगों को तो इसकी भी खबर नहीं है।

नारायणी ने भी श्यामा'दी से अपने संबंध बिलकुल ही समाप्त नहीं किये हैं। फुरसत के समय वे अक्सर आ जाती हैं, इन दिनों उसे भी झख चढ़ती है, तो कभी-कभार उनके यहां जा धमकती है।

उनके मिलिटरी साहब तो साल के आठ महीने बाहर ही बाहर रहते हैं। श्यामा'दी को कोई बाल-बच्चा भी नहीं है, अतः वे फिल्म, पार्टी, सैर-सपाटे, बेभाव हंसी, धाराप्रवाह बातों में दिन गुजार देती हैं। काफी ऐश में रहती हैं। उनके पास आकर नारायणी बोर भी नहीं होती।

···उस दिन नारायणी बिलकुल अचानक पहुंच गयी थी। श्यामा'दी उसी वक्त एक बड़ी-सी बोतल निकालकर बैठी थीं। इस तरह रंगे हाथों पकड़े जाने पर थोड़ा अचकचा गयीं।

"अरे, तू ? भला इस वक्त क्यों मरने चली आयी ?"

नारायणी जमकर बैठ गयी। कुछेक पल उसकी तरफ गौर से देखती रही। अचानक उसने बेहद नम्र लहजे में सवाल किया, "तुम इतना पीती क्यों हो ?"

"इत्ता पीते हुए कहां देखा तूने ? तूने क्या सोचा है, सब पी डालूंगी ? भई, मैं तेरे जितनी अमीर तो हूं नहीं ! ज्यादा पीने के लिए पैसे भला कहां से आयेंगे ?"

"लेकिन पीती क्यों हो ?"

"खुशी पाने के लिए।"

"खुशी मिलती है ?"

"खू-ब ! तेरे लिए तो खुशियों की कोई कमी नहीं है। फिर भी जरा चखकर देख न ! चखेगी ?"

"लाओ, दो।"

श्यामा'दी उत्साह से गद्‌गद हो आयी। मानो किसी बहुत बड़े काम में कामयाब हो गयी हों। वह चटपट गिलास ले आयी। शराब उड़ेलकर गिलास उसके सामने रख दिया। लेकिन थोड़ी देर बाद अब उसके चौंकने की बारी आ पहुंची। नारायणी ने इतमीनान से आधी बोतल खाली कर दी थी।

श्यामा'दी ने उसका हाथ कसकर थामते हुए कहा, "तू तो बिलकुल उस्ताद हो गयी है, रे! लेकिन तूने ऐसा मुंह क्यों बना रखा है ? मजा नहीं आ रहा ?"

नारायणी के होठों पर फीकी-सी मुस्कान उभर आयी, "—आ रहा है।"

श्यामा'दी ने उसी वक्त एक अर्जी पेश की, "एइ, तेरे पास तो कुबेर का खजाना है। कुछेक बोतलों का इंतजाम कर दे न ! मन-मुताबिक खरीद नहीं पाती। बहुत महंगे हैं।"

"ला दूंगी।"

नारायणी ने अपना वादा पूरा किया था। दो दिनों बाद ही उसके सामने पूरी एक पेटी लाकर हाजिर कर दी। बोतल ही बोतल ! महंगी विलायती शराब ! श्यामा'दी खुशी के मारे पागलों की तरह झूमती रहीं। बार-बार नारायणी को गले लगाती रहीं।

घर लौटकर नारायणी देर-देर तक सोचती रही—श्यामा'दी शराब क्यों पीती है ? अचानक उसके अंदर से सवाल उभरा—वह खुद क्यों पीती है ? वह खुद इसलिए पीती है कि वह तन-मन-आत्मा से लेडी बालवी बन जाए। उसकी सारी कोशिशों के बावजूद जाने कहां से वह गंवई लड़की नारायणी बार-बार सिर उठाने लगती है। लेकिन श्यामा'दी आखिर क्यों पीती हैं ?

श्यामा'दी उसे बहुतों से ज्यादा अच्छी लगती हैं। लेकिन, उनके अच्छे लगने की वजह नहीं मालूम ! कहीं ऐसा तो नहीं कि ब्याह से पहले वह उन्हें बहुत डरती थी ? लेकिन यह भी सच नहीं लगता ! खैर, श्यामा'दी का एक [illegible]-सा अनुरोध नारायणी ने नहीं रखा।

श्यामा ने उससे [illegible] के बारे में एक अनुरोध किया था। बहुत दिन हुए, वह तो ब्याह-शादी करके गृहस्थ बन [illegible]। [illegible] हैं।

उस दिन शाम को वह अपने बेटे के साथ लौट रही थी। [illegible] मुलाकात हुई थी। वे बस की इंतजार में खड़े थे।

नारायणी के [illegible] सामने तक गयी। [illegible] हैं, आस-पास के लोगों को [illegible] दिखाई दी। उसकी [illegible]।

उसमें वैठी हुई महिला को देखकर वे और चकरा गये। गाड़ी अचानक उसके सामने क्यों रुक गयी, समरेंद्र गांगुली भी चकित हो उठा।

नारायणी ने दरवाजा खोलते हुए उसे आवाज देकर कहा, "आइए—"

एकाध पल के लिए समरेंद्र गांगुली आंखें फाड़े देखता रहा। अचानक मानो होश आया। वह दुविधाग्रस्त-सा गाड़ी में आ वैठा। गाड़ी दुवारा चल पड़ी।

नारायणी मुस्कराते हुए उसे देखती रही। एक दिन यही आदमी अपनी उंगलियां तोड़कर उसकी उंगलियों से खेलता रहा था। आज उसके पास वैठकर पसीने-पसीने हो उठा है। अव चेहरे पर वह चमक भी नहीं रही, कपड़े-लत्ते भी पहले जैसे उजले-धुले नहीं।

"क्यों, पहचान नहीं रहे?"

समरेंद्र ने सिर हिला दिया। उसके वाद उसने हिचकिचाते हुए पूछा, "तुम किस तरफ?"

"घर जा रही थी। आप कहां जा रहे हैं? चलिए, आपको उतारती जाऊंगी।"

"मैं···मैं भी घर ही जा रहा था।"

नारायणी ने उमगती हुई आवाज में कहा, "चलिए, आपका घर देख लूं। मामी भी घर में ही होंगी न?"

समरेंद्र गांगुली ने सकुचाते हुए सिर हिला दिया। उसकी पत्नी घर में ही होगी।

नारायणी ने दुवारा सवाल किया, "आपने खेलना-वेलना अव विलकुल छोड़ दिया?"

"हां! अव उम्र भी तो हो गयी। यह तुम्हारा वेटा है?"

राजा भी गंभीर मुद्रा में उसी की तरफ देख रहा था। उसका सवाल सुनकर उसने रास्ते की तरफ मुंह फेर लिया।

नारायणी ने मुस्कराते हुए वेटे को संवोधित करके कहा, "इन्हें अच्छी तरह पहचान ले राजा, ये वहुत वड़े खिलाड़ी रह चुके हैं। इनका खेल देखने के लिए कलकत्ता मैदान में हजारों-हजार लोगों की भीड़ लगी रहती थी।"

राजा ने गरदन घुमाकर उनकी तरफ देखा। वहुत वड़ा खिलाड़ी जानकर भी वह खास उत्साहित नहीं हुआ।

समरेंद्र गांगुली के घर आकर नारायणी को लगा, अगर वह न आती तो शायद ज्यादा वेहतर होता। नारायणी उनकी दरिद्रता देखकर उतना नहीं सकुचायी थी, जितना यह देखकर कि उन दोनों के आने से वेचारे पति-पत्नी की कुंठा का अंत नहीं। वह जितनी देर वहां रही, वेभाव हंसती-वोलती रही। समरेंद्र गांगुली शायद अवाक् होकर सोच रहा था—क्या यह वही नारायणी है?

उन लोगों ने यथासाध्य खातिर-तवज्जाह भी की। उसके लिए नाश्ता मंगाया गया। राजा को खाते न देखकर, उन लोगों ने उसे भी खिलाने की कोशिश की। वहां की गर्मी से राजा का चेहरा लाल हो उठा था। नारायणी उसकी तकलीफ समझ रही थी। लेकिन उसकी बात सुनकर वह शर्म से गड़ गयी।

नाश्ते की तरफ देखते हुए राजा ने गंभीर मुद्रा में सिर हिलाते हुए कहा, "मैं बाजार की चीजें नहीं खाता।"

उसका बेटा मानो महाभैरव की प्रतिमूर्ति बना हुआ था। मां के साथ ऐसे दरिद्र घर में आना पड़ा, वह बेहद नाराज था। नारायणी ने अपनी शर्म छिपाने के लिए सफाई दी, "असल में उसे यह सब खाना हजम नहीं होता।"

उसने खुद हाथ बढ़ाकर तश्तरी उठा ली। सामने खड़े बच्चों को बुला-बुलाकर खिलाती रही। बेचारे दुबले-पतले बच्चे! मामा की बीवी भी गोरी होने के बावजूद, उसकी हड्डियों पर मानो मांस ही नहीं था।

लौटकर गाड़ी में बैठते ही बेटा झल्ला पड़ा। जन्म से ही एयर-कंडीशन के अभ्यस्त बच्चे को तकलीफ तो होगी ही।

उसने झल्लाकर कहा, "तुम मुझे ऐसी गर्मीवाले और सड़े-सड़े घर में लायी थी, मैं आज बापी को बताऊंगा।"

इत्ते-से बच्चे का ऐसा निर्मम रुख ही तो नारायणी बरदाश्त नहीं कर पाती।

उसने मन की झुंझलाहट दबाते हुए ठंडी आवाज में जवाब दिया, "कह देना! वहां और भी तो बच्चे थे। वे लोग भी तो इंसान ही हैं। वे लोग कैसे रहते हैं?"

"वे लोग रह सकते हैं। मैं नहीं रह सकता।"

"क्यों नहीं रह सकता?"

बेटे ने रास्ते की तरफ मुंह फेर लिया। इसीलिए तो उसकी मां से पटरी नहीं बैठती। बापी कभी इस तरह की बातें नहीं करते। मां दिन-रात उसी का दोष निकालती रहती है?

तीन-चार दिन बाद ही श्यामा ने मामाजी को एक अच्छी-सी नौकरी दिलाने का अनुरोध किया था। बेचारे बहुत कष्ट में थे। बाल-बच्चों के फाके की नौबत आ पहुंची है। नारायणी बस, जुबान भर हिला दे, उन्हें एक अच्छी-सी नौकरी मिल सकती है।

हां, वह नौकरी दिला सकती थी। लेकिन उसके लिए यह संभव नहीं था। श्यामा'दी का सिर्फ यही अनुरोध वह नहीं रख पायी। नारायणी को लगा, उस निपट दरिद्रता में भी वह भलामानस अपनी बीवी-बच्चों से कहीं मन से जुड़ा हुआ है। वे लोग आपस में दुख भी बांटकर भोगते हैं। नौकरी देकर नारायणी उनका बहुत बड़ा नुकसान करेगी। उसकी आंखों ने उन्हें बड़े-बड़े मकानों में, ढेर-ढेर दौलत में बिठाकर देखा—वे बच्चे भी राजा की तरह कहेंगे, "ऐसे सड़े-सड़े,

गरम घर में हम नहीं रह सकते !" ये अमीर लोग किसी और ही किस्म के इंसान होते हैं।

उस दिन वेटे से धक्का न लगा होता, तो नारायणी श्यामा दी का अनुरोध जरूर रखती। उनके लिए उसी दम कोई इंतजाम कर देती। उस आदमी के प्रति कभी कितनी भी परेशानी में पड़ी हो, आज उसके प्रति वेदर्द नहीं हो पाती। लेकिन यही सव सोचकर, नारायणी ने मामा जी के लिए कुछ नहीं किया।

इधर कुछ दिनों से वह पेंटिंग वगैरह में मन लगाने की कोशिश कर रही है। शुरू-शुरु में किसी के भी कानों में इस की भनक नहीं पड़ी। नारायणी खुद भी चित्र वनाने लगी। दोपहर के वक्त एक वूढ़ा पेंटिंग मास्टर उसे पेंटिंग सिखाने आया करता था। शुरू-शुरू में नारायणी का पेंटिंग की तरफ कोई खास झुकाव भी नहीं था, वस, वक्त गुजारने के अलावा और कोई खास वात नहीं थी।

लेकिन इन दिनों चित्र आंकने के वजाय देशी-विदेशी कलाकारों के चित्र खरीदने और उन पर आलोचनाएं करने की झोंक काफी वढ़ गयी थी। इस मामले में वही वूढ़े टीचर ही उसकी मदद वगैरह कर दिया करते। उसे उन चित्रों का मतलव भी समझाते। उनमें से अधिकांश चित्र नारायणी को पसंद नहीं आते थे। उसे लगता आजकल के कलाकार भीतरी मन पर वहुत कम ध्यान देते हैं। जवकि पुराने जमाने के प्रायः सभी देशी-विदेशी कलाकार एकमात्र इंसान के भीतर छिपे हुए मन को उजागर करते थे।

ऐसी एक आभिजात्य महिला का कला-प्रेम छिपा नहीं रह सकता। तीन-चार दिन पहले विपुलानंद ने ही यह खवर डट्टा के कानों में फूंक दी और डट्टा दंपति ने पूरे जोशो-खरोश से दल-वल जुटाकर उसके घर पर धावा वोल दिया। विस्मय के ज्वार में वहते हुए मानो उन्होंने नारायणी के अंदर छिपे किसी सच्चे संवेदन-शील कलाकार का आविष्कार किया। नारायणी के संगृहीत चित्र देखकर वे अभिभूत हो उठे।

उन्होंने अपनी एक निजी आर्ट-गैलरी वनाने की योजना वना डाली। लोगों के सहज और सच्चे आग्रह पर लेडी यानी नारायणी को वहां का सर्वेसर्वा वनना पड़ा। शुरू-शुरू में नारायणी ने इस आर्ट-गैलरी के पीछे कम वक्त वरवाद नहीं किया। उसने सचमुच कोशिश की कि उसे पेंटिंग की समझ आ जाए। वह सचमुच कला की खूवियां पहचान सके। उसने काफी कितावें भी पढ़ डालीं। वह तो उस आर्ट-गैलरी को किसी विशाल प्रतिष्ठान का रूप दे डालने के सपने देखने लगी थी।

लेकिन अमीरों का जोश ठंडा होने में भी ज्यादा वक्त नहीं लगता। वाकी लोगों का उत्साह अव तेजी से घटने लगा। अंत में 'आर्ट-गैलरी' वस, नाममात्र को रह गयी। उसके वारे में सारी गर्मजोशी ठंडी पड़ गयी। वस, इतना भर हुआ कि आर्ट के मामले में नारायणी की गहरी सूझ-वूझ की ख्याति का झंडा हमेशा-

के लिए गड़ गया। अब आर्ट और कल्चर से संबंधित हर आमंत्रण में उप-
रहने का तकाजा उसके गले पड़ गया है, जिससे जान छुड़ाना मुश्किल हो
है।

उस दिन शाम को श्यामा'दी के यहां से लौटी थी। उसके पांव जरूर डग-
रहे थे, लेकिन वह पूरे होशो-हवास में थी। वह तरह-तरह की शराबों का
का लेकर देख चुकी है, उसके होश हमेशा कायम रहते हैं। लिफ्ट से उतरकर
ने दूसरी मंजिल पर कदम रखा ही था कि खबर मिली, ड्राइंगरूम में कोई
ाकार महोदय तशरीफ लाये हैं। वह आदमी भी अजीब चिपकूवदा था। एपा-
ट्मेंट के बिना लेडी किसी से मुलाकात नहीं करती, यह सुनकर भी वह टलने
ो तैयार नहीं था।

उसने कहा—और किसी से भले मुलाकात न करें, लेकिन उससे जरूर
मिलेंगी! उसे फलां···ने भेजा है। ऐसी सहज-सरल, फिर भी इतनी प्रभावशाली
बातें शायद ही कभी सुनी हों। अपनी बात पूरी करके, उस लड़के को इतने आग्रह
से कागज मुड़ा पैकेट खोलते देखकर, उसे हंसी आने लगी।

अपनी लेडी-सुलभ गरिमा कायम रखते हुए, नारायणी ने मीठे लहजे में पूछा,
"अब चित्र भी दिखायेंगे ?"

"अरे, इसीलिए तो मैं शाम से ही···"

अचानक वह ठिठक गया। उसने सिर उठाकर सीधे-सीधे उसकी तरफ देखा।
शायद उसके मुंह से एक लंबी-सी उसास भी निकली। पैकेट अभी तक खोला
नहीं गया था। उसके हाथ जहां के तहां थम गये। उसने ईषत सकपकायी हुई
मुद्रा में कहा, "ठीक है, आज रहने दीजिए। मैं कल या परसों फिर आऊंगा।
नमस्कार।"

नारायणी कुछ कहे, इससे पहले ही वह तन्नाता हुआ बाहर निकल गया।

ऐसे बेअदब व्यवहार की वजह समझने में उसे ज्यादा वक्त नहीं लगा। उसकी
बातों में उस लड़के को कोई ऐसा संकेत मिला होगा, जिसका वह अभ्यस्त नहीं था।
उसे लेडी साहिबा निहायत सिरफिरी औरत लगी होगी। चित्र देखने-समझने
के लिए जिन आंखों की जरूरत है, कम से कम इस लेडी के पास वैसी आंखें नहीं
हैं। शायद यही सोचकर वह भाग लिया।

कुछ देर के लिए नारायणी का चेहरा लाल हो उठा। अचानक उसने जोर
का ठहाका लगाया। वाकई, इस किस्म का आर्टिस्ट उसने कम ही देखा है। पता
होता कि ऐसी कोई गलतफहमी हो जाएगी, तो वह जबरदस्ती उसे रोककर चित्र
देख लेती। चित्र देखने के बहाने कम से कम कोई तमाशा ही देखती।

अगले दिन सुबह साढ़े दस बजे विनायक डेबर पुनः तशरीफ ले आये।
कल वह जिस बदतमीजी से चित्रों का पैकेट लेकर चल दिया था, कोई

गरम घर में हम नहीं रह सकते !" ये अमीर लोग किसी और ही किस्म के इंसान होते हैं।

उस दिन बेटे से धक्का न लगा होता, तो नारायणी श्यामा'दी का अनुरोध जरूर रखती। उनके लिए उसी दम कोई इंतजाम कर देती। उस आदमी के प्रति कभी कितनी भी परेशानी में पड़ी हो, आज उसके प्रति वेदर्द नहीं हो पाती। लेकिन यही सब सोचकर, नारायणी ने मामा जी के लिए कुछ नहीं किया।

इधर कुछ दिनों से वह पेंटिंग वगैरह में मन लगाने की कोशिश कर रही है। शुरू-शुरू में किसी के भी कानों में इसकी भनक नहीं पड़ी। नारायणी खुद भी चित्र बनाने लगी। दोपहर के वक्त एक बूढ़ा पेंटिंग मास्टर उसे पेंटिंग सिखाने आया करता था। शुरू-शुरू में नारायणी का पेंटिंग की तरफ कोई खास झुकाव भी नहीं था, बस, वक्त गुजारने के अलावा और कोई खास बात नहीं थी।

लेकिन इन दिनों चित्र आंकने के बजाय देशी-विदेशी कलाकारों के चित्र खरीदने और उन पर आलोचनाएं करने की झोंक काफी बढ़ गयी थी। इस मामले में वही बूढ़े टीचर ही उसकी मदद वगैरह कर दिया करते। उसे उन चित्रों का मतलब भी समझाते। उनमें से अधिकांश चित्र नारायणी को पसंद नहीं आते थे। उसे लगता आजकल के कलाकार भीतरी मन पर बहुत कम ध्यान देते हैं। जबकि पुराने जमाने के प्रायः सभी देशी-विदेशी कलाकार एकमात्र इंसान के भीतर छिपे हुए मन को उजागर करते थे।

ऐसी एक आभिजात्य महिला का कला-प्रेम छिपा नहीं रह सकता। तीन-चार दिन पहले विपुलानंद ने ही यह खबर डट्टा के कानों में फूंक दी और डट्टा दंपति ने पूरे जोशो-खरोश से दल-बल जुटाकर उसके घर पर धावा बोल दिया। विस्मय के ज्वार में बहते हुए मानो उन्होंने नारायणी के अंदर छिपे किसी सच्चे संवेदन-शील कलाकार का आविष्कार किया। नारायणी के संगृहीत चित्र देखकर वे अभिभूत हो उठे।

उन्होंने अपनी एक निजी आर्ट-गैलरी बनाने की योजना बना डाली। लोगों के सहज और सच्चे आग्रह पर लेडी यानी नारायणी को वहां का सर्वेसर्वा बनना पड़ा। शुरू-शुरू में नारायणी ने इस आर्ट-गैलरी के पीछे कम वक्त बरबाद नहीं किया। उसने सचमुच कोशिश की कि उसे पेंटिंग की समझ आ जाए। वह सचमुच कला की खूबियां पहचान सके। उसने काफी किताबें भी पढ़ डालीं। वह तो उस आर्ट-गैलरी को किसी विशाल प्रतिष्ठान का रूप दे डालने के सपने देखने लगी थी।

लेकिन अमीरों का जोश ठंडा होने में भी ज्यादा वक्त नहीं लगता। बाकी लोगों का उत्साह अब तेजी से घटने लगा। अंत में 'आर्ट-गैलरी' बस, नाममात्र को रह गयी। उसके बारे में सारी गर्मजोशी ठंडी पड़ गयी। बस, इतना भर हुआ कि आर्ट के मामले में नारायणी की गहरी सूझ-बूझ की ख्याति का झंडा हमेशा-

शा के लिए गड़ गया। अब आर्ट और कल्चर से संबंधित हर आमत्रण में उप-
स्थित रहने का तकाजा उसके गले पड़ गया है, जिससे जान छुड़ाना मुश्किल हो
गया है।

उस दिन शाम को श्यामा दी के यहां से लौटी थी। उसके पाव जरूर डग-
मगा रहे थे, लेकिन वह पूरे होशो-हवास में थी। वह तरह-तरह की शराबों का
जायका लेकर देख चुकी है, उसके होश हमेशा कायम रहते हैं। लिफ्ट से उतरकर
उसने दूसरी मंजिल पर कदम रखा ही था कि खबर मिली, ड्राइंगरूम में कोई
कलाकार महोदय तशरीफ लाये हैं। यह आदमी भी अजीब चिपकूबंदा था। एपा-
इंटमेंट के बिना लेडी किसी से मुलाकात नहीं करती, यह सुनकर भी वह टलने
को तैयार नहीं था।

उसने कहा—और किसी से भले मुलाकात न करें, लेकिन उससे जरूर
मिलेंगी! उसे फला···ने भेजा है। ऐसी सहज-सरल, फिर भी इतनी प्रभावशाली
बातें शायद ही कभी सुनी हों। अपनी बात पूरी करके, उस लड़के को इतने आग्रह
से कागज मुड़ा पैकेट खोलते देखकर, उसे हंसी आने लगी।

अपनी लेडी-सुलभ गरिमा कायम रखते हुए, नारायणी ने मीठे लहजे में पूछा,
"अब चित्र भी दिखायेंगे?"

"अरे, इसीलिए तो मैं शाम से ही···"

अचानक वह ठिठक गया। उसने सिर उठाकर सीधे-सीधे उसकी तरफ देखा।
शायद उसके मुंह से एक लंबी-सी उसास भी निकली। पैकेट अभी तक खोला
नहीं गया था। उसके हाथ जहां के तहां थम गये। उसने ईषत सकपकायी हुई
मुद्रा में कहा, "ठीक है, आज रहने दीजिए। मैं कल या परसों फिर आऊंगा।
नमस्कार।"

नारायणी कुछ कहे, इससे पहले ही वह तन्नाता हुआ बाहर निकल गया।
ऐसे बेअदब व्यवहार की वजह समझने में उसे ज्यादा वक्त नहीं लगा। उसकी
बातों में उस लड़के को कोई ऐसा संकेत मिला होगा, जिसका वह अभ्यस्त नहीं था।
उसे लेडी साहिबा निहायत सिरफिरी औरत लगी होगी। चित्र देखने-समझने
के लिए जिन आंखों की जरूरत है, कम से कम इस लेडी के पास वैसी आंखें नहीं
हैं। शायद यही सोचकर वह भाग लिया।

कुछ देर के लिए नारायणी का चेहरा लाल हो उठा। अचानक उसने जोर
का ठहाका लगाया। वाकई, इस किस्म का आर्टिस्ट उसने कम ही देखा है। पता
होता कि ऐसी कोई गलतफहमी हो जाएगी, तो वह जबरदस्ती उसे रोककर चित्र
देख लेती। चित्र देखने के बहाने कम से कम कोई तमाशा ही देखती।

अगले दिन सुबह साढ़े दस बजे विनायक ड्रेवर पुनः तशरीफ ले आये।
कल वह जिस बदतमीजी से चित्रों का पैकेट लेकर चल दिया था, कोई भ

औरत इसे अपनी वेइज्जती समझ लेती और 'सर' या लेडी लोग तो ऐसे जरूरत-मंद सहायता प्रार्थियों का मुंह भी नहीं देखते। लेकिन नारायणी को जरा भी गुस्सा नहीं आया। उस लड़के को अगर जरा-सी भी अक्ल होती, तो वह उस तरह उठ-कर चला नहीं जाता और एक बार जाने के वाद दुवारा लौटकर भी नहीं आता। कलवाला मासूम हंसमुख चेहरा और एक जोड़ी वड़ी-वड़ी खूबसूरत आंखें याद आते ही उसे हंसी आने लगी।

शिल्पपति दफ्तर! वेटा स्कूल! यानी उसे फुरसत ही फुरसत है! उसने उसे अंदर भेज देने को कहा।

विनायक डेवर कमरे में दाखिल हुआ। कलवाली मुद्रा, वही कपड़े, हाथ में वही पैकेट! चेहरे पर वही मासूम हंसी! पैकेट समेत उसने अपना हाथ माथे से लगाकर नमस्कार किया।

कहा, "कल आपको चित्र नहीं दिखा पाया, इसलिए रात को ठीक से सो भी नहीं सका। इसीलिए आज फिर दौड़ा चला आया।"

नारायणी को वेहद लोभ हो आया, वह भी उसी की तरह सीधे-सपाट लहजे में पूछे, "कल चित्र आखिर दिखाये क्यों नहीं?" लेडी वागची को ऐसा हंसी-मजाक शोभा नहीं देता। अतः वह हंसी दवाने की कोशिश में गंभीर हो आयी।

"अव दिखायेंगे?"

"हां! अगर कोई असुविधा न हो, तो जरा देखिए न! मुझे पक्का यकीन है, ये चित्र आपको पसंद आयेंगे।"

लड़के ने वड़े प्यार से पैकेट खोला। हर चित्र वड़े-वड़े कार्ड-वोर्ड में वड़े ऐहतियात से माउंट किया हुआ। उस पर महीन कागज का वर्क। एक-एक करके सारे चित्र वह उसके सामने सजाता गया।

नारायणी को वे चित्र घिसी-पिटी शैली से अलग वेहद मौलिक लगे। आंखें एकवारगी चौंधिया जाएं! रेखाएं काफी कटी-फटी, लेकिन गौर से देखते ही वे चित्र कहीं से भी कटे-फटे नहीं लगते। रेखाओं का संयोजन ही अनोखा था कि वेहद खूबसूरत लग रहा था। लेकिन असली चीज, जो आंखों को चुंवक की तरह खींचती थी, वह थी चित्रों की जीवंतता। जितना-जितना देखो, वह चित्र उतना ही सजीव और स्पष्ट होता जा रहा था।

...अगल-वगल दो पेड़। तनों और शाखों के छिलके तक उखड़े हुए। पत्तियां विहीन सूनी शाखें। ठूंठ पेड़। मानो कोई कंकाल खड़ा हो। दूसरे पेड़ पर अटूट हरियाली, फल-फूलों से झुका हुआ। थोड़ी देर गौर से देखते रहने पर, लगता है वह ठूंठ-कंकाल पेड़ मानो रिक्त, वंचित जिंदगी का कंकाल हो, उसकी खोह और कोटरें मानो शत-शत आंखें हों। तीखी, गुस्से भरी आंखें। उन आंखों

सर्वग्रासी भूख की चिनगारियां छूट रही हों। सब कुछ जलाकर खाक कर देने-वाली निगाहों से फल-फूलों से भरे सार्थक और हरे-भरे जीवन को घूर रहा हो। चित्र के बिलकुल नीचे लिखा था—तुम और मैं !

…सूखे रेगिस्तान में चलता हुआ एक आदमी। टूटा थका-हारा चेहरा। जितनी दूर तक निगाहें जाती हैं—दिगंतव्यापी झुलसा हुआ मरु-सागर। रेत पर चलता हुआ राहगीर, मरु-सागर के आखिरी छोर पर पहुंचने को बेचैन। उसकी आंखों में चमकती हुई उम्मीद के अलावा, वहां तक पहुंचने की कहीं लेशमात्र भी दिलासा नहीं। उसकी आंखों में हरियाली के सपने। हरे-भरे जीवन के सपने। नीचे लिखा है—मरुतोरण !

…कोई इनसान नींद में खोये-खोये मशीनी युग के ख्वाब देख रहा है। उसी चित्र को जरा दूर से देखो तो अद्भुत तरीके से एक-दूसरे से जुड़ा हुआ। सब मिल-कर एक आकार लेता हुआ। देर तक निगाहें गड़ाकर देखो, तो कोई बृहदतम यंत्र-मानव नजर आता है। चित्र के नीचे लिखा हुआ है—आने वाले दिनों में हम।

हर चित्र में कुछ न कुछ अनोखापन ! नारायणी उन चित्रों को देखती हुई, अंदर ही अंदर सिहर उठी। आजकल की किसी पेंटिंग को देखकर कम से कम इस तरह की प्रतिक्रिया नहीं उभरती।

चित्र दिखाने के बाद, उसकी राय जानने के लिए विनायक डेवर ने उदग्रीव आग्रह से उसकी तरफ देखा। मानो लेडी बागची के मतव्य पर ही उसके जीवन का भला-बुरा निर्भर करता हो।

उसका यह उत्कंठित चेहरा देखकर नारायणी आत्मस्थ हो उठी, वरना चित्र देखते हुए वह किसी सुदूर में भटक गयी थी।…इतने दिनों बाद उसके यहां किसी असली आर्टिस्ट का पदार्पण हुआ है। नारायणी मन ही मन पुलक उठी। आर्टिस्ट का बचपना और अधीर आग्रहभरा चेहरा देखकर उसके प्रति ममता भी हुई।

विनायक डेवर के सब्र का बांध टूट गया, "देख लिया ?"

उसकी आंखों में झांकते हुए नारायणी ने सिर हिलाया—"हां, देख लिया।"

"कुछ कहेंगी नहीं ?"

"कहने में थोड़ा वक्त लगेगा। एक बार फिर से इन्हें अच्छी तरह देखना होगा। आप ये चित्र रख जाइए।"

बड़ी-बड़ी आंखों में ऐसी हताशा भी मानो वह पहली बार देख रही हो आशा और उत्साह मानो एक फूंक में बुझा दिया गया हो। थोड़ी देर वह उसकी तरफ बेहद करुण निगाहों से देखता रहा, उसके बाद उसने झुककर चित्र समेट लिये और पैकेट बनाने लगा।

नारायणी फिर अचकचा गयी।

"क्यों ? क्या हुआ ?"

आर्टिस्ट ने बुझी हुई आवाज में जवाब दिया "बात यह है कि ये सब चित्र अगर अच्छे लगने को होते तो, एक नजर में ही अच्छे लगते। पांच बार देखकर, कोशिश-तदबीर करके इस किस्म के चित्र जबरदस्ती अच्छे नहीं लग सकते।"

नारायणी सोच रही थी, सिर्फ इस किस्म के चित्र ही नहीं, इस किस्म के इंसान भी पहली नजर में ही अच्छे लगने लगते हैं। उसने मन ही मन यह भी महसूस किया कि इसी किस्म के इंसान के सामने लेडी बागची के मुखौटे से निकलकर अनायास ही सहज हुआ जा सकता है।

उसने कहा, "चित्रों के बारे में मेरा ज्ञान बहुत कम है, इस वजह से भी तो इन्हें समझने में वक्त लग सकता है।"

पैकेट का फीता बांधते हुए उसने जवाब दिया, "नहीं, यह बात गलत है। इस किस्म के चित्र पसंद आना-न आना बहुत कुछ मेंटल मेकअप यानी मन:स्थिति पर भी निर्भर करता है।"

आर्टिस्ट का चेहरा बुझ आया था। वह पैकेट बांधकर जाने ही वाला था कि नारायणी ने घंटी बजायी। साथ ही साथ गब्बू हाजिर।

"यह पैकेट सावधानी से ले जाओ और मेरे कमरे में रख दो।"

आर्टिस्ट की विमूढ़ आंखों के सामने ही, गब्बू पैकेट उठाकर हवा हो गया। नारायणी को फिर हंसी आने लगी। लड़के की निगाहें दरवाजे तक गब्बू का पीछा करती रहीं, उसके बाद उसकी तरफ मुड़ीं।

"चाय पियेंगे ?"

"चाय ? ··वो चाय···मेरा मतलब है वे चित्र सचमुच आपके पास रहेंगे?"

"हां ! चित्र मुझे बेहद पसंद हैं। इसीलिए उन्हें और अच्छी तरह देखना चाहती हूं। आप कल या परसों एक बार फिर तशरीफ लाइए।"

सिर्फ कल या परसों ही नहीं, अब वह प्राय: रोज ही आता है। कभी-कभी दिन-भर में दो बार भी आ जाता है। लेडी बागची ने, गब्बू के अलावा, शायद और किसी को कभी इतना प्रश्रय नहीं दिया। विनायक डेबर नयी आशा और उत्साह से भर उठा। मानो उसका शिल्पी जीवन सार्थक हो गया।

नारायणी भी नये उत्साह से भर उठी। उसे मानो किसी आविष्कार का सुख मिला हो। यह आर्टिस्ट उसका आविष्कार ही तो है, जिसे इस दुनियावी आकाश में एक दुर्लभ नक्षत्र की तरह प्रतिष्ठित करने की मानो उसे धुन चढ़ गयी हो। उसने विपुलानंद को भी वे चित्र कई-कई कोण से घुमा-फिराकर दिखाये; बड़े उत्साह से उन चित्रों का मतलब भी समझाती रही। अतः विपुलानंद को भी उन चित्रों को ध्यान से देखना ही पड़ा; उनकी तारीफ भी करनी पड़ी। उसे स्वीकार करना पड़ा कि चित्र वाकई अच्छे हैं।

नारायणी को आर्ट-गैलरी सजाने की मानो नये सिरे से उत्साह और प्रेरणा मिली। इतने दिनों विनायक डेवर जैसा कलाकार नहीं मिला था, इसीलिए उस आर्ट-गैलरी में प्राण नहीं डाल सकी थीं। अब वह निस्सदेह उस आर्ट-गैलरी में प्राणों का ज्वार बहा देगी।

बीवी का मन रखने के लिए ही विपुलानंद को उस आर्टिस्ट से परिचय भी करना पड़ा। वैसे उसे भी वह आदमी बुरा नहीं लगा। उसकी नज़रों में वह जीनियस न सही, प्रतिभाशील ज़रूर लगा था। लेकिन परिचय के मामले में उसने शिल्पपति होने की गरिमा और दूरत्व कायम रखा था। अपने पैसों की बदौलत ऐसी सैकड़ों प्रतिभाएं उसने अपने कारोबार की खूंटी से बांध रखी है। ऐसी मामूली-मामूली बातों पर बीवी की तरह उत्साह दिखाना उसे शोभा नहीं देता।

लेकिन नारायणी के उत्साह की तहों में शायद कोई गूढ रहस्य भी है, जिसकी उसे खबर भी नहीं थी। असल में इस आर्टिस्ट ने उसके मन में विचित्र-विचित्र कल्पनाएं भर दी हैं। उसके चित्र मानो कल्पनाओं का खजाना हो। आजकल वह बेहद अजीबोगरीब कल्पनाएं किया करती है।···वह कल्पना करती है, उसे अपनी खोयी हुई जिंदगी मानो दुबारा वापस मिल गयी हो। उस जिंदगी में भी उसकी भरी-पूरी गृहस्थी है, पति-पुत्र हैं! गृहस्थी में कहीं कोई अभाव नहीं, लेकिन दौलत का पहाड़ भी नहीं है! वहां के ज़र्रे-ज़र्रे में उसका मन···उसका प्यार समाया हुआ है। पति कामकाज की थकान के बावजूद ऐसा दरियादिल कि दुनिया के तमाम लोगों के लिए उसके मन में प्यार-ममता है। वह दुःख समझता है, दूसरों का दुःख महसूस भी करता है। बेटा भी साधारण बच्चों की तरह हंसना-रोना जानता है।

वह अचरजभरी निगाहों से उस दुनिया को, बस, देखती रहती है। उसका तरसता हुआ मन उस गृहस्थी को आवाजें दिये जाता है। हां, उसे यह देखकर बेहद हैरानी होती है कि उसकी उस काल्पनिक गृहस्थी का स्वामी भी वहां विपुलानंद है। नहीं, उनकी जगह कोई और चेहरा नहीं उभरता। उस जगह वह किसी और की कल्पना भी नहीं कर सकती। उसकी उस कल्पना की दुनिया में बेटे की जगह भी राजा का चेहरा ही उभरता है।

नारायणी इससे ज्यादा कुछ सोच भी नहीं पाती। सारा कुछ, कैसा गड़ब हो जाता है!

छह

वैसे, नारायणी की जिंदगी में कल्पना की दुनिया है, शिल्प और आर्ट-गैलरी की व्यस्तता है, रीना बागची यानी लेडी बागची का मुखौटा है; पार्टी और मीटिंग के आमंत्रण हैं, डट्टा की फिल्म-योजना में बेशुमार रुपये और उत्साह जुटाने की जिम्मेदारी है—लेकिन इन सबके बावजूद वह अपने छह वर्षीय बेटे के अंदर पल-पल बढ़ते अहंकार की तरफ से, पल भर को भी अपनी निगाहें नहीं फेर पाती। जाने किस अज्ञात भय से उसकी छाती रह-रहकर कांप उठती है। कभी-कभी उसे यह भी लगता है कि मन में इस तरह के ख्याल को प्रश्रय देना या उस पर इतनी कड़ी निगाह रखना, शायद गलत है। शायद वह अपने बेटे का नुकसान कर रही है।

लेकिन फिर भी जाने क्यों उसके बारे में सोच-सोचकर परेशान होने, उसकी तरफ तीखी-तीखी निगाहों से देखने का उसे रोग हो गया है। बेटे की बातचीत, खेल-कूद, उठना-बैठना, चाल-चलन, हाव-भाव—कुछ भी उसकी नजरों से छिपा नहीं रहता। हालांकि वह जानबूझ कर नहीं देखती। आर्टिस्ट और आर्ट-गैलरी में वह ज्यादा से ज्यादा वक्त देने लगी है; और ज्यादा शराब पीने लगी है; हंसी-खुशी के तेज ज्वार में एकबारगी वह जाना चाहती है, ताकि बेटे की तरफ उसकी निगाह ही न पड़े। लेकिन जब वह देखे बिना नहीं रह पाती, तो फिर मुड़-मुड़कर देखने लगती है। उसे जितना-जितना देखती है, वह अंदर ही अंदर उतनी ही बेजान होती जा रही है। आर्टिस्ट के उस चित्र की तरह मानो उसका बेटा भी किसी विराट मरु-नीरस जिंदगी की परिक्रमा के नशे में डूब जाने की तैयारियां कर रहा है।

इतनी छोटी-सी उम्र में वह समझ चुका है कि नौकर-चाकरों में कौन-कौन उसे कितने अदब से सलाम करते हैं। उसके अनुसार ही वह अपनी मेहरबानी या नाराजगी जाहिर करता है। पिता के लंबे-चौड़े कारोबार के ढेर सारे मॉडल उसके हाथों के खिलौने हैं। उन मॉडलों के सहारे वह भी एक शिल्प-जगत-संचालन का खेल खेलता है। उस जगत का विधाता भी वह स्वयं है। मोटे-मोटे स्लिप-पैड के सफेद-सफेद कागजों पर, वह अपने पिता की तरह ही दस्तखत मारकर गब्बू को पकड़ाता जाता है।

नारायणी बस, घूर-घूरकर देखा करती है। अक्सर वह सब कुछ खामोशी से झेल जाने की कोशिश करती है, लेकिन कभी-कभी उससे अनायास ही पूछ बैठती है, "यह क्या हो रहा है?"

"चेक पर दस्तखत कर रहा हूं।"

नारायणी की निगाहें फिर उसके चेहरे पर गड़ जाती हैं। चेक के जोर पर समूची दुनिया को नचाया जा सकता है, यह भी वह जान गया है।

"चेक तू देगा किसे ?"

"लोगों को।"

"क्यों ?"

"ताकि वे लोग मेरे हुक्म मुताबिक काम करें।"

लोग उसके हुक्म मुताबिक काम करेंगे—नारायणी को हंसना चाहिए। लेकिन वह हंस नहीं पाती। हां, उसके बापी उसकी बातें सुनकर तेज-तेज ठहाके लगाते हैं। मस्ती खुशी और आनंद के ठहाके! कहते हैं, "बड़ा होकर वह सचमुच शानदार आदमी बनेगा।"

नारायणी की जुबान पर कोई तीखा-सा जवाब आता है, "हां, वह शानदार आदमी बनेगा, बिलकुल दैत्य जैसा शानदार। विशाल। उसका सिर बिलकुल आकाश से जा लगेगा।" "लेकिन वह जबरन अपने को रोक लेती है।

उसका मॉडलों का खेल देखकर भी विपुलानंद हंसता रहता है। नारायणी उसकी खुश-खुश हंसी को बस, एकटक देखा करती है, लेकिन खुद वह चाहकर भी नहीं हंस पाती। बेटा खेल-खेल में कभी दफ्तर जमा रहा है, कभी कारखाना। अपने काल्पनिक कर्मचारियों को धीर-गंभीर मुद्रा में निर्देश देता है, सब काम उसके हुक्म मुताबिक पूरे होने चाहिए! जिस पर नाराज होता है, बस, एक दस्तखत पर उसे बरखास्त। कई दिन पिता के साथ जा-जाकर वह दफ्तर का काम-काज देख आया है। अतः इस शिशु का खेल-खेल में खेला गया यह खेल भी कोई झूठ कहकर उड़ा नहीं सकता। कोई उसे अनाड़ी या नादान भी नहीं कह सकता। कम से कम नारायणी ऐसा नहीं सोच सकती।

बेटे का पिता हंसता है, प्रश्रय देता है, बढ़ावा भी देता है!

उस दिन राजा एक बड़े-से हवाई जहाज से खेल रहा था। खुद ही पायलट बनकर प्लेन चला रहा था। अचानक उसने घोषणा की, "बापी, मैं भी ऐरोप्लेन का कारखाना खोलूंगा।"

बापी ने फौरन सह दे डाली, "बहुत अच्छे!"

उसी पल नारायणी की आंखों में आर्टिस्ट का वह चित्र तैर गया—'आने वाले दिनों में हम' जिसमें मशीनी युग के सपनों ने मशीन-मानव का रूप लिया था।

नारायणी ने तिलमिलाहट दबाते हुए मजाक के लहजे में पूछा, "सिर्फ ऐरोप्लेन ही ? और कोई कारखाना नहीं खोलेगा ?"

बेटे ने छूटते ही जवाब दिया, "पहले ऐरोप्लेन का कारखाना तो खोल लूं, उसके बाद फिर कुछ और सोचूंगा!"

"हुहः! ऐरोप्लेन बनायेगा! अभी तो तेरे बापी के पास भी ऐसा कारखाना

नहीं है।"

विपुलानंद की आंखों में निषेध झलक आया। उसका आशय समझकर भी नारायणी वेवकूफों की तरह देखती रही। विपुलानंद शायद यह समझाना चाहता था कि छोटे वच्चों के आत्म-विश्वास को ठेस नहीं लगानी चाहिए। लेकिन इसके जवाव में वेटे की वात सुनकर पिता ने खुद ही जोर का ठहाका लगाया। वेटे का आत्म-विश्वास विलकुल फौलाद जैसा पक्का सावित हुआ।

राजा ने जवाव दिया, "वापी के पास नहीं है, तो क्या हुआ ? मेरे पास होगा। मैं वापी से भी ज्यादा वड़े-वड़े···ढेर सारे कारखाने खोलूंगा।"

नारायणी अचानक चौंक क्यों उठी ? ऐसा क्या देख लिया कि मन ही मन सिहर उठी ? हां, उसे वे दिन याद आ गये, जव वह अपने ससुर को विधाता समझती थी। जव वह अपने ससुर को आन-वान-शानवाला इंसान समझती थी। जव उसने विपुलानंद से कहा था, "तुम न···दिनोंदिन ठीक अपने पिता की तरह होते जा रहे हो।" उस दिन उसकी वातों पर इस आदमी को झटका लगा था, क्योंकि उस वक्त भी वह अपने को पिता से ज्यादा ताकतवर समझता था। उसने तमककर कहा था, "डैडी की रफ्तार से चला, तो मैं जहां का तहां अटका रहूंगा।"

आज उसकी वातें सच सावित हुई हैं। सचमुच वह अपने पिता से ज्यादा ताकतवर निकला। अव उसका वेटा भी वही वात दुहरा रहा है। नारायणी की आंखों के आगे से अपने छह वर्षीय वेटे का चेहरा मिटता जा रहा है ! ···वेटे के चेहरे में हूवहू वेटे के पिता का चेहरा नजर आने लगा। उसके वाद, उसके देखते ही देखते वेटा अपने पिता से भी आगे निकल गया है···! विराट···विराटतर··· विराटतम् होती जा रही है वह मूरत !

नारायणी मारे घवड़ाहट के वहां से भाग खड़ी हुई।

कहीं भाग जाने की वेचैनी में उसने वाहर की तरफ झांककर देखा। आर्ट-गैलरी को लेकर वह घंटों-घंटों विनायक देवर से सलाह-मशविरे करती है। शहर से वाहर की पार्टियों और सभा-अनुष्ठानों में शामिल होती है। दो-तीन दिन वाद लौट भी आती है। डट्टा के युगांतकारी फिल्म-निर्माण का काम भी शुरू हो गया है। नारायणी जितनी तेजी से लेडी वागची वनती जा रही थी, मिसेज डाटा को डर था, नायिका का रोल शायद अव वेदखल हो जाए। जुवान से उन्होंने चाहे जितना आग्रह किया हो, नायिका का रोल अगर उन्हें न दिया जाता तो उनके सारे उत्साह पर पाला मार जाता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। नायिका का रोल वही कर रही हैं। लेकिन नारायणी वेहद उत्साहित हो उठी है। शूटिंग अगर कलकत्ते से वाहर हो, तो और ज्यादा खुश होती है। शुरू में पांच-छह दिनों के लिए वह टीम के साथ वाहर भी गयी। वह ऐक्टिंग भले ही न करे, लेकिन उसका साथ सभी लोग चाहते हैं।

श्यामा'दी बनावटी गुस्से से आंखें तरेरकर कहती, "तेरे राग-रंग दिनोदिन बढ़ते जा रहे हैं ! अब फिर कोई रंगरूट तो नहीं आ धमका ?"

श्यामा'दी के नये रंगरूट का मतलब है, भरी जवानी के दिनों में फिर कोई नया साथी, जो जिंदगी में शामिल होकर उसे बेचैन कर गया हो।

अगर ठीक-ठीक गौर किया जाए, तो विपुलानंद भी आजकल बीवी को लेकर कभी-कभी परेशान नजर आने लगा है। कभी-कभी उसकी बीवी गाड़ी से उतरकर, सही-सही चाल में सीढ़ी से ऊपर तक नहीं चढ़ पाती। लिफ्टमैन अचरज से मुंह बाये देखता रहता है। शायद उसे मन ही मन हैरानी भी होती है कि मेमसाहब अचानक लिफ्ट से क्यों नाराज हो गयी। आधुनिक सौजन्यतावश विपुलानंद उसे सहारा देता है। उसकी ऊटपटांग बातें सुनकर, कभी-कभी तो उसे झटका लगता है कि वह जिस परिवेश में थी, वहां से निकलकर अचानक इस विपुल ऐश्वर्य की बाढ़ में आ पड़ने की वजह से ही शायद उसका संतुलन बिगड़ गया है। कभी-कभी उसे रीता से छिपकर, उसके बारे में किसी अच्छे डॉक्टर से भी सलाह करने का ख्याल आया है, क्योंकि आजकल अक्सर उसके तौर-तरीके और राग-रंग में गड़बड़ी नजर आने लगी है।

लेकिन उसके पास इतनी फुरसत नहीं कि सिर्फ इसी बात को लेकर चिंता-फिक्र में पड़े। कारोबार के नये-नये विकास के साथ-साथ, दो पुरानी शाखाएं बंद करने की समस्या पर भी काफी सोच-विचार की जरूरत है। वैसे सोच-विचार तो सभी कर रहे हैं, लेकिन सर्वाधिनायक का सोच-विचार और बाकी लोगों के सोच-विचार में जमीन-आसमान का फर्क होता है न ! पुरानी दोनों शाखाओं पर जितना खर्च पड़ रहा है, नफा उतना नहीं होता।

बेटे का जन्मदिन !

बागची प्रासाद में जश्न ! अभ्यागतों से पूरी छत ठसाठस भरी हुई। छत के ऊपर स्विमिंग-पूल यकीनन दर्शनीय था। हां, बिलकुल निश्चित दिन स्विमिंग-पूल चालू करना सरासर संभव हुआ है। एक तरफ से क्रमशः गहरी ढलान ! दूसरी तरफ बिलकुल नीची जमीन ! पानी भर जाने के बाद, उस तरफ दो-दो आदमियों के कद जितना गहरा पानी ! जिसकी जितनी तबीयत हो, गहरे उतर जाओ, डर की कोई बात नहीं !

सिर्फ बच्चे ही नहीं, औरत-मर्द सभी हो-हुल्लड़ मचाते हुए पानी में उतरे। विपुलानंद को भी खींच-खांचकर पानी में उतारा गया। उसे तैरना नहीं आता, फिर भी उसे पानी में उतरना पड़ा। खैर, जितने लोग पानी में उतरे हैं, उनमें से बहुत कम ही लोगों को तैरना आता है। लेकिन काफी आरजू-मिन्नत के बावजूद

वे लोग नारायणी को पानी में नहीं उतार पाये। हालांकि उसके शामिल न होने से, औरतों के वजाय मर्दों को ज्यादा अफसोस हुआ। सभी लोगों के मन में लेडी वागची को पानी में देखने का लोभ जाग उठा था। नारायणी खामोश निगाहों से सारा तमाशा देख-देखकर मुस्कराती रही।

किसी ने कहा, "लेडी वागची, आप इतनी डरपोक हैं, पता नहीं था।"

किसीने कहा, "लेडी वागची, सुना है आप पद्मा नदी के तट पर रहती थीं।"

कुछ दिनों इस स्विमिंग-पूल को लेकर काफी हंगामा रहा। एक दिन अखवारों में भी छत के उस स्विमिंग-पूल की तस्वीर प्रकाशित हुई। कुछ दिनों वाद यह खुशी भी हलकी पड़ गयी। वैसे अव भी ढेरों वच्चे आते थे। राजा उन सवका सरदार बना रहता। उसके हुक्म पर, हाथ वांधे खड़े नौकर, पूल में पानी भर देते। स्विमिंग-पूल में सवसे पहले वह उतरता, उसके पीछे-पीछे वाकी वच्चे। नहीं, उससे पहले किसी वच्चे को स्विमिंग-पूल में उतरने की इजाजत नहीं थी। सवसे पहले उतरने को लेकर कभी-कभार वच्चों में छोटा-मोटा झगड़ा भी हो जाता। किसी की एकछत्र तानाशाही वरदाश्त करना, कम से कम वच्चों के लिए कतई आसान नहीं।

नारायणी इस किस्म की खुदगर्जी विलकुल वरदाश्त नहीं कर पाती।

कभी-कभी उसे अपना वेटा ही कसूरवार लगता। वह उसे डांट देती, "हर दिन तू ही सवसे पहले क्यों उतरेगा? सव वच्चे साथ-साथ भी तो उतर सकते हैं!"

"नहीं! मेरे पहले कोई नहीं उतर सकता।"

विपुलानंद को इसमें कोई दोष नजर नहीं आता। वह हंसता है, "आखिर मेरा वेटा है! सवसे ऊपर ···शान से सिर ऊंचा करके रहेगा। यह तो जानी हुई वात है।"

नारायणी जवरन अपने मन की दहशत को उखाड़ फेंकने की कोशिश करती है। हां, उसे वहुत वार लगता है, वेटे के वारे में आलतू-फालतू वातें सोचकर, एकमात्र वही उसका सवसे ज्यादा नुकसान कर रही है।

सप्ताह में पांच दिन तैरना सिखाने के लिए ट्रेनर आता है। वेटे के पिता ने हर तरह के इंतजाम में कहीं कोई त्रुटि नहीं रखी। लेकिन आखिर वह भी तनखाह पाने वाला नौकर ही तो है। मालिक के वेटे को, इतने दिनों में भी, सिर्फ कमर भर यानी अपने घुटने भर पानी से आगे नहीं ले जा पाया। राजा गहरे पानी में जाने से मन ही मन डरता है, लेकिन जाहिर करने के वजाय वह आंखें तरेरकर डांट देता है, "नहीं, और आगे नहीं जाऊंगा।" वह वस, कमर-भर पानी में उछल-कूद मचाता है। उसका दावा है, अव उसे अच्छी तरह तैरना आ गया। सीखने को अव कुछ वाकी नहीं रहा।

''उस दिन ट्रेनर के आने की बात भी नहीं थी। बाकी बच्चे भी नहीं आये
ाम को बाप-बेटे छत पर चले आये। राजा पानी में उतरेगा। उसके साथ-
नौकर-चाकर भी उतरने को तैयार। गहरे पानी में बह जाए या न जाए,
न सुरक्षा का इतजाम तो रखना ही था! लेकिन बेटे का मन हुआ, आज
क पिता भी उतरें।

विपुलानंद सर हिलाकर मना करने को मुड़ा ही था कि नारायणी पर नजर
। नारायणी आ रही थी। विपुलानद ने हलका-सा मजाक करते हुए कहा,
ी! नोट मी! मुझे नही, अपनी मा को उतार!"

बेटे को भी मालूम था, यह बात सिर्फ मजाक में कही गयी है। मां की तरह
रपोक उसने आज तक नही देखा। पानी में उतरने की बात तो दरकिनार, पानी
मे कभी उसने पैर तक नही डाला है।

राजा ने उपेक्षा-भरे लहजे मे मुह बनाया, 'हुंहः!'

नारायणी को जाने क्या खब्त सवार हुई! उसने हसी दबाते हुए, बाप-बेटे की तरफ एक बार भरपूर निगाहों से देखा। उसके बाद नौकर-चाकरों को वहा से चले जाने का इशारा किया। गब्बू को भी भगा दिया। उसके बाद साड़ी को अच्छी तरह कमर में खोंस लिया। धीमी आवाज मे कहा, "चल, देखती हू, कित्ता हौसला है तेरा!"

राजा ऐसा अनोखा खेल मानो जिंदगी में पहली बार देख रहा हो! मा का हाथ पकड़कर बेटा वीर-पुरुष की तरह पानी में उतरा। लेकिन सिर्फ गले-गले तक पानी में जाकर ठिठक गया। नारायणी का कद काफी लबा है, अभी वह कमर भर पानी में थी। अचानक उसने झुककर बेटे को गोद में उठा लिया, धीरे-धीरे गले-गले पानी में उतर गयी। राजा अनजाने में ही मा से कसकर लिपट गया।

"क्यों? डर लग रहा है?"

बेटे ने अविश्वासी आंखों से मां की तरफ देखा और सिर हिलाकर जताया--ना, डर नही लग रहा। उस वक्त भी उसे अंदाज नही था कि ऐसा कुछ भी घट
सकता है, जिससे उसकी आत्ममर्यादा को बट्टा लगे।

इसके बाद ही क्या से क्या हो गया, उस पार खड़ा विपुलानद भी नही समझ
पाया। वह पास वाली बेंच पर बैठा ही था कि अचकचा गया। अनजाने में
उसकी नसें तन गयीं। वह सीधा होकर बैठ गया। नारायणी ने अचानक ब
समेत डुबकी लगायी, जब उसने सिर उठाया, वह और गहरे पानी में थी। ज
कैसे इतनी-सी देर मे उसने बेटे की पकड से अपनी गरदन छुडा ली। उसी त
झटके से उसे कुछ और दूर धकेलकर कहा, "चल, आ, पकड मुझे।"
बेटे के सामने मानो मौत का अंधेरा छाता जा रहा हो। उसकी आखो के

फून आयी थी।

नारायणी भी पानी से बाहर निकल आयी। बेटे से ज्यादा बेटे के बाप की देख-देखकर, उसे मानो हंसी का दौरा पड़ गया। थोड़ा ठहरकर उसने कराते हुए कहा, "महीने भर से तैरना सीख रहा था! हुंह खाक सीख रहा।"

विपुलानंद भी मानो होश में आया। उसने कहा, "लेकिन…कोई हादसा भी हो सकता था…"

साड़ी निचोड़ते हुए नारायणी के हाथ थम गये। उसने उसकी तरफ देखते हुए कहा, "हादसा क्या आसमान से आ टपकता? बाहर तो तुम लोग बड़े तीस-मार खां बने फिरते हो—"

नारायणी अब वहां नहीं रुकी। भीगे कपड़े उसके बदन से बुरी तरह चिपक गये थे। वह सीढ़ियों की तरफ बढ़ गयी।

विपुलानंद उसे देखता रहा। ऐसी अनोखी दृष्टि से शायद उसे पहले कभी नहीं देखा था। जितनी देर तक वह दिखाई देती रही, उसकी मुग्ध निगाहें उसका पीछा करती रहीं। जब वह ओझल हो गयी, तो उसका मन हुआ, वह भी उसके पीछे-पीछे जाकर, उसे देर-देर तक निहारते रहे।

बेटा अब भी बेतरह हांफ रहा था। विपुलानंद ने मुड़कर बेटे की तरफ देखा। बेटा भी स्तब्ध विस्मय से सीढ़ियों की तरफ घूर रहा था। उसे पास खींचकर उसने ममता से झकझोरते हुए कहा, "अब किस बात का डर? अब तो तैरना आ गया न?" उसने नौकर को आवाज दी। वह बेटे का बदन पोंछने में जुट गया।

दिन की रोशनी मंद पड़ती जा रही थी। लेकिन विपुलानंद मानो मन की आंखों से उस नारायणी को मुग्ध भाव से देखे जा रहा था—जो उसके बेटे को लेकर पानी में उतर गयी थी…ऐसा अद्भुत कांड कर डाला! जो अभी-अभी भीगे कपड़ों में सीढ़ियों से नीचे उतर गयी थी।

उस दिन शिल्पपति विपुलानंद बागची को एक बार फिर किसी की जरूरत बेहद शिद्दत से महसूस हुई थी। वह निहायत बेचैनी से आनेवाली रात का इंतजार करने लगा।

नारायणी फुलस्पीड पंखे के नीचे अपने भीगे बाल फैलाये, आराम से बैठी थी। अभी थोड़ी देर पहले विपुलानंद बाहर चला गया। जरूर कहीं कोई एपाइंटमेंट होगा! नारायणी को अक्सर हैरानी होती है, ऐसा अवकाशशून्य फर्ज निभाता कैसे है? लेकिन बाहर जाने से पहले, बिल्कुल अचानक, और बेवजह वह एक बार उसके कमरे में भी आया था। नारायणी मन ही मन हंस दी। जो किसी बात पर अवाक् होना नहीं जानता, उसी की आंखों में घोर वि

की छाया थी। नहीं, सिर्फ घोर विस्मय ही नहीं, उसकी आंखों में और कुछ भी था। मानो वह उसे एक बार भर नजर देखने को ही कमरे में दाखिल हुआ था।

लेकिन थोड़ी ही देर बाद नारायणी का सारा मजा किरकिरा हो गया। वह बेटे के पास जाने की सोच रही थी। इस धक्के के बाद जाने उसका मन-मिजाज कैसा हो! ऐसा डरपोक की दुम है। जाने अभी तक डरा-सहमा तो नहीं बैठा है। लेकिन उठने से पहले ही नौकर ने आकर खबर दी, दफ्तर से चार-पांच लोग उससे मिलने आये हैं। पहले उन्होंने साहब के बारे में पूछताछ की। साहब बाहर चले गये हैं, इसलिए वे मेमसाहब से मिलना चाहते हैं। उन्होंने अपने आने का मकसद नहीं बताया, लेकिन मेमसाहब से मुलाकात किये बिना वे लोग यहां से हिलने को भी तैयार नहीं। उन लोगों का कहना है—मेमसाहब से मिले बिना, वे लोग नहीं टलेंगे।

विपुलानंद का एक ही दफ्तर नहीं है। हर दफ्तर के अफसर-कर्मचारी लेडी बागची को पहचानते हैं। उनके उत्सव-अनुष्ठानों में वह अक्सर जाती रहती है, बहुत बार उनके आवेदन भी सुनती है। नारायणी ने अंदाज लगाया, वे लोग ऐसे ही किसी काम के लिए मिलना चाहते होंगे।

नीचे उतरते ही, तमाम लोगों ने मां-मां कहते हुए, उसे घेर लिया। उन्होंने फरियाद की, उन्हें मुसीबत से बचा ले, फाके के चंगुल से रिहाई दिला दे। उनकी बातचीत का सारा निचोड़ यही था कि अमुक कारोबार की जो शाखा बंद कर दी गई है, वे लोग उसी शाखा के कर्मचारी हैं। अब सब के सब बेकार हो जाएंगे। उनमें से जो विशिष्ट कारीगर थे, उन्हें अन्यान्य शाखाओं में खींच लिया गया है। लेकिन साधारण कर्मचारी मुसीबत में पड़ गये हैं। उन लोगों के लिए कोई इंत-जाम नहीं किया गया। अगर उनकी नौकरी चली गई तो वे कहां जाएंगे, किधर खड़े होंगे। उनकी भी गृहस्थी है, बाल-बच्चे हैं। उनके आगे अंधेरा ही अंधेरा है। इस भयंकर मुसीबत में मां को उनकी रक्षा करनी ही होगी।

बार-बार उनके मुंह से मां-मां का संबोधन सुनकर, नारायणी का मन अंदर ही अंदर जाने कैसा तो हो आया। आज तक उसने अपने बेटे के मुंह से भी एक साथ इतनी मां-मां की पुकार नहीं सुनी। पराये बच्चों के दुख-तकलीफ की बातें सुनकर, उसकी आंखों के आगे अपने बच्चे का चेहरा तैर जाता है।

"इस हालत में आप लोग कितने आदमी हैं?"

उन्होंने बताया, "यही कोई पचास-साठ आदमी होंगे।"

"अच्छा, मैं देखती हूं, क्या कर सकती हूं।"

लेकिन फिर भी वे लोग वहां से नहीं हिले। वे लोग आश्वासन चाहते थे, वचन चाहते थे। उनके सामने और देर तक खड़े होना या उनकी दुखभरी फरि-याद सुनना, नारायणी को बेहद तकलीफदेह लगा। वह उन लोगों को आश्वस्त

उठ खड़ी हुई। नारायणी ने मन ही मन तय किया, वह रात को खुद विपु-
के कमरे में जाएगी। लेकिन उसे जाना नही पडा। वह खुद ही चला
। इतनी देर बाद नारायणी को उसकी निगाहों का मतलब समझ मे आया।
न ही मन विस्मित हो उठी। नही, आज रात वह किसी अनुकंपा या फर्ज
मुखौटा ओढ़े हुए उसके पास नही आया था, उन आंखो में मानो खुद अपने ही
आने की तीखी प्यास जागी है।

विपुलानद बैठ गया। आभिजात्य की गरिमा मे बधे संयम के अभ्यस्त मुखौटे
, एकबारगी उतार फेंकना भी उतना आसान नही था।

उसने हसकर कहा, "आज वाकई तुमने अवाक कर दिया! राजा तो···
च्छा-खासा डर गया था—"

जाने क्यों नारायणी को बेहद अच्छा लगा। वह होठ दबाकर हस पड़ी,
"चलो···चलो! डर तो खैर, तुम भी गये थे।"

"नही, डरा नही था, लेकिन वाकई मैं अवाक रह गया।"

"क्यों ?"

"पता नही।"

नहीं, इस तरह के अनुकूल मौके की नारायणी को आशा भी नही थी। इस
वक्त उसके यू आने, यू बैठने की वजह, उससे बेहतर शायद और कोई नही
जानता। उसकी हसीभरी दृष्टि भी आमत्रण से खाली नही थी।

नारायणी ने ही बात छेड़ी, "अच्छा, हा, एक काम की बात सुनो। तुम लोग
अपने बिजनेस की कोई शाखा बिलकुल बद किये दे रहे हो ?"

शिल्पपति को ऐसे बेमौके कारोबार का प्रसग छेडना कतई पसद नही आया।
फिर भी उसने जवाब दिया, "हा, एक छोटी-सी शाखा बंद कर रहे है; उसकी
जगह एक बहुत बडी यूनिट चालू करेंगे। क्यो ?"

"लेकिन जिन लोगो की नौकरी चली गयी, उनका क्या होगा ?"

"जो लोग काबिल है, उनमें से किसी की भी नौकरी नही जाएगी। क्यों,
बात क्या है ?"

"नही! जिन विचारो की नौकरी चली गयी, उनकी गृहस्थी कैसे चलेगी ?
वे लोग उतने काबिल न सही, लेकिन उनकी भी तो भूख-प्यास है, बाल-बच्चो
की फिक्र है। उन्ही मे से कुछ लोग मुझसे मिलने आये थे—सुना, कुल मिलाकर
ऐसे पचास-साठ लोग है। मुझसे पक्का वादा लेकर, वे लोग निश्चित लौट गये।
अब चाहे जैसे भी हो, तुम उन लोगो का कोई इतजाम कर दो।"

इतजाम करना वैसे कोई परेशानी की बात नही थी, लेकिन उसके पक्के
वादे की खबर सुनकर विपुलानद हैरान रह गया, "तुमने ? तुमने उनसे वादा भी
कर लिया ?"

हां, और कोई दिन होता तो पता नहीं वह कह पाती या नहीं, लेकिन आज उसने जोर देकर ही कहा, "वे लोग जब अपनी दुख-तकलीफ की बातें बता रहे थे, मुझे तुम्हारे स्विमिंग-पूल की याद आ रही थी। तुम जानते हो, कितने लाख रुपये खर्च हो गये हैं। उन लोगों की जिंदगी की चाह, राजा के तैरना सीखने की चाह से छोटी तो नहीं ! मुझसे सहा नहीं गया।"

विपुलानंद की आंखों में चकित विरक्ति की छाया उभर आयी। उसकी बीवी आजकल बहुत सारी ऊलजलूल बातें करने लगी है।

नारायणी खामोश निगाहों से उसका चेहरा पढ़ती रही। लोगों के प्रति किसी संवेदना की वजह से नहीं, बीवी की बात की इज्जत रखने के लिए ही, अब कोई न कोई इंतजाम हो जाएगा, वह जानती थी।

विपुलानंद ने थोड़ा ठहरकर कहा, "जब वादा कर लिया है, तो कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। लेकिन थोड़े दिनों बाद, एक और यूनिट भी बंद होने जा रही है, वह इससे ज्यादा गंभीर मसला है। वह यूनिट नुकसान पर नुकसान दिये जा रही है। मैं यह नहीं कहता कि लोगों के प्रति दर्द दिखाना बुरी बात है, लेकिन कारोबार में नफा-नुकसान भी देखना ही पड़ता है। तुम इन सबमें जितना सिर खपाओगी, उतना ही झमेला बढ़ेगा।"

नारायणी को उसकी बातें अच्छी नहीं लगीं। प्रकारांतर से उसे इन मामलों में टांग अड़ाने को मना किया जा रहा था।

लेकिन फिर भी यह रात, नारायणी को और रातों से अनोखी लगी थी। इस रात के नशीले एकांत में देने-पाने की बेचैनी और शिद्दत बेहद मधुर रूप में उजागर हो उठी। डाल से टूटे हुए फूल की तरह, अपनी मुट्ठी में टुकड़ा भर फुरसत दबाये जो शख्स उसके पास रात बिताने आया था, वह कामना-वासना से भरपूर, सहज-सरल इंसान नजर आया। वह विशालतम मशीन-मानव नहीं था; उसका दिल भी कोई बेजान पुरजा नहीं था। नारायणी उस पर भरोसा करे या न करे, वह तय नहीं कर पा रही थी। वह विह्वल-सी उस इंसान को छू-छूकर, अपनी समूची शिद्दत से उस सच्चाई को परखने और महसूस करने को उमड़ आयी।

हां, उसने सच ही महसूस किया।

सिर्फ उसी रात नहीं, अगले दिन, अगली रात भी वह इस सुखद अहसास को जीती रही। दफ्तर से वह यथासमय लौटा, नियमानुसार राजा को लेकर छत पर भी आया। उस वक्त नारायणी किसी मासिक पत्रिका के पन्ने उलट रही थी। लेकिन उसका ध्यान पत्रिका में नहीं था। किसी की आंखों में अपने लिए हहरती हुई प्यास देखकर उसे मजा आ रहा था। यूं इस वक्त वह भी उनके साथ ही होती है। लेकिन आज जैसे उसे कोई जल्दी नहीं, ख्याल भी नहीं।

बाहर से बाप-बेटे की बातचीत सुनाई दी।

"अपनी मा को नही बुलायेगा ?"

जवाब मे बेटे की स्पष्ट घोषणा सुनाई पडी—"मां अगर पानी मे उतरी, तो मैं पानी के पास भी नही जाऊगा। कल उसने जो काड किया, अगर कहीं मैं डूब जाता तो तुम अपने बेटे से भी हाथ धो बैठते।"

जवाब मे पिता की हसी सुनाई दी।

थोड़ी देर बाद नारायणी छत पर आयी। उसे देखकर किसी का चेहरा खुशी से चमक उठा। मानो वह उसी का इतजार कर रहा हो। लेकिन बेटे की नजर पड़ते ही, वह डर से सहम गया। कल के उस कांड के बाद, गहरे पानी मे जाने का साहस कुछ बढा जरूर है, नौकरो के साथ कुछ दूर गया भी था, लेकिन मा को देखते ही वह डर से काठ हो आया।

विपुलानद की बगल मे बैठते हुए, नारायणी ने उसे अभय दिया, "निश्चित रह! आज मैं पानी मे नही उतर रही। तू जितनी चाहे बहादुरी दिखा।"

उसकी बात सुनकर, विपुलानद ने ही किंचित धीमी आवाज मे कहा, "क्यो? जाओ न! तुम्हारी वजह से बेटा दो दिनो में ही तैरना सीख जाएगा। बैरों को जाने को कह दू ?"

नारायणी ने पलटकर उसकी तरफ देखा। उसकी आखों मे झाकते हुए हस पड़ी। वह बेटे को तैरना सिखाने के लिए पानी में उतरने को कह रहा है या किसी और वजह से, यह समझने मे उसे जरा भी दिक्कत नही हुई।

उसने कहा, "अगर तुम उतरो, तो मैं भी चल सकती हू।"

"मैं ? कही मुझे भी, उसकी तरह गहरे पानी मे धकेलने का इरादा तो नही ?"

नारायणी खिलखिलाकर हंस पडी। अगले ही पल उसकी तरफ चुनौती भरी निगाहों से देखकर कहा, "क्यो, क्या समझते हो, धकेल नही सकती ?"

विपुलानंद भी हस पडा।

नारायणी ने दुबारा कहा, "नही, आज रहने दो! मुझे उतरते देखकर तुम्हारा बेटा सिर पर पाव रखकर भाग खडा होगा।"

···उस रात भी वह इंसान उसके कमरे में आया था। नारायणी को मालूम था, वह जरूर आयेगा। वह उसका इतजार कर रही थी···

लेकिन, इस शिल्पपति के अदर हाड-मास का सहज इसान हमेशा मौजूद रहेगा, ऐसी उम्मीद महज पागलपन होती। नारायणी ने भी ऐसी कोई उम्मीद नही बाधी। सवेरा होते न होते कामकाजी आदमी फिर अपने कामो मे मशगूल हो गया। बीच के इन दो दिनों के व्यतिक्रम को, उसने दुगुनी व्यस्तता ओढ़कर मिटा देना चाहा।

नारायणी को इसमें भी कोई एतराज न होता, अगर एक मामूली-सा हादसा उसे इस कदर विचलित न कर जाता।

इधर कई दिनों से विनायक डेवर का कोई अता-पता न पाकर वह चिंतित हो उठी थी। इन थोड़े-से दिनों में उसकी मदद से आर्ट-गैलरी की काया पलट हो गयी थी। उन लोगों की कुछ नयी योजनाएं भी थीं। इस बीच उसके यूं डुबकी लगा जाने की वजह भी समझ में नहीं आयी।

उस दिन शाम को विपुलानंद के सामने भी जिक्र किया, "इधर कई दिनों से विनायक की कोई खबर नहीं! तुम उसके यहां एक फोन का इंतजाम कर दो; उसकी खोज-खबर लेने में असुविधा होती है।"

विपुलानंद मानो आसमान से गिरा। उसने हैरत-भरे लहजे में कहा, "अरे, वह तो हमारी फर्म में कॉमर्शियल आर्टिस्ट बन गया है। तुम्हें नहीं पता?"

नारायणी भी मानो हतबुद्ध रह गयी, "कॉमर्शियल आर्टिस्ट? विनायक?"

"हां, वाकई वह बहुत प्रतिभावान है! ··मशीन टूल के लिए बिलकुल नये ढंग के, एक चटपटे विज्ञापन की जरूरत थी—वह इश्तहार समूचे हिंदुस्तान में जाना था—लेकिन कोई ऐसा इश्तहार नहीं बना पा रहा था, जो आंखों को मुग्ध कर दे। अंत में तुम्हारे आर्टिस्ट को बुलाया, वह तीन-चार दिन के अंदर ही बनाकर ले आया···वाकई, उसने बेहद खूबसूरत विज्ञापन बनाया था।"

"···उसके बाद तुमने उसे नौकरी दे दी?"

"हां, अब वह हमारे चीफ-आर्टिस्ट के सहायक के पद पर है। अभी डेढ़ हजार रुपये महीने पर बहाल हुआ है। लेकिन जल्दी ही वह तरक्की कर लेगा। फाइन आर्ट को अगर इस तरफ मोड़ा जा सके, तो काम बन सकता है।"

नारायणी की निगाहें एकटक विपुलानंद के चेहरे पर गड़ी रहीं। उस कलाकार के साथ उसकी जल्पना-कल्पना की सारी खबर उसे मालूम है। उसने जान-बूझकर ऐसा किया है। अच्छा, चूंकि उसे सारी बातों की खबर थी, इसीलिए उसने ऐसा किया? उसे एक बार बताने की भी जरूरत नहीं समझी?

नारायणी ने सवाल किया, "फाइन आर्ट को इस तरफ मोड़ देने से, फाइन आर्ट दम नहीं तोड़ देगा?"

"नानसेंस!" फाइन-आर्ट की ऐसी की तैसी कर डालने की झोंक बिलकुल स्पष्ट हो उठी। "दो-चार आड़ी-तिरछी रेखाएं घसीट देने को तुम फाइन-आर्ट कहती हो? यह मौत भी भला कोई मौत है? इस बाजीगरी को अगर इस तरफ लगा दिया जाये, तो कम से कम शास्त्रीय विज्ञापन का मकसद तो पूरा हो सकेगा।"

ना, इस बारे में नारायणी ने और कोई बात नहीं की। बस, उसे यही लगता रहा, सब कुछ जान-बूझकर भी, इस आदमी ने उसका एक हाथ पंगु कर दिया।

क्यों किया ? इसीलिए न कि विनायक को उसे जरूरत थी ? उसके कारोबार की चमक-दमक बढ़ेगी, प्रचार का मकसद पूरा होगा। अपनी जरूरत के आगे वह किसी और की जरूरत से समझौता नहीं कर सकता ! नहीं, अपनी बीवी की जरूरत से भी नहीं ! उसकी हर बात ही नानसेंस ठहरती है !

नारायणी ने बेहद खामोशी से इस दर्द को पी जाने की कोशिश की।

थोड़े ही दिनों बाद, अचानक विनायक घर पर आ धमका। नारायणी का उससे मिलने का भी मन नहीं हुआ। लेकिन अगर वह नहीं मिली, तो उसका दबा हुआ गुस्सा बिलकुल स्पष्ट हो जाएगा, लोगों में उत्सुकता जागेगी।

विनायक के चेहरे पर, हमेशा की तरह मासूम हंसी झलक आयी, "लेडी साहिबा, खुशखबरी तो आपको मिल ही गयी होगी !"

नारायणी ने निस्पृह भाव से जवाब दिया, "हां, खुशखबरी ही तो है ! कैसा लग रहा है ?"

"अभी ठीक-ठीक जम नहीं पाया। उम्मीद है, अच्छा ही लगेगा। लेकिन मिस्टर बागची सचमुच कमाल के आदमी हैं ! सच्चे कर्मयोगी !"

और कोई दिन होता तो नारायणी हंस देती या जवाब में कोई मजाक जड़ देती। लेकिन उस वक्त उसके दिल में कहीं आग लगी हुई थी। न चाहते हुए भी मन की नाराजगी थोड़ी-सी व्यक्त हो गयी, "हां ! हां ! बोलो ! बोलो ! बोलते जाओ ! ऐसी बातें जितनी कहोगे, उतनी ही तुम्हारी कद्र बढ़ेगी !"

अचानक वह ठिठक गयी। इस तरह की बातचीत के लिए मानो वह अपने पर ही झुंझला उठी। विनायक डेबर भी अवाक हो उठा।

नारायणी ने कुछेक पल की खामोशी के बाद दुबारा पूछा, "मद्रास से लौटने के बाद तुम्हें क्या ज्यादा कड़की आ गयी थी ?"

उम्र में काफी बड़ा होते हुए भी, वह उसे बच्चों जैसा सरल लगा था, इसीलिए वह अनायास ही उसका नाम लेकर पुकारती, उसे 'तुम' कहकर बात करती। कलाकार ने उसकी सहृदयता को अपना इनाम मान लिया था। उसके सवाल पर, उसका चेहरा देखकर अचानक वह पसोपेश में पड़ गया। लेडी कभी उसे गिनकर हजार-डेढ़ हजार रुपये तो नहीं थमाती थी, लेकिन उन्होंने उसके निर्वाह की निश्चित व्यवस्था जरूर कर दी थी।

उसने बेहद मासूम लहजे में कहा, "मिस्टर बागची ने इतनी इज्जत से बुलाया, मैंने समझा इसमें आपकी भी रजामंदी है !"

"मिस्टर बागची ने ऐसी कौन-सी इज्जत दे डाली ? डेढ़ हजार रुपये महीने की नौकरी ?"

विनायक डेबर की मानो जुबान बंद हो गयी। और कोई वक्त होता, तो नारायणी को उस चेहरे पर दुलार आ जाता। लेकिन आज वह अंदर ही अंदर

इस कदर जली-भुनी बैठी थी कि उसका चेहरा देखने का धीरज भी नहीं रहा।

आर्टिस्ट आज अपनी नयी उपलब्धि का समाचार लिये खुश-खुश आया था। लेकिन इस चक्कर में उसने कितना कुछ खो दिया है, यह महसूस करते हुए, उसका चेहरा फक्क पड़ गया। उसने शिथिल आवाज में कहा, "लेडी अगर नहीं चाहतीं, तो मैं यह नौकरी छोड़ दूंगा—"

नारायणी की जलती हुई निगाहें उसके चेहरे पर गड़ गयीं। उसकी रुक्ष आवाज में और तीखी झल्लाहट उभर आयी, "नौकरी अगर छोड़ ही देनी थी तो ली ही क्यों थी? मैं कह रही हूं, इसलिए? मुझे देखकर? क्या फर्क पड़ेगा? नौकरी से हाथ धो बैठोगे यही न? इससे तुम्हें क्या फायदा होगा?"

नारायणी झन्नाती हुई कमरे से बाहर निकल गयी।

अगली शाम!

राजा अपने कमरे में पढ़ रहा था। नारायणी अपने कमरे में अनमनी-सी बैठी हुई पियानो पर उंगलियां फेर रही थी। वह कौन-सा सुर बजा रही थी, खुद उसे भी अच्छी तरह नहीं मालूम। कोई लोक धुन थी। उस सुर में, मुक्ति का आवेदन था।

अचानक बैरा एक खत रखकर चला गया। बंद लिफाफा। लिफाफे पर कोई पता-ठिकाना नहीं था।

लिफाफा खोलते ही एक खत निकल आया। पढ़ने से पहले, खत के नीचे, लिखनेवाले का नाम देखा—विनायक डेवर!

"मेरी लेडी ने रास्ते के एक तुच्छ-नगण्य आर्टिस्ट को बचा लिया, इत्ती बड़ी खुशखबरी आखिर मैं किसे सुनाऊं? अगर मन के अंदर छिपा लोभ मर जाए, तो मुझे और किसी मौत की परवाह नहीं। खैर, अपने को परख कर देखूंगा। तुम्हें असंख्य धन्यवाद! आज पहली बार और आखिरी बार 'तुम' कह रहा हूं, नाराज न होना।—विनायक डेवर।"

खत पढ़कर कुछेक पलों के लिए नारायणी स्तब्ध रह गयी। अगले ही पल वह अंदर ही अंदर बेचैन हो उठी। कोई अज्ञात आशंका उसे बेचैन कर गयी।

थोड़ी देर बाद ही विपुलानंद लौटा। वह शायद किसी मीटिंग या पार्टी से लौट रहा था। उसने आते ही सवाल किया, "आज या कल तुमने विनायक डेवर से कुछ कहा था?"

अज्ञात आशंका मानो अब साकार हो उठी। नारायणी ने सीधे उसकी आंखों में झांकते हुए सवाल किया, "क्यों?"

"ओफ ओ! जो पूछ रहा हूं, पहले उसका जवाब दो।"

ठीक उसी तरह उससे आंखें मिलाये हुए, बिलकुल उसी लहजे में नारायणी ने दुबारा सवाल किया, "क्यों पूछ रहे हो ?"

अब शिल्पपति भी ठिठक गया, "आज दफ्तर पहुंचते ही खबर मिली, उसने इस्तीफा भेज दिया है। हालांकि अभी दो ही दिनों पहले उसने बेहद जरूरी ले-आउट का जिम्मा लिया था। आज आदमी भेजकर पता किया, तो खबर मिली, वह हमेशा के लिए शहर छोड़कर चला गया है।"

हां, अनजाने में ही सही, कुछ इसी तरह की आशंका नारायणी को भी हुई थी। लेकिन उसके मुंह से यह खबर सुनते ही, उसका दिल धक से रह गया। उसका वह हंसमुख-मासूम चेहरा उसकी आंखों में तैर गया। वह अंदर ही अंदर छटपटा उठी। उसे लगा, कोई नन्हा-सा शिशु उसकी पनाह में आया था, उसे झिड़ककर उसने फिर उसे फुटपाथ पर खड़ा कर दिया।

"क्यों, तुमसे कोई बात हुई थी ?"

जवाब में नारायणी ने चुपचाप वह खत उसके आगे कर दिया।

खत पढ़ते ही विपुलानंद का चेहरा बदल गया। उसने गुस्से से बिफरते हुए कहा, "रास्कल कहीं का ! तुम्हें उसने इस भाषा में खत लिखा है ?"

अगर इस वक्त कहीं वह मिल जाता तो शायद वह उसका सिर तोड़ देता।

नारायणी ने बेहद ठंडी और तटस्थ आवाज में सवाल किया, "तुमने जो भाषा इस्तेमाल की, उसकी भाषा क्या उससे भी बदतर है ?"

विपुलानंद ठिठक गया। उसका चेहरा गुस्से से लाल हो उठा, "मुझे समझ नहीं आ रहा कि यह चक्कर क्या है ? तुमसे क्या बात हुई थी ? तुमने ऐसी कौन-सी मुसीबत से उसकी रक्षा की थी कि अब उसे मौत की भी परवाह नहीं रही ?"

नारायणी निरुत्तर खड़ी रही।

"प्लीज ! रीना ! कहो तो सही ! क्या बात हुई थी ?"

"बात कुछ नहीं हुई ! इतनी बड़ी नौकरी मिलने पर मैंने उसे मुबारकबाद दी थी। मैंने कहा था—बड़े साहब की मेहरबान नजर में पड़कर, अब वह निश्चिंत होकर दिन बिता सकता है।"

विपुलानंद का कान-चेहरा, यहां तक कि उसकी नाक की नोक तक गुस्से से लाल हो उठी, "इसका मतलब यह हुआ कि तुमने उसकी बेइज्जती के बहाने मेरी बेइज्जती की ?"

नारायणी अगर चाहती तो इसका जवाब दे सकती थी। हां, वह भी कह सकती थी कि आर्ट-गैलरी से उसे खींच ले जाकर, बेइज्जती की पहल उसी ने की थी। वह पूछ सकती थी, कलकत्ते शहर में जहां ढेरों-ढेरों कॉमर्शियल आर्टिस्ट मारे-मारे फिरते हैं, वहां विनायक डेंबर के सामने इतने बड़े लोभ का जाल क्यों बिछाया गया ? उसकी बीवी किसी और को कुछ ज्यादा इज्जत देने लगी थी,

उसकी धज्जी-धज्जी बिखेर देने के लिए ही शायद उसने ऐसा किया था।

नारायणी ने जवाब दिया, "मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं था। उसे अपनी बेइज्जती का इतना ज्यादा ख्याल है, यह भी नहीं सोचा था। लेकिन जाने कहां का एक आर्टिस्ट···नौकरी छोड़कर चला गया, इसमें भला तुम अपनी बेइज्जती क्यों समझ रहे हो?"

उस आदमी की अव्यक्त रोषभरी अभिव्यक्ति कहीं से भी अस्पष्ट नहीं थी। गुस्से के मारे उसका चेहरा एकबारगी तप आया। नरम कालीन पर जोर-जोर से पैर पटकते हुए वह कमरे से बाहर निकल गया।

अच्छा, उसकी यह मूर्ति नारायणी ने पहले कभी देखी है? हां, अपने ससुर को देखा था। बीमारी में चलने-फिरने से मना करने पर, उन्होंने नर्स के दुस्साहस को ठीक इसी तरह कुचलकर आगे बढ़ जाने की कोशिश की थी। आज नारायणी ने मानो दुबारा वही चेहरा देखा हो। नहीं, यह अपमान नहीं, किसी रईस की महज अक्खड़ जिद थी। जब कोई अमीर अपनी किसी जिद पर आ जाता है, तो उसकी नजर में अपनी बीबी की भी कीमत किसी नर्स से कौड़ी-भर भी ज्यादा नहीं होती।

-और दूसरी संबद्ध सस्थाओं का काम ठप्प करने की कोशिश, पुलिस हस्तक्षेप, कुछेक जख्मी लोगों की तालिका, कुछेक लोगो की हालत चिंताजनक होने की सूचना वगैरह-वगैरह।

अखबार लिये-लिये नारायणी दफ्तर-कमरे की तरफ चल पडी। पहलेवाली स्थिति होती तो वह चुप रह जाती, पति का उपदेश याद रखती। लेकिन अब उससे बिलकुल बरदाश्त नही होता।···कमरे मे विपुलानंद निरुद्विग्न भाव से दत्तचित्त होकर रिपोर्ट का बंडल देख रहा था। बगलवाले कमरे से टाइप की धीमी-धीमी आवाजें सुनाई दे रही थी। स्टेनोग्राफर भी इसी कमरे की तरफ आ रहा था, लेकिन लेडी को कमरे मे जाते देखकर वह लौट गया।

नारायणी पति के सामने आ खडी हुई, "तुम्हारी वह यूनिट शायद बंद हो गयी न ?"

"ऊं···? हू···" विपुलानद ने एक बार सिर उठाकर देखा, फिर अपने काम मे मग्न हो गया।

"कल क्या काफी गोलमाल हुआ था ?"

"काफी···और क्या ? काम-काज ठप्प करके कुछ लोग उत्पात मचाने की कोशिश कर रहे थे।"

"अखबार में तो लिखा है—बहुत से लोग जख्मी हुए है। कुछ लोगों की हालत गंभीर है ! क्या यह सच है ?"

"हो सकता है ! वैसे अखबार मे कुछ बढा-चढाकर ही लिखते हैं।"

नारायणी लौट आयी। ऐसी धीर-शात नसो की वह तारीफ करे या निंदा ? बेचैन हो या निश्चिंत हो रहे ?

लेकिन शाम को ही जो हादसा हो गया, शायद उसकी अंतरात्मा तक काप उठी। करीब-करीब तीन-चार सौ लोग प्रासाद के गेट के सामने आकर जमा हो गये। उनमे आधे मजदूर थे। गेट पर ताला लगा दिया गया। घर के सब नौकर-चाकर, दरबान गेट के इस पार पहरेदारी मे तैनात हो गये। भीड़ के लोग चीख-चिल्ला रहे थे, शोर-गुल मचा रहे थे। अदर प्रवेश की अनुमति की मांग कर रहे थे।

नारायणी विमूढ़ खौफ से बस देखती रही। कई बार उसने अपने कानों पर कसकर हाथ रख लिया। वे लोग उसे ही आवाजें लगा रहे थे। "मां" को पुकार रहे थे। मुमकिन है इस मा की सहृदयता की खबर, शायद निकाले हुए किन्हीं कर्मचारियों से मिली हो ! वे लोग मा से मिलकर ही जाएंगे। वे उनसे [illegible] विनती करेंगे। मा से बातचीत किये बिना, वे लोग वहा से नहीं हटेंगे।

नारायणी की कनपटियां तड़क उठीं। सिर में भयंकर दर्द होने लगा। आखिर वह क्या करे ? वह क्या कर सकती है ? विपुलानन्द ने बेहद [illegible]

से पुलिस को फोन कर दिया। वैसे भीड़ को कावू में रखने के लिए कुछेक पुलिस पहले से ही मौजूद थी, लेकिन वह काफी नहीं लगी। इसके अलावा भीड़ को वहां से हटाना वहुत जरूरी था। फोन रखकर उसने नारायणी को अभय देते हुए कहा, "घवड़ाने की क्या वात है ? भीड़ जरा देर में तितर-वितर हो जाएगी।"

नारायणी के मुंह से आवाज ही नहीं निकल पा रही थी, वरना वह कहती, "नहीं, मुझे कोई घवराहट नहीं ! सिर्फ वह दृश्य और उनकी पुकार भर असहनीय लग रही है। जितनी जल्दी हो सके, उन्हें वहां से हटा दिया जाए। वस, उसे चैन आ जाएगा।"

अचानक वरामदे से गोली छूटने की आवाज सुनाई दी। दुम्म ! राजा की एयर-गन की आवाज। उस कीमती एयर-गन की आवाज भी कुछ कम न थी। नारायणी ने मानो कोई धमाका सुना हो। वह वेतरह डर गयी। वह दौड़कर वरामदे में आयी। गुस्से से लाल भभूखा वना, राजा भीड़ पर अपने एयर-गन से तावड़तोड़ गोलियां वरसाये जा रहा था। नारायणी ने विस्फारित आंखों से देखा, उसका नन्हा-सा चेहरा गुस्से और नफरत से उवल आया था।

गेट के वाहर से लोगों की समवेत चीत्कार यहां तक सुनाई दे रही थी, "मुन्ना वावू, नीचे उतर आओ। सामने आ जाओ, मुन्ना भइया ! हम लोगों को विलकुल जान से मार डालो। गेट खोलकर विलकुल आमने-सामने गोली चलाओ।"

नारायणी वौखलायी-सी आगे वढ़ी। उसने झपटकर वेटे को समेट लिया और लोगों की निगाहों से वचती हुई अपने कमरे में घुस गयी।

उसने वेटे के हाथ से वंदूक छीनकर फेंक दी और भयंकर गुस्से से उसे जोर-जोर से झकझोरते हुए पूछा, "क्यों ? क्यों चलायी तूने वंदूक ?"

विपुलानंद ने जल्दी से आगे वढ़कर वेटे को अपनी तरफ खींच लिया। उसे यूं झकझोरते देखकर उसकी भौंहें चढ़ गयीं, "अजीव हो ! तुम कर क्या रही हो ?"

नारायणी की आवाज और तीखी हो उठी, "इसने उन लोगों पर गोली क्यों चलायी ?"

अगले ही पल अपने छह वर्षीय वेटे का चेहरा देखकर और उसका जवाव सुनकर वह सन्न रह गयी।

वेटे की आंखों में मानो शोले लहक रहे थे। उसने भी उसी तैश में जवाव दिया, "एक नहीं, सौ वार गोली चलाऊंगा। मैं उन सवको विलकुल जान से मार डालूंगा। वे लोग यहां क्यों आये हैं ? इस तरह शोर क्यों मचा रहे हैं ? यहां से जा क्यों नहीं रहे ?"

विपुलानंद ने उसे फुसलाकर शांत किया। उसे अपने कमरे में जाकर खेलने को कहा।

कितने दिनों को जा रही है या कहां जा रही है, यह भी नहीं बताती। शायद वह खुद भी इस बारे में ठीक-ठीक नहीं जानती। वैसे वह सिर्फ शूटिंग-दल के साथ ही नहीं जाती, मनपसंद लोग न हों, तो कभी-कभी अकेली ही निकल पड़ती है। विपुलानंद उसके आने-जाने के बारे में कभी कोई सवाल नहीं करता। जब तक कोई खुद न बताये, अपनी तरफ से कोई पूछताछ करना, इस घर की शराफत के खिलाफ है।

लेकिन आजकल वह बीवी को लेकर खासा परेशान रहने लगा है। उसे मालूम है कि उसकी बीवी के बेतहाशा शराब पीने और चालचलन के बारे में लोग जरा ज्यादा ही कानाफूसी करने लगे हैं। घर में भी कभी-कभी उसकी हंसी और बातों का दौर रोकना मुश्किल हो आता है। उसकी बकबकाहट पर उसे बेहद हैरानी भी होती है। कभी-कभी तो उसका बेटा भी, दूर से, अपनी मां के तमाशों में मजा लेता है। उसके कुछेक दिन बाद ही बिलकुल उल्टी प्रतिक्रिया होती है। चेहरे पर न हंसी, न कोई बातचीत, बिलकुल गुमसुम हो जाती है।

श्यामा'दी के यहां वह अक्सर जा धमकती है। वह ज्यादा जाने लगी है, इसलिए श्यामा'दी का आना बहुत कम हो गया है। इन दिनों बूला'दी का पति भी इसी शहर में नौकरी करने लगा है। खबर पाकर नारायणी एक दिन वहां गयी भी थी। बूला'दी अच्छी-खासी गृहस्थिन बन चुकी हैं। काफी हिसाबी-किताबी हो उठी हैं। नारायणी को अच्छा नहीं लगा। उसे तो श्यामा'दी ही पसंद हैं। लेकिन आजकल वह भी कहीं से बदलती जा रही हैं। कमरे में ताला चढ़ाकर, वह अक्सर गायब रहने लगी हैं। कभी कुछ पूछने जाओ, तो वह हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाती हैं।

उस दिन नारायणी के पूछने पर उसे मानो ठहाकों का दौरा पड़ गया। थोड़ी देर बाद, उन्होंने पेट पकड़कर हंसते-हंसते जवाब दिया, "सारा कुछ स्पोर्ट— यानी खिलवाड़ है, समझी? दुनिया में जितना कुछ है, अगर तू उसे खिलवाड़ मान ले, तो समझ ले, तू बच गयी। जो भी हाथ लगे, गिलास के इस रंगीन पानी की तरह, मस्ती से सपोट जा! बस्स! सिर खपाया नहीं कि बेमौत मर जाएगी!"

नारायणी अचरज से मुंह बाये उसकी तरफ देखती रही। उसने क्या पूछा था, क्या जवाब मिला! लेकिन श्यामा'दी जवाब-जवाब के चक्कर में नहीं पड़तीं। बातों के सही-गलत या उचित-अनुचित होने की भी परवाह नहीं करतीं। वह तो नारायणी को देखते ही खिल जाती हैं। फुर्ती के लिए रंगीन पानी भी अब उन्हें पैसे देकर नहीं खरीदना पड़ता। कभी-कभी वह बेहद कृतज्ञ भी हो आती हैं, "पता नहीं, पिछले जनम में तू मेरी कौन थी?"

उसकी फुर्ती और हंसी-खुशी का स्पर्श लिये, वह घर लौट आती। कुछ दिनों फिर वही हंसी और बातों का दौर! कभी-कभार तो घर के तमाम नौकर-चाकरों

के सामने ही अपने साढ़े छह् वष के मोटे-ताजे बेटे को बिलकुल कंधे पर उठाकर बस, हंसती जाती।···हंसती जाती। बेटा उतरने के लिए जितनी जोर से हाथ-पैर चलाता, उसकी हसी उतनी तेज होती जाती और वह उसे जबरदस्ती कसकर चिपटाये रखती। कुछ दिन जाते-न-जाते फिर उसी तरह गुम हो जाती।

आजकल विपुलानंद के दिमाग मे कोई शक बुरी तरह घर करता जा रहा है। उसे शक होने लगा है, कही उसकी बीबी के दिमाग का कोई पुरजा तो नही गड़बड़ा गया है! बीबी की चोरी-चोरी वह किसी साइकाईट्रिस्ट से सलाह-मशविरा भी करना चाहता है, लेकिन उसे फुरसत ही नही मिलती। उसकी जिंदगी मे दिनोदिन फुरसत की कमी होती जा रही है। अगले महीने के पहले हफ्ते मे उसे कोई बहुत बड़ी जिम्मेदारी निभाने के लिए अमेरिका जाना है। कारोबार में और ज्यादा सहूलियत हो सके, इस सिलसिले मे, विदेशी मुद्रा के बारे में उसे कोई अहम् फैसला करना था। काफी लिखा-पढ़ी और दिल्ली में बातचीत और बहस-मुबाहसे के बाद, भारत सरकार कपनी की जमानत देने के लिए राजी हो गयी है। इस सिलसिले मे उसे हफ्ते में कभी-कभी चार-चार बार प्लेन से दिल्ली-कलकत्ता एक करना पड़ा है।

अतः सच तो यह है कि उसे बिलकुल फुरसत नही।

उसकी व्यस्तता की वजह सुनकर नारायणी ने बेभाव ठहाके लगाये थे। कब, किस बात पर उसे हसी का दौरा पड़ जाएगा, इसका भी अदाज लगाना मुश्किल है। तीन दिनों तक कही बाहर रहकर, वह खुद भी, आज सुबह ही घर लौटी थी। रात को सोने के कमरे मे मिया-बीबी की मुलाकात हुई।

अचानक नारायणी ने बेवजह हसना शुरू कर दिया। उसकी हसी देखकर विपुलानंद फिर परेशान हो उठा। उसकी हंसी स्वाभाविक है या अस्वाभाविक, उसके चेहरे से साफ पता चल जाता है।

नारायणी ने पूछा, "अच्छा, एक बात तो बताओ, कारोबार की शाखें कितनी ऊंचाई तक फलती-फूलती नजर आयें और दुनिया-भर मे कितनी सारी जगहें दखल कर लेने के बाद तुम लोग रुक जाओगे?"

"रुकने से फायदा?"

"फायदा!" नारायणी की हसी फिर तेज हो उठी, "वाकई तुम लोगों के नफे-नुकसान का हिसाब-किताब भी तो साथ-साथ घूमा करता है। अच्छा, कैसी भी आग हो, इस हवस को जला पाना नामुमकिन है न? दुनिया में ऐसी भी कोई आग है?"

विपुलानद ने शुरू मे ही समझ लिया, उसकी बीबी नॉर्मल नही है। इस वक्त उसने कितनी चढ़ा रखी है, वह उसके चेहरे से पता लगाने की कोशिश करता रहा।

थोड़ा ठहरकर उसने गंभीर मुद्रा में बात शुरू की—"रीना, तुमसे एक बात कहनी है। जस्ट ए रिक्वेस्ट ! एक अनुरोध है—"

"अनुरोध ! अरे, अनुरोध क्यों ?…हुक्म करो ! मैं तो तुम्हारे हुक्म की दासी हूं !"

"मैंने कभी तुम्हें हुक्म दिया है ?"

नारायणी एकबारगी गुस्से से फट पड़ी, "क्यों नहीं देते हुक्म ? क्यों…? क्यों ? आखिर क्यों ?"

विपुलानंद ने सकपकाकर दरवाजे की तरफ देखा।

नारायणी ने भी अपने को संयत करते हुए कहा, "कहो क्या कहना है ?"

"डोंट ड्रिंक टू मच ! इतना मत पीया करो।"

नारायणी की आंखें अचरज से फैल गयीं। इस किस्म का अनुरोध निहायत अप्रत्याशित था। अचानक उसने जोर का ठहाका लगाया। हंसी के मारे उसका बुरा हाल हो आया।

"क्यों ?…डार्लिंग, भला क्यों ? तुम क्या समझते हो, मुझे नशा चढ़ गया है ? लेकिन मैं क्या तुम लोगों से भी ज्यादा नशा करती हूं ? हैरत है ! मेरा नशा क्या तुम लोगों के भी नशे से ज्यादा तीखा है ? हाउ इम्पॉसिबिल ! नामुमकिन ! असंभव !…अच्छा, रुको मैं आती हूं।"

वह हंसते-हंसते कमरे से बाहर निकल गयी। मानो वह अपनी हंसी रोक नहीं पा रही हो, इसीलिए बाहर चली गयी। कुछ ही मिनटों में लौट आयी। वह लड़खड़ा रही थी। वह असंयत-सी बिस्तर पर आ बैठी। उसका चेहरा देखकर विपुलानंद समझ गया, वह थोड़ी और चढ़ा आयी है।

अचानक अपनी हंसी रोककर नारायणी ने गंभीर होने की कोशिश की। यानी अब वह भी सीरियस हो गयी। लेकिन गंभीरता के बावजूद रह-रहकर उसके होठों पर व्यंग्य-भरी हंसी झलक उठती थी। वह मन ही मन कुछ सोच रही थी। शायद कुछ याद करने की कोशिश कर रही थी। हां, याद आ गया।

उसने दरयाफ्त किया, "तुम अमेरिका कब जा रहे हो ?"

"अगले महीने के पहले हफ्ते में।"

"चलो, मैं भी घूम आऊं, तुम्हारे साथ।"

शुरू-शुरू में…बहुत साल पहले…विपुलानंद विदेश जाते समय उससे भी साथ चलने की जिद किया करता था।

नारायणी आतंकित मुद्रा में उसका आग्रह रद्द कर देती, "ना बाबा ! तुम लोगों का ऐसा लंबा-चौड़ा मामला ! मेरा तो दम घुट जाएगा !"

आज वह खुद ही चलने को तैयार हो गयी है, यह भी स्वाभाविक लक्षण नहीं। इसके अलावा इस बार तो उसके सर पर सचमुच सैकड़ों झमेले हैं ! ऐसे

में वह ऐसी खब्ती बीवी को साथ ले जाने की हिम्मत नहीं कर सकता।

उसने कहा, "मैं तो सिर्फ पांच-सात दिनों के लिए जा रहा हूं। [illegible] भी हैं, काफी व्यस्त रहूंगा। तुम किसी और दिन [illegible]।"

नारायणी को मानो फिर हंसी का दौरा पड़ गया। [illegible] की तरह फुसलाने की कोशिश कर रहा है। थोड़ी देर बाद [illegible] रोककर, कौतुकी निगाहों से उसकी तरफ देखा, "[illegible] है? कहीं वहां के अंग्रेज साहब मेरे [illegible] झपटी पर न उतर आयें?"

किसी भी नफासत-पसंद [illegible] की आदत नहीं होती। विपुलानंद ने [illegible] सुनी ही न हो।

उसने कहा, "इसके अलावा [illegible] मुश्किल होगा।"

नारायणी की आंखें अचरज से फैल गयीं, "[illegible] अरे, तुम ही तो मेरे पासपोर्ट हो, जी! [illegible] तुम्हारी इच्छा पर तो सारी दुनिया नाचती है! [illegible] रही! तुम्हारी इच्छा से भी बड़ा कहीं कोई [illegible]?"

विपुलानंद खामोश रह गया। [illegible] लग रहा था।

उसके चेहरे को पढ़ती हुई नारायणी [illegible] किया, "अच्छा, एक बात तो बताओ, [illegible] दिनों के लिए इधर-उधर चल देती हूं, कभी-कभी तो [illegible]; मिसेज बागची के साथ जाने का मौका पाकर [illegible] होती है! तुम्हें डर नहीं लगता?"

"डर?"

नारायणी अपनी बाहों पर सिर टिकाये फिर एक दौर हंसती रही। उसने दुबारा बात शुरू की, "मैं जहां भी जाती हूं, लोग खुशी से पागल हो उठते हैं। मेरे ही इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं, सैकड़ों तरह से मेरी मदद के बहाने मुझसे सटे रहने की ताक में रहते हैं। कोई मेरी तरफ तिरछी निगाहों से देखता है, कोई चोर-निगाहों से। यानी मौका मिलते ही, तुम्हारे वे तथाकथित शिक्षित और परिमार्जित लोगों की भूखी निगाहें मुझे निगल जाना चाहती हैं। मुझे सब पता है, समझे? एक बार, जाने कौन-सी जगह, मैं उनके साथ पानी में उतरी थी, अंत में मारे डर के मैं भाग आयी। ऐसी ललचायी निगाहों से मुझे घूरने लगे कि उसमें से दो-चार शायद डूब ही जाएंगे। लेकिन सच बताओ, तुम्हें डर नहीं लगता?"

विपुलानंद अजव ऊहापोह में पड़ गया। वीवी का यह मुंहफट हंसी-मजाक उसके कानों में चुभ गया। उसे किसी डाक्टर को दिखाना ही होगा। इस मामले में जल्दी से जल्दी कोई इंतजाम करना चाहिए।

उसने भी हंसी में साथ देने की कोशिश की, "क्यों, डर क्यों लगेगा ?"

"क्यों नहीं लगता ?" नारायणी दहाड़ उठी "अगर तुम नशे में न होते, तो तुम्हें जरूर डर लगता ! तुम समझते हो, मैं हमेशा नशे में डूबी रहती हूं ! अगर कहीं नशा नापने की कोई मशीन होती, तो मैं जरूर खरीद लाती। तुम्हें दिखाती कि तुम्हारा नशा, कितना तीखा, कितना तेज है। पासपोर्ट का इंतजाम कर दो— मैं साथ जाऊंगी !"

विपुलानंद ने उसका मुंह वंद कर देने की कोशिश की। उसने फौरन सिर हिलाकर कहा, "अच्छा ! चलना !"

नारायणी गुस्सा भूलकर, फिर हंसने लगी। वह विस्तर पर लेट गयी। उसका आंचल सरककर जमीन पर लोटने लगा। उसकी आंखों में झांकते हुए नारायणी मुंह दबाकर हंस पड़ी, "हां, अव तुम डर गये हो···मैं साफ-साफ समझ पा रही हूं !" किंचित आगे झुककर, उसने उसकी कमीज पकड़कर अचानक अपनी ओर खींचते हुए कहा, "नाउ, कम आन ! आ जाओ।"

जैसे कोई वीहड़ वच्चा अगर अचानक विनम्र और आज्ञाकारी वन जाए, तो उसे सीने से लगाकर दुलार लेने का मन हो आया हो।

किसी को करीव खींचकर अपने प्यार से भर देने को वह उमड़ आयी। नारायणी मानो पिछले दिनों में लौट जाना चाहती थी। जिस दिन वह वेटे को स्विमिंग पूल में खींच ले गयी थी और किसी आसुरी ताकत से उसे तैरना सिखाने के वाद, जव यह विराट मशीन-मानव, अचानक कुछ सहज हो आया था—वह उन्हीं दिनों को वापस लौटा लाना चाहती थी। लेकिन नहीं, आज वह शख्स महज उस पर दया कर रहा था। अपना संग-सुख देकर मानो उसकी विकृति दूर करने की कोशिश कर रहा था।

लेकिन लगातार कई-कई रातों तक नारायणी ने उस इंसान के चेहरे से फर्ज के अदृश्य मुखौटे को नोंचकर फेंक देने की भरसक कोशिश की। औरत की वजह से जाने कितनी वार यह दुनिया उलट-पुलट जाती है। वह भी मानो आजमा रही थी, वह इंसान सचमुच दीन-दुनिया का अनोखा इंसान है या नहीं।

उसके वाद फिर वही गुमसुम मुद्रा ! सारी मुखरता मानो हठात चुक गयी हो।

मानो कोई हादसा हो गया हो !

उस दिन अखवार पर नजर पड़ते ही वह आतंकित हो उठी। उसके मुंह से एक अस्फुट आर्तनाद निकल गया। सामने की मेज-कुर्सी, पंखे···सव घूमते हुए

नजर आए। उसके बाद ही, कुछ दिनों फिर वही चुप्पी! वही जड़-निस्पंदता!

श्यामा'दी ने आत्महत्या कर ली थी।

नारायणी का मन लगातार एक ही सवाल का उत्तर ढूंढता रहा। क्यों? क्यों? श्यामा'दी ने आखिर आत्महत्या क्यों की? वह तो उसी की तरह शराब पीती थी, निरर्थक बातें करती थी, बेभाव हंसा करती थी! इसीलिए तो दोनों में इतनी पटने लगी थी! लेकिन उनके सीने में वह कौन-सी रुलाई चट्टान बन गयी थी? उन्होंने किसी दिन इसका आभास तक नहीं दिया।

आजकल वह नारायणी को अक्सर कहा करती थी, "मैं तो यह खाक-पत्थर पिये बिना रह नहीं सकती, इसलिए पीती हूं। लेकिन तू क्यों पीती है? अमीरी की वजह से?"

नारायणी भी हंसकर सहमति में सिर हिला देती।

"क्यों, पीने से इज्जत बढ़ जाती है?"

"हां! जितनी ज्यादा पी जाए, उतना ही सुनाम बढ़ता है।"

श्यामा'दी हंसते हुए उससे लिपट जाती, भगवान करें, तेरा खूब सुनाम हो! इसमें मेरा भी फायदा है। लेकिन पहले तू ज्यादा सुंदर लगती थी। तुझे देखकर मुझे ईर्ष्या होती थी।"

"अब?"

श्यामा'दी ने मानो किसी मर्द की आंखों से उसके अंग-अंग को टटोलते हुए कहा, "नहीं, रे, अभी भी तुझसे कसकर लिपट जाने का मन होता है। अगर मैं मर्द होती न, तो तेरी खैर नहीं रहती।" उसके बाद हंसी के मारे उनका बुरा हाल हो गया था।

तीन-चार दिनों बाद, नारायणी मानो किसी स्तब्धता की गुफा से उबरी हो। दोपहर के वक्त वह बूला'दी के यहां गयी। उनसे इतमीनान से बातचीत का सही वक्त वही होता है।

बूला'दी काफी देर तक बिलख-बिलखकर रोती रहीं। नारायणी इतनी अमीर औरत है; ऐसी संवेदनशील बहन है, इसीलिए कुछेक दबी-ढंकी बातें भी व्यक्त कर बैठीं। श्यामा'दी का सिपाही पति साल के कुछेक महीने ही उनके साथ रहता था। वैसे भी, हर छुट्टी में वह नहीं आता था। उसी ने अपनी मौज-मस्ती के लिए श्यामा'दी को शराब की लत लगायी थी। मामा के एक पुराने दोस्त के साथ आजकल श्यामा'दी की खासी दोस्ती हो गयी थी। इन दिनों वह लड़का ही उसके रात-दिनों का संगी बन गया था। बूला'दी को खबर मिलते ही उन्होंने श्यामा'दी को आगाह भी किया। उसने हंसकर उड़ा दिया। उसने कहा, "जिनकी खातिर तू मुझे आगाह कर रही है, जाकर देख तो सही, वह किस-किस के साथ

रंगरेलियां मना रहा है।"

आजकल बुला'दी उसे फूटी आंखों नहीं सुहाती थीं। वह सिर्फ बेभाव हंसती रहती और धाराप्रवाह ऊलजलूल बातें किया करती। बुला'दी का ख्याल था, उसकी आत्महत्या के लिए वह लड़का ही जिम्मेदार है। पश्चात्ताप की आग में जल-जलकर उस अभागी ने अपने को होम कर दिया।

घर लौटकर भी नारायणी बूंदभर हलकी नहीं हो पायी। घंटों वह छत पर स्विमिंग-पूल के किनारे बैठी रही। अचानक उसे याद आया, श्यामा'दी ने मामा को एक अच्छी-सी नौकरी दिलाने की सिफारिश की थी। नीचे उतरकर उसने विपुलानंद के खास सेक्रेटरी को फोन करके निर्देश दिया—फलां ठिकाने पर समरेंद्र गांगुली नामक जो शख्स रहता है, उसे बुलाकर कोई अच्छी-सी नौकरी दे दी जाए।

फोन रखते ही उसे अफसोस हो आया। शायद वह किसी पागलपन में यह काम कर बैठी।

रात।

बेटे के कमरे में नीली रोशनी जल रही थी। यानी वह सो रहा था। पास ही गब्बू के भी खर्राटों की आवाजें सुनाई दे रही थीं। नारायणी बेटे को एकटक निहारती रही। उसकी पलकें तक नहीं झपकीं। श्यामा'दी के पति को नौकरी के लिए, देश के लिए, हमेशा बाहर-बाहर रहना पड़ता था। उसका स्वभाव कैसा था···उसका गुनाह कितना बड़ा है, यह उसे नहीं मालूम। मुमकिन है, चाहकर भी यहां आने का उपाय न रहा हो, इसीलिए उसका स्वभाव-चरित्र भी बदल गया हो! लेकिन श्यामा'दी बेचारी का ऐसा खौफनाक अंत हुआ! उन्होंने किसी एक के लिए, किसी और के आगे अपने को लुटा दिया, इसीलिए वह आत्मघात की आग में जल मरी!···लेकिन कोई मशीनी इंसान भी अगर इतना ही पत्थरदिल हो कि उसे पाना मुश्किल हो···अगर कोई और लड़की भी अपने को इसी तरह उजाड़कर लुटा दे और उसके बाद इसी तरह खुदकुशी कर ले, तो···?

नारायणी सिहर उठी। नहीं, वह अपने बारे में नहीं सोच रही थी, उसे अपने बेटे का ख्याल आ रहा था। गहरी नींद में खोये हुए राजा का चेहरा बेहद निष्पाप लग रहा था। उसका बेटा भी किसी दिन बड़ा आदमी बनेगा···काफी बड़ा आदमी···इतना बड़ा आदमी कि वह भी आसानी से किसी की पकड़ में नहीं आयेगा। किसी दिन वह भी बहुत बड़ा···बेहद अमीर आदमी बनेगा, इसमें उसे कोई शक नहीं। नारायणी आज अपने उसी बेटे के बारे में, और उस लड़की के बारे में सोच रही थी, जिसका वह हाथ पकड़कर अपने घर ले आयेगा।

नारायणी तेज-तेज कदमों से बाहर निकल आयी। उसकी आंखों के आगे अजब-सी खौफनाक विकृति उभर आयी। अच्छा, कहीं कोई हादसा होते ही, उसका

ध्यान फौरन अपने बेटे की तरफ क्यों चला जाता है ?

वैसे सारा कुछ बिलकुल भूल जाने की रसद भी उसके पास मौजूद है। लेडी वागची होते ही तमाम दुश्चिन्ताएं काफी कम हो जाती हैं। ऐसे पागलपन को हरगिज प्रश्रय नहीं देगी। लेकिन''' कितनी ही बार तो उसने कसमें खायी हैं। सारी कसमें आखिर कहां चली जाती हैं ?

आजकल शराब में कुछ मिलाने का भी धीरज नहीं रहता। विशुद्ध शराब उसके गले, सीने को जलाती हुई, बिलकुल अंदर उतर जाती है। लेकिन शराब के नशे के साथ-साथ उसके दिमाग में जमा हुआ कोई धुंधलका भी मानो पिघल आता है। इधर कई दिनों से उसने शराब नहीं पी, शायद इसीलिए उसे ऐसा महसूस हो रहा था। शराब के बगैर एक अजब-सा खालीपन उसके सीने में जमकर चट्टान बनता जा रहा था। नहीं, उसे हंसना होगा, सहज होना होगा''' खूब सहज ! लेडी वागची के अनुकूल उन्मुक्त और सहज !

नारायणी कुछेक दिनों के लिए अचानक फिर शहर से बाहर निकल पड़ी। विपुलानंद ने उसे कभी रोका भी नहीं, लौटने की तारीख भी नहीं पूछी। लेकिन इस बार उसकी मानसिक स्थिति को देखते हुए या किसी और वजह से, उसका बाहर जाना बिलकुल भला नहीं लगा। नारायणी सब कुछ जान-समझकर भी बाहर चल दी। दिमाग ठंडा करने के लिए कहीं बाहर जाना निहायत जरूरी हो आता है। कुछेक दिनों बाद, जब वह लौटी, काफी सहज और शांत नजर आयी, मानो किसी दुःस्वप्न से उबर आयी हो।

विपुलानंद से दरयाफ्त किया, "हमें चलना कब है ?"

विपुलानंद को उम्मीद थी कि इन कई दिनों में अमेरिका जाने की खब्त उतर गयी होगी।

उसने जवाब दिया, "चार दिन बाद ! तुम्हारा चलना क्या पक्का है ?"

"अरे, वाह ! चलूंगी क्यों नहीं ! तुम न'''हमेशा मुझे बरगलाने के चक्कर में रहते हो ! पासपोर्ट बनवा दिया ?"

विपुलानंद ने सिर हिलाकर हामी भरी।

नारायणी एकबारगी खुश हो गयी, "तुम अगर चाहो, तो क्या नहीं हो सकता !"

विपुलानंद ने सोचा था, अमेरिका से लौटकर, वह किसी अच्छे डॉक्टर से सलाह करेगा। लेकिन इस वक्त उसे इतनी सहज देखकर, उसे दुबारा आशा बंधी शायद अब डॉक्टर से सलाह लेने की जरूरत न पड़े। ना, परेशानी की कोई बात नजर नहीं आती। पहले भी कभी-कभार जैसे बेटे के साथ खेल-खिलवाड़ करती, आज भी वह उसके साथ खेलती रही। चैकर के खेल में, लाख छल-बल के बावजूद वह बेटे से जीत नहीं पायी, ज्योंही वह कोई गलत गोट चलती, बेटा झट पकड़

लेता। अंत में वह हार मानकर, हंसते-हंसते उठ आयी। पति के सामने बेटे की तारीफ करते हुए कहा, "वाकई, खासा दिमाग पाया है तुम्हारे बेटे ने! वक्त आने पर जरूर कोई बहुत बड़ा आदमी बनेगा।"

नौ

प्लेन से आधा रास्ता तय करने के बाद, विपुलानंद ने पूछा, "क्यों? कैसा लग रहा है?"

नारायणी जाने क्या जवाब देने जा रही थी कि बीच में खुद ही हंस पड़ी, "तुम सुनोगे तो हंसोगे। लग रहा है, मुद्दतों से संचित किसी घने अंधेरे के ढेर से अचानक उबर आयी हूं।"

उसका जवाब सुनकर विपुलानंद खामोश हो गया। अचानक उसके सिर पर कोई नयी खब्त न सवार हो जाए।

न्यूयार्क में विपुलानंद का लंबा-चौड़ा कार्यक्रम था। वहां उसे सांस लेने की भी फुरसत नहीं, काम-काज की इतनी व्यस्तता में बीवी को भी टांगे-टांगे घूमना उसे कतई भला नहीं लगता। अतः उसने सोच लिया था, वहां पहुंचते ही, वह उसके लिए कोई और प्रोग्राम तय कर देगा। न्यूयार्क में कदम रखते ही, सबसे पहले उसने नारायणी का कार्यक्रम निश्चित कर दिया।

नारायणी ने कहा भी, "सुनो, तुम मेरे लिए परेशान मत हो। दो-एक दिन रहने दो! अभी तो मेरा सिर भन्ना रहा है। बाद में, एक अच्छे-से गाइड का इंतजाम कर देना! बस, काम बन जाएगा।"

लेकिन जिंदगी का सबसे बड़ा विपर्यय उसके इंतजार में है, विपुलानंद को अंदेशा भी नहीं था। आनेवाली मुसीबत की उसे कोई खबर नहीं थी, वरना वह बीवी के या अपने कार्यक्रम को लेकर इस कदर परेशान या चिंतित न होता। अगर उसे कुछ भी अंदेशा होता तो हवा में तैरते हुए, सात समुंदर पार, यहां तक आने का भी सवाल नहीं उठता।

यहां पहुंचने के दो दिनों बाद ही, शहर के कुछेक सम्मानित लोगों के लिए डिनर का आयोजन किया गया। साड़ी में सजी-सजायी लेडी बागची के प्रति अतिथि दंपतियों की आंखों में प्रशंसा और कौतूहल था। वे लोग खुद ही उसके पास आ-आकर अपना परिचय दे रहे थे। डिनर-टेबल पर ही जाने कितने लोगों ने उन्हें अपने यहां आने का आमंत्रण दे डाला। बहुत-से लोग इस खूबसूरत विदेशिनी

से जान-पहचान को उतावले हो उठे। उनकी आधी बातें तो नारायणी के पल्ले ही नहीं पड़ी। उनसे बातचीत करने में भी अजब झमेला था।

बैरे ने आकर, विपुलानंद के सामने अदब से झुककर खबर दी—"कलकत्ते से ट्रंक-काल है।" बैरे की बात उसे सुनाई नहीं दी, लेकिन उसने उसे पति के कानों में फुसफुसाते हुए देख लिया था।

"एक्सक्यूज मी!" विपुलानंद किंचित घबराया हुआ-सा बैरे के साथ हो लिया। यहां, ऐसे बेवक्त ट्रंक-काल आने की कोई वजह समझ में नहीं आयी।

करीब दस मिनट बाद वह लौट आया।

नारायणी ने गौर किया, जो आदमी अभी हंसते-हंसते उठकर बाहर गया था, उसकी जगह मानो कोई और लौटा हो। इतनी जरा-सी देर में उसके चेहरे पर अजब-सी बौखलाहट छा गयी थी। उसके बाद खाने के वक्त लोगों से बातचीत करते हुए भी वह काफी अन्यमनस्क दिखाई दिया। नारायणी की निगाहें तीखी हो उठीं। साफ जाहिर था कि कहीं कोई हादसा हुआ है।

कुछ देर बाद, अचानक वह तबीयत बिगड़ जाने का बहाना बनाते हुए डिनर-टेबल छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

टैक्सी में भी उसने अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा।

कुछेक पलों की खामोशी के बाद, नारायणी ने ही पूछा, "क्या हुआ है?"

विपुलानंद किसी गहरे सोच में डूबा हुआ था। उसकी आवाज पर चौंक उठा, "आं? कुछ नहीं। कुछ भी तो नहीं।"

"वहां, उस आदमी ने आकर तुमसे क्या कहा था? वह तुम्हें कहां ले गया था?"

जवाब देने के पहले उसकी हिचकिचाहट पर भी निगाह पड़ी।

विपुलानंद ने कहा, "मेरा एक ट्रंक-कॉल आया था···इसीलिए···"

"कहां से?"

"कलकत्ते से···"

कुछेक पलों को चुप्पी छायी रही।

नारायणी ने दुबारा पूछा, "कलकत्ते से किसने फोन किया था?"

"मेरे दफ्तर से, सेक्रेटरी ने।"

"कोई बुरी खबर?"

"नहीं! बुरी खबर···ठीक नहीं···"

होटल लौटकर विपुलानंद की बेचैनी क्रमशः बढ़ती गयी। बेचैनी और अव्यक्त बौखलाहट। वह कहीं स्थिर होकर बैठ नहीं पा रहा था। कभी कमरे में चहलकदमी···कभी बरामदे में आ खड़ा होता। चेहरा कभी लाल, कभी फक्क। अनजाने में ही, रह-रहकर दो-चार अस्फुट वाक्य···"हाउ एबसर्ड! हाउ इम्पॉ-

सिविल !"

कमरे में कोई और भी उसकी बेचैनी पर नजरें गड़ाये देख रहा है, उसे इसका भी होश नहीं था।

दो कमरों का सूट ! दोनों ही कमरों में फोन ! बेचैनी जब बरदाश्त से बाहर हो गयी तो उसने बगलवाले कमरे में जाकर फोन उठा लिया। कलकत्ते की बुकिंग मांगी, लेकिन उसे बताया गया कि फोन कितनी रात को मिलेगा, यह बताना मुश्किल है। उसने फोन रख दिया। उसकी बेचैनी दुगुनी हो उठी। जाने क्या सोच-कर, उसने मन ही मन कोई फैसला लिया। फोन उठाकर एयर-ऑफिस का नंबर मांगा। कल ही कलकत्ते की दो टिकटें चाहिए। टिकट न मिलने पर उसने बेहद मुलायम लहजे में अनुरोध किया—उसके घर में कोई हादसा हो गया है, जैसे भी हो, कल तक दो टिकटों का इंतजाम कर दिया जाए। उन लोगों ने पक्का वादा तो नहीं किया, लेकिन यथासाध्य कोशिश करने का आश्वासन दिया।

फोन रखकर जैसे ही वह पीछे मुड़ा, नारायणी उसके पीछे ही खड़ी थी। जाने बेचैनी की वजह से या अव्यक्त बौखलाहट की वजह से विपुलानंद बीवी पर ही झल्ला उठा, "अचानक कोई जरूरी काम आ गया है, इसीलिए जल्दी से जल्दी लौटने की कोशिश कर रहा हूं ! तुम क्यों इतनी परेशान हो ?"

नारायणी की ठंडी निगाहें कुछ पलों के लिए उसके चेहरे पर टिकी रहीं, "परेशान तो तुम हो रहे हो ! परसों ही तो आये हो, अब कल ही लौटने की हड़-बड़ी क्यों ?"

"बाद में बताऊंगा !" विपुलानंद ने दुबारा फोन उठा लिया। नंबर देख-देखकर लगातार फोन मिलाता रहा। यहां के सारे कार्यक्रम रद्द कर दिये। सभी को एक ही सूचना—जरूरी काम आ जाने की वजह से, वह कल ही हिंदुस्तान लौट रहा है। कुछ ही दिनों में वह दुबारा आकर उनसे मुलाकात करेगा।

नारायणी ने बेहद सहज भाव से दरयाफ्त किया, "आठ-दस दिनों के अंदर हम दोनों दुबारा आयेंगे ?"

विपुलानंद में उसकी बातें सुनने का भी सब्र नहीं था। वह उससे कतराकर बाहर निकल गया।

ठीक आधी रात को नारायणी अपने बिस्तर से उठ बैठी। ना, विपुलानंद भी सोया नहीं था। बगल के कमरे से बातचीत की आवाजें आ रही थीं। वह उठकर दरवाजे पर आ खड़ी हुई। बीच का दरवाजा उढ़काया हुआ था, ताकि उसे पता न चले। वह बंगला में ही बात कर रहा था। यानी कलकत्ते की लाइन मिल गयी थी। विपुलानंद बेहद दबी आवाज में बातें कर रहा था, साफ सुनाई भी नहीं दे रहा था। उसने अंदाज लगाया, शायद सेक्रेटरी से बात हो रही है।

अगले दिन !

बहुत सारे लोग मिलने आये। विपुलानंद ने सभी लोगों को अपने जरूरी काम का हवाला दिया। कुछेक दिनों में बीवी के साथ दुबारा आने का वादा किया।

प्लेन में अचानक उसे होश आया। उसके रंग-ढंग और मूड की वजह से उसकी बीवी इस कदर घबड़ा गयी है कि उसकी जुबान बंद हो गयी है। भय से पीली पड़ी हुई, बस, रह-रहकर उसे एकटक देखने लगती। विपुलानंद ने दुबारा सहज होने की कोशिश की। उसे बहलाने के लिए उसकी बातचीत की कोशिश बेहद बचकानी लगी।

उसने फिर वही घिसी-पिटी बात दोहरायी, "तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है न ? देखना, लौटकर ही, फिर यहां आने की टिकट बुक करा लूंगा। तुम्हें भी मेरे साथ आना होगा।"

नारायणी की ठंडी निगाहें, चुपचाप उसके चेहरे पर गड़ गयीं। विपुलानंद उससे आंखें नहीं मिला पा रहा था।

नारायणी ने बेहद धीर-गंभीर और शांत आवाज में पूछा, "लेकिन हुआ क्या है, यह तुमने अभी तक नहीं बताया।"

"होना क्या है ! अचानक···"

"अचानक हो या चाहे जैसे···तुम बताओ तो सही। खबर चाहे जैसी भी हो, मैं तुमसे ज्यादा नहीं घबराऊंगी ! बताओ तो, क्या हुआ है ?"

विपुलानंद को लगा, वह उसे चकमा नहीं दे पायेगा। नारायणी के चेहरे से साफ जाहिर था कि वह बड़े से बड़े हादसे की खबर सुनने के लिए अपने को तैयार कर चुकी है। शायद उसके बौखलाये हुए रंग-ढंग से उसने कुछ-कुछ अंदाजा भी लगा लिया है। इसके अलावा वह वाकई अंदर ही अंदर इस कदर बौखला गया है कि उससे अपनी बेचैनी छिपायी भी नहीं जा रही।

विपुलानंद ने हिचकिचाते हुए कहा, "बड़ी मामूली-सी बात है। ईडियट कहीं है, और क्या ? मुमकिन है, पर पहुंचकर पता चले सब ठीक-ठाक है !" उसने अपने लहजे को और हल्का बनाते हुए कहा, "गब्बू राजा को सरकस दिखाने ले गया था। बेटे ने जिद पकड़ ली, वह ट्राम में चढ़ेगा, सो वह उसे ट्राम में ही ले गया। असल में इस कमबख्त गब्बू को किसी जन्म में अक्ल नहीं आयेगी। शायद वह खुद भी सरकस देखने में मस्त हो गया। भीड़-भाड़ में लड़के पर निगाह नहीं रख सका। लड़का गुम हो गया, लेकिन घर में किसी को खबर नहीं दी, खुद ही आधी रात तक ढूंढता फिरा। अंत में हारकर घर लौटा, तब और लोगों को खबर दी। अगले दिन सुबह तक भी जब लड़का नहीं मिला, तो सेक्रेटरी ने मुझे फोन करके सूचना दी।"

नारायणी निस्पन्द मूरत की तरह बैठी रही। उसके चेहरे पर एक सलवट तक नहीं उभरी, मानो उसे होश ही न हो।

विपुलानंद ने हड़बड़ाकर उसके कंधे पर हाथ रखा। आज भोर में भी उसने ट्रंककाल किया था, राजा अभी तक नहीं मिला—यह बात वह छिपा ले गया; लेकिन उस फोन की बातचीत तो नारायणी ने खुद भी सुनी थी।

विपुलानंद ने उसे तसल्ली देते हुए कहा, "सुनो, तुम बिलकुल परेशान मत हो! जीता-जागता लड़का कहीं हवा में तो उड़ नहीं जाएगा। इसके अलावा, मेरे कर्मचारी लोग भी हाथ पर हाथ धरे तो बैठे नहीं हैं। घर पहुंचकर तुम देखोगी, बेटा, हंसता-खेलता घर में ही घूम-फिर रहा है!"

सारे रास्ते विपुलानंद उसे बार-बार धीरज बंधाता रहा। अचानक फिक्र होने लगी, इसीलिए वे लोग जा रहे हैं; वरना अब तक सब कुछ ठीक-ठाक भी हो चुका होगा। असल में उससे गलती हो गयी। झट से लौट आने की बजाय वह फोन पर ही खबर लेकर, निश्चित हो सकता था। आखिर वह उसका बेटा है! उसके बेटे को कलकत्ता शहर में खोज निकालना जरा भी मुश्किल नहीं है। दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं, जहां कोई उसके बेटे को जान-बूझकर छिपाये रख सके। इसमें परेशानी की भी कोई बात नहीं; लौटकर उन्हें उनका बेटा घर पर ही मिल जाएगा।

नारायणी निश्चल काठ हो आयी थी।

महल में पांव रखते ही, विपुलानंद के सीने पर मानो हथौड़े पड़ने लगे। वह मानो किसी अजनबी जगह लौटा हो। सारे घर में श्मशान की तरह सन्नाटा। यह घर इतना मनहूस कभी नहीं लगा। किसी को भी बताने की जरूरत नहीं पड़ी कि बेटा अभी तक नहीं मिला।

विपुलानंद बिलकुल सन्न! ऐसा भी हो सकता है, उसे मानो यकीन ही न आ रहा हो। मानो वह कोई खौफनाक सपना देख रहा हो। यह सपना ऐसा दहशत-भरा था, कि अपने ही घर में दाखिल होते हुए, नींद नहीं टूट रही। शिल्पपति विपुलानंद बागची मानो कोई बचकाना-सा दुःस्वप्न देख रहा हो। उसका अपना बेटा, शहर कलकत्ता से लापता हो गया।

थोड़ी देर बाद ही उसकी तंद्रा टूटी। उनके लौट आने की खबर बहुतों को मिल चुकी थी। उसके सेक्रेटरी और विभागीय कर्मचारी भी आ पहुंचे। तमाम गण्यमान्य लोगों की भीड़ लग गयी। नहीं, यह सपना नहीं है! सचमुच सभी के चेहरे सूखे हुए! उन लोगों ने बताया—समूचे कलकत्ते शहर के चप्पे-चप्पे में तलाशी चल रही है; बाहर भी चारों तरफ खबर भेज दी गयी है; रेडियो और अखबारों के मार्फत भी कोशिश जारी है।

लेकिन शुरू में ही थोड़ी-सी देर हो गयी थी। उस बेवकूफ नौकर की ही

वजह से देर हुई। रात डेढ़-दो बजे तक, राजा की खोज में रास्ते-रास्ते भटकता रहा; घर में उसने खबर भी नहीं दी। अतः वह रात यूं ही कट गयी। इसीलिए अखबारों में राजा की तसवीर निकलने में एक दिन देर हो गयी। हालांकि पुलिस ने उसकी तलाश में अपने भरसक कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी; अभी भी भरपूर कोशिश में लगी है। सारा का सारा पुलिस विभाग लड़के की तलाश में मुस्तैद हो जाए, ऐसा इंतजाम भी किया जा चुका है।

विपुलानंद के कान तक गब्बू के खिलाफ और भी कई शिकायतें पहुंची हैं। घर के और नौकर-चाकरों की शिकायत है कि साहब-मेमसाहब की अनुपस्थिति में वही मानो राजा का कर्ता-धर्ता-मालिक बन बैठा था। जब-तब उसे लेकर बाहर निकल जाता; ट्राम-बसों की सैर कराता रहा, देर-देर से घर लौटता--कोई कुछ कहने गया तो उस पर आग भभूका हो उठा।

वापस आने के घंटे भर बाद ही विपुलानंद बाहर निकल गया। काफी रात गये घर लौटा; थका-हारा टूटा हुआ। तमाम पुलिस थानों के पांच-पांच बार चक्कर लगाये, गुप्तचर विभाग भी हो आया; बेटे को खोज निकालने में और भी लोग लगाये। अखबार के दफ्तरों के भी फेरे लगाये, पागलों की तरह बहुत-सी संभव-असंभव जगहों में भी राजा को ढूंढ़ता फिरा। लेकिन अभी तक मानो उसे इस सच पर यकीन न आ रहा हो। हर पल उसने इसी उम्मीद में गुजारे है कि उसे फौरन कोई खबर मिलेगी। घर पहुंचकर, उसे पता चलेगा राजा फलां जगह, फलां आदमी को मिला था, वह उसे घर पहुंचा गया है।

दूसरे मंजिल पर जैसे ही उसने नारायणी के कमरे में कदम रखा, वह चौंक गया। सुबह से अब तक उसका तो ख्याल ही नहीं रहा था। दूसरे मंजिल तक आते-आते अचानक उसे बीवी का ख्याल आया। ऐसी पथरायी हुई सूरत शायद उसने पहले कभी नहीं देखी। उसकी देह में मानो कोई हरकत ही न हो; समूचे चेहरे पर बूंद-भर भी खून नहीं।

शिल्पपति विपुलानंद मानो किसी झटके से आत्मस्थ हो आया।

उसने निहायत बेसब्री से उसे जबरन तसल्ली देते हुए कहा, "तुम इतनी घबरा क्यों रही हो? कहीं न कहीं वो होगा ही! बस, आया ही समझो। वैसे भी होना क्या है? हो क्या सकता है? मेरे बेटे को कोई छिपाकर रख ले, दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं, समझीं?"

नारायणी को देखकर लगा, उसके कानों तक उसकी तसल्ली का एक भी शब्द नहीं पहुंचा। अतः उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे होश में लाने की कोशिश की, "सुन रही हो? तुम बिलकुल फिक्र मत करो। कल तक जरूर खबर मिल जाएगी।"

इतनी देर बाद नारायणी ने सिर्फ एक बार उसकी तरफ सिर उठाकर देखा,

लेकिन कोई वात नहीं की।

विपुलानंद उसके लिए डॉक्टर बुलाने की सोच रहा था। लेकिन उसका अपना ही सिर बुरी तरह चक्कर खा रहा था। वह कमरे से वाहर निकलकर, वगलवाले कमरे में दाखिल हुआ। गले में थोड़ी-सी विशुद्ध शराव उंडेली! जिंदगी में शायद पहली बार उसका संयम टूट रहा था। उसका सिर और बुरी तरह चकराने लगा। जाने क्या सोचकर वह हाथ में वोतल लिये हुए, दुवारा नारायणी के कमरे में लौट आया।

उसने पूछा, "थोड़ी-सी पीयोगी? लो, पी लो न! अच्छा लगेगा! सुनो, इतनी फिक्रमंद क्यों हो? दूं, थोड़ी-सी?"

वेजान मूरत की तरह नारायणी ने अपनी आंखें विपुलानंद के चेहरे पर टिका दीं। उसने सिर हिलाकर मना कर दिया।

अगले दिन भी वह सुवह का निकला-निकला शाम को घर लौटा। थाने में वहुत से संदिग्ध लोगों को पकड़ लाया गया था। पुलिस उनसे जिरह करती रही, दो-चार तमाचे और लात-घूंसे भी जड़े। ये लोग पुलिस की नजर में दागी आसामी थे। लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।

घर लौटने के बाद भी विपुलानंद की आंखें गुस्से से सुलग रही थीं। वह समूचे कलकत्ते शहर को तहस-नहस कर डालेगा, कलकत्ते के वाहर भी प्रलय मचा देगा। थाने में जिन लोगों को गिरफ्तार करके लाया गया था, वे कैसे अपराधी हैं, यह जाने वगैर ही, अगर उसका वश चलता, तो वह उन्हें गोलियों से भून देता; उन्हें कुत्तों की मौत मार डालता। खैर, जरूरत हुई, तो वह यही करेगा; एक-एक को गोली से उड़ा देगा; मारते-मारते उनकी चमड़ी उधेड़कर, उनकी वोटी-वोटी काट डालेगा।

शाम होने ही वाली थी। आज वह लिफ्ट से नहीं, सीढ़ियां चढ़कर दूसरे मंजिले पर आया। इतने दिनों से वह वेटे के कमरे में भी नहीं गया। उस कमरे पर नजर पड़ते ही उसका दम घुटने लगता है। लगता है, जैसे कोई हड्डी-पसली तोड़े डाल रहा है।

आज छाती पर पत्थर रखकर, वह वेटे के कमरे में आया।

अरे, अंधेरे कमरे में मूर्ति वना कौन खड़ा है? वह चौंक उठा, उसने हड़वड़ाकर वत्ती जलायी।

शरीर का सारा खून मानो दिमाग में जमा होने लगा। उसके सामने पत्थर की मूरत की तरह गव्वू खड़ा था। उसकी तरफ डवर-डवर देख रहा था। इस आदमी की वात तो वह भूल ही गया था।

"लड़के को लेकर यूं वाहर क्यों निकला था?"

कोई जवाव नहीं मिला। अचानक गव्वू के गाल पर उसकी पांचों उंगलियों

के निशान उभर आये।

विपुलानंद दबी आवाज में दहाड़ उठा, "तूने उसका हाथ क्यों छोड़ा ? क्या कर रहा था तू ?"

इस बार भी कोई जवाब नहीं।

विपुलानंद में जवाब सुनने का धीरज भी नहीं बचा था। अचानक दीवाल से झूलते, राजा के नन्हें चाबुक पर निगाह पड़ गयी। विपुलानंद भूल गया कि वह शिक्षित, शरीफ शिल्पपति है। उसे यह भी होश नहीं रहा कि ऐसी भाषा उसके मुंह से शोभा नहीं देती। किसी आदिम हिंसा में जलते हुए उसने दिशाहारा की तरह चाबुक मार-मारकर उसकी पीठ की खाल उधेड़ डाली। गब्बू निश्चल खड़ा रहा। रह-रहकर उसकी देह जरूर कांप जाती, लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ, मुंह से उफ तक नहीं की।

मारते-मारते जब चाबुक के दो टुकड़े हो गये, तो विपुलानंद को मानो होश आया। उसकी पीठ के जख्मों पर नजर पड़ते ही उसके हाथ ठिठक गये। गब्बू उसी तरह पत्थर बना खड़ा रहा। विपुलानंद ने चाबुक फेंक दिया और डगमगाते कदमों से बाहर निकल गया। घर के बाकी नौकर-चाकर सीढ़ी पर खड़े थर-थर कांप रहे थे। नारायणी भी अपने कमरे के दरवाजे पर निस्पंद प्रतिमा-सी खड़ी थी।

विपुलानंद उससे कतराकर, डगमगाते कदमों से बगलवाले कमरे में चला गया।

नारायणी जाने कब तक उसी तरह पथरायी खड़ी रही। लेकिन उसका दिल कह रहा था, कहीं कुछ नया घटा है, जिसकी वजह से सभी लोग तटस्थ हो गये हैं। लेकिन वह किसी नयी घटना के बारे में सही-सही अंदाज भी नहीं लगा पा रही। उसके सोचने-समझने की समूची ताकत ही मानो गड़बड़ा गयी हो।

उसने आगे बढ़कर एक बार नौकरों पर नजर डाली। उसके बाद अनजाने में ही उसके कदम बेटे के कमरे की तरफ उठ गये।

गब्बू जमीन पर बैठा हुआ था। चूंकि वह मुंह फेरे बैठा था, अत: सबसे पहले उसकी पीठ ही दिखाई दी। उसकी लहूलुहान पीठ और घाव के ताजा निशान देखकर वह किसी अव्यक्त यत्रणा से सिर्फ एक बार सिहर उठी।

गब्बू ने गरदन घुमायी; धीरे-धीरे वह उसकी तरफ सीधे होकर बैठ गया। उसके चेहरे पर मार के दाग उभर आये थे। गब्बू की निगाह एकटक उसके चेहरे पर गड़ी रही। दोनों एक-दूसरे को देखते रहे, मानो बिलकुल नये सिरे से देख रहे हों।

नारायणी कमरे से बाहर निकल आयी। शिथिल कदमों से चलती हुई, अपने कमरे में दाखिल हुई और चुपचाप बैठ गयी। गब्बू की देह पर उभरे हुए रक्त ही

मानो उसे धकेलकर वाहर ले आये। उसने कमरे की वत्ती भी नहीं जलायी। लगभग घंटे भर अंधेरे में ही वैठी रही।

अचानक कमरे की वत्ती जल उठी। सामने विपुलानंद खड़ा था। उसके श्रांत-क्लांत चेहरे पर विरक्ति की छाप थी। उसकी भौंहें भी चढ़ी हुई थीं।

उसने लगभग घुड़ककर कहा, "ऐसी मुर्दा-सी क्यों वैठी हो ? हिम्मत हारने जैसी कौन-सी वात हो गयी ? कोशिश में तो लगे हैं—"

नारायणी ने सिर उठाकर, अपनी निस्तेज, बुझी हुई आंखों से विपुलानंद को देखा। थोड़ा ठहरकर उसने अस्फुट आवाज में कहा, "गव्वू को तुमने इतनी वुरी तरह मारा है!"

विपुलानंद दुगुनी विरक्ति और क्रोध से मानो पागल हो उठा। उसके वेटे के लिए एकमात्र वही आदमी जिम्मेदार है, वरना ऐसा वज्र मूर्ख आदमी, कभी इस घर की दहलीज भी नहीं लांघ पाता!

वह हुंकार उठा, "अभी क्या हुआ है; अगर मेरा वेटा नहीं मिला, तो मैं उसका खून कर डालूंगा।"

नारायणी ने उसकी आंखों में आंखें डालकर सवाल किया, "वेटा मेरे हाथ से भी गुम हो सकता था। अगर मुझसे खो जाता तो क्या करते ?"

विपुलानंद वीवी को सांत्वना देने आया था। उसके इस सवाल पर तिलमिलाकर पैर पटकते हुए कमरे से वाहर निकल गया। डॉक्टर बुलाना वेहद जरूरी है। रीना को दिखाना ही होगा। वरना ऐसे वक्त में अदना-से नौकर की पिटाई पर कोई इस कदर दुखी हो सकता है ?

लेकिन असल वात तो यह थी कि अंदर ही अंदर वह खुद नर्वस हो उठा था। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। वह जाने क्या-क्या सोचता रहता, लेकिन सोच-विचार की समूची ताकत मानो किसी अंधेरी वंद गली में गुम होती जा रही है। उसके पास इतनी अगाध दौलत है, असीम ताकत है, फिर भी वह कुछ कर पाया ? एक नन्हें-से वच्चे की तलाश में सारी की सारी पुलिस और जासूस विभाग, जी-जान से लगा हुआ है, अखवारों ने तहलका मचा दिया है। उसके कृपाकांक्षियों की भीड़ लगी हुई है, लेकिन फिर भी वह कितना असहाय और निरुपाय है! काश, कोई जान पाता!

रीना ने अपनी जुवान से कुछ नहीं कहा लेकिन अचानक ही विपुलानंद को लगा, मानो वेटा खो जाने के लिए वह दिन-रात वस उसी को जिम्मेदार समझ रही है। उसका वेटा जो आज घर में नहीं है, इसके लिए वही जिम्मेदार है। हां, विपुलानंद ही जिम्मेदार है! लेकिन रीना उस पर ऐसा असंभव आरोप क्यों लगा रही है ? क्यों ? क्यों ? आखिर क्यों ? खैर, रीना सोचने के लिए आजाद है। वह सोच सकती है। यह सोचते हुए उसके दिमाग में एक और वात कौंध गयी।

उसकी कंपनी से छंटाई किये हुए लोगों ने उसके यहां घेराव किया था, हठात उस दिन की तसवीर उसकी आंखों में तैर गयी।

राजा ने एयर-गन चलायी थी। उन लोगों ने उसे आवाज दी थी कि वह सामने आकर उन्हें गोलियों से भून दे। रीना डर से पीली पड़ गयी थी। उसने घबराकर कहा था, "वे लोग उसे बुला रहे हैं। कहीं उसका कोई अशुभ न हो।" उन लोगों की नौकरी खत्म कर दी गयी।

विपुलानंद लगभग दौड़ता हुआ नीचे उतरा और तेज-तेज स्पीड में गाड़ी हंकाकर जाने किधर उड़ गया।

उस दिन उस दगल में कुछेक लफंगे किस्म के लोग भी थे। उन लोगों का सरदार भी उसी भीड़ में मौजूद था! ···

मालिक के कदमों की आहट सुनकर सेक्रेटरी दौड़ा आया। विपुलानंद के निर्देश पर सेक्रेटरी ने दस मिनट के अंदर, उनका और उनके सरदार का पता-ठिकाना खोज निकाला।

विपुलानंद गाड़ी लेकर थाने की तरफ रवाना हो गया।

थाने में वह करीब पंद्रह मिनट रुका रहा। उसके बाद घर लौटकर अधीर आग्रह से इंतजार करने लगा। रह-रहकर उसकी नजरें घड़ी की तरफ उठ जातीं। उफ! समय मानो कटना ही नहीं चाहता। करीब घंटे-भर बाद थाने से खबर आयी, जिन लोगों को नौकरी से निकाला गया था···उन्हें और उनके सरदार को पकड़ लाया गया है। उन्हें यथासंभव खूब डराया-धमकाया भी गया, लेकिन वे लोग इस साजिश में शामिल नहीं लगे।

विपुलानंद मानो समझने को ही राजी नहीं था। उसके मन में यह शक जड़ जमाकर बैठ गया था—यह काम उन्हीं लोगों का है। उनके अलावा उसका और कोई दुश्मन है? उसे बार-बार यही लग रहा है, पुलिस कुछ नहीं कर रही है। उन लोगों को जब तक बेरहमी की चक्की में पीसा न जाए, वे लोग भला कबूल करेंगे?

एक-एक करके ढेर सारे दिन गुजर गये। महीना-भर होने को आया। दिन इतने दुस्सह और मर्मांतक भी हो सकते हैं, उसे कल्पना भी नहीं थी। उठते-बैठते हर वक्त मुसीबत की खौफनाक छाया दिखाई देती है। उसका बेटा मुसीबत में है। हर पल उसकी रुलाई, उनकी आवाजें दिमाग पर हथौड़े-सी चोट करती रहतीं। हर वक्त छाती फटती रहती। दौलत और सामर्थ्य के अहंकार में प्रतिशोध की जो सर्वध्वंसी प्रवृत्ति, उसके सीने पर नाखून गड़ाये बैठी थी ··· इतने दिनों बाद मानो निस्तेज होने लगी। धीरे-धीरे वह निष्क्रिय विषाद की खामोश

में डूबता जा रहा था। मुसीबत में फंसे अपने बच्चे के बारे में तरह-तरह की आशंका और चिंता-फिक्र दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। वैसे वह अपनी भरसक कोशिश कर रहा था कि ऐसी दिल तोड़ देनेवाली चिंता-फिक्रों से नजात पा सके।

इस एक महीने में न उसने कोई काम-काज किया, न कोई फाइल देखी। किसी चेक तक पर दस्तखत नहीं किया। कोई काम-धाम लेकर किसी ने उसके पास आने की हिम्मत भी नहीं की। फिर भी कहीं कुछ रुका हुआ नहीं था। उसके काबिल अधिकारी सारा काम बड़े मजे में चला रहे थे। उसने पहली बार महसूस किया, उसके बगैर कहीं कुछ रुका नहीं रहेगा। ऐसी मनःस्थिति के बावजूद उसने महसूस किया, उसने अपने को काफी बड़ा, काफी समर्थ समझ लिया था, अपनी ही दानवी छाया तले मानो वह ढंक गया था।

विपुलानंद के अंदर ही अंदर कहीं कुछ तेजी से बदलता जा रहा था। उसकी बाहरी आंखें ही नहीं, दिल की आंखें भी मानो पूरी तौर पर सजग रहने लगी थीं। हर दिन उसकी गाड़ी, जाने कितने-कितने मीलों का चक्कर लगाया करती। यूं ही निरुद्देश्य यहां-वहां भटकता रहता। कभी-कभी बस्ती के आस-पास, गरीबों की दुनिया में घूमता रहता। उसकी खोजभरी निगाहों ने शहर का चप्पा-चप्पा छान मारा। इसी तलाश के दौरान शायद अनजाने में ही उसकी आंखों के आगे एक नयी दुनिया उजागर हो उठी। वह दुनिया उसने पहले कभी नहीं देखी थी। आजकल उसके मन में ऐसे-ऐसे अहसास जागने लगे हैं, जिनके बारे में, उसने कभी सोचा भी नहीं था।

उस दिन···फुटपाथ पर दो बच्चे बैठे थे। एक की उम्र दस, दूसरे की छह-सात साल! नहीं, इन फुटपथिया बच्चों पर निगाह डालने की, पहले उसे कभी फुरसत नहीं थी। उसके आगेवाली कार बेहद धीरे-धीरे जा रही थी। उसने गौर किया, छोटा बच्चा रोये जा रहा था, बड़ा बच्चा उसे कुछ खाना देकर फुसलाने की कोशिश कर रहा था। फुटपाथ के दो नंगे, घिनौने बच्चे!

विपुलानंद की गाड़ी कुछ दूर जाकर ठहर गयी। अनजाने में ही उसने ड्राइवर को गाड़ी रोकने का हुक्म दे डाला। विपुलानंद गाड़ी से नीचे उतरा। दोपहर के सन्नाटे में किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। निःसंकोच उनके सामने जाकर खड़ा हो गया। बड़े बच्चे की हैरान निगाहें उसके चेहरे पर टिक गयीं, छोटे का रोना भी अचानक थम गया।

विपुलानंद के सीने में अजब-सा दर्द जाग उठा। उसकी आंखों के आगे, भूख-प्यास से व्याकुल एक और बच्चे की रुआंसी सूरत तैर गयी। उस बच्चे को अभाव या भूख-प्यास की कोई जानकारी नहीं। विपुलानंद ने जबरन उस ख्याल को दूर धकेल देने की कोशिश की। उसने उस बच्चे से रोने की वजह पूछी। पता चला, जितना-सा खाना जुटा था, छोटा बच्चा अकेले ही खाना चाहता था। लेकिन

उसमें से कुछ हिस्सा बड़े बच्चे ने भी ले लिया था, इसीलिए वह रो रहा है।

विपुलानंद ने दिल के किसी कोने में अजीब-सी ठंडक महसूस की। यह ठंडक ...यह शांति सर्वथा नयी थी, इस वक्त उन विमूढ़ बच्चों की गंदी शक्लें भी कहीं से भद्दी नहीं लग रही थीं। खुद भूखे पेट रहकर, वह दस साल का बच्चा, अपने नन्हे भाई से खाने की खुशामद कर रहा था। वह सचमुच चकित हो उठा। उसकी आंखों में किसी अनजान अनुभूति की छाया तैर गयी। बड़े बच्चे के हाथ पर पांच रुपये का एक नोट रखकर, वह तेज-तेज कदमों से लौट आया। गाड़ी में बैठते ही उसने अपना चेहरा दूसरी तरफ घुमा लिया। ड्राइवर भी अपने मालिक के इस रूप पर आश्चर्य में पड़ गया था।...विपुलानंद उन बच्चों से ढेर सवाल करना चाहता था। उसका बहुत कुछ जानने को मन हो आया था। आदमी के मन में कभी ऐसी चाह भी जागती है, विपुलानंद को ज्ञात नहीं था। वह सोच रहा था, अगर उन बच्चों के लिए सिर छिपाने का कोई आश्रय होता, मां-बाप जैसा कोई उनकी देख-रेख करता, अगर उनके लिए दोनों वक्त के खाने का इंतजाम होता, तो बेहतर होता। विपुलानंद अपने इस अहसास पर खुद ही चकित था। ये सब ख्याल मन को कितनी राहत देते हैं।

इस बीच वह दूर-पास के कई अनाथालयों का भी चक्कर लगा चुका था। वहां जाने का भी सिर्फ वही एक मकसद था—मुमकिन है, बेटे का पता मिल जाए।

बेटा नहीं मिला।

लेकिन उसकी तलाश के दौरान उसे जो मिला, उसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। इन सर्वहारा लोगों के अंदर, अजीब-सा हमदर्द मन होता है। जिसने भी उसका बेटा गुम जाने की खबर सुनी, वाकई दुखी हुआ। कहां-कहां उसकी तलाश की जाए, इस बारे में हर कोई जल्पना-कल्पना में व्यस्त हो गया। विपुलानंद ने उनकी अभावग्रस्त जिंदगी देखी। उनके पास कुछ भी तो नहीं था! ऐसे मोहताज चेहरों की वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। लोभ, स्वार्थ और भूख-प्यास के बावजूद उनमें कहीं कुछ ऐसा भी था, जो उसके पास नहीं है। किसी दिन था भी नहीं! इन लोगों के मन में दूसरों के दुःख के प्रति थोड़ी-बहुत हमदर्दी है, जिसकी खबर शायद खुद इन्हें भी नहीं है। कोई बीमार हो जाए, तो दूसरे उसकी देख-भाल करते हैं। इन लोगों को जो मिलता है, उसे वे बांटकर खाना जानते हैं। मुमकिन है, इस वजह से कहीं से अतृप्त और दुखी भी हों, लेकिन यही उनके जीने की रीत बन चुकी है। इसी के वे अभ्यस्त भी हो चुके हैं।

हां, किसी को नहीं मालूम, इस बीच शिल्पपति विपुलानंद ने कितने ही अनाथालयों में कितने लाख रुपये दे डाले और कितने लाख देने का वादा कर चुका है। रुपये जिन्हें मिले, बस, उन्होंने उस दान के बारे में जाना; और किसी को

कानोंकान खबर नहीं हुई। देने में भी इतनी तृप्ति होती है, उसे अंदाजा भी नहीं था। वह तो मानो देकर ही कृतज्ञ हो आया है। जितनी वार, जहां कहीं भी उसने रुपये दिये, उसे वार-वार यही लगा, मानो उन्हें लेने के लिए उसके नन्हें वेटे राजा के ही हाथ फैले हुए हैं!

वेटे की याद आते ही उसकी सांस अटकने लगती है। इन दिनों उसे सांस लेने में भी तकलीफ होती है। अव वह क्या करे? कहां खोजे? इतनी वड़ी सारी दुनिया के जाने किस कोने में उसका राजा खो गया है! रा-जा!

वीवी के लिए भी अव वेहद फिक्र होने लगी है। वह वार-वार उसके पास जाता है, उसके और करीव होने की कोशिश करता है। लेकिन उसकी निर्वाक स्तव्धता भी ज्यादा देर तक सही नहीं जाती। वह उठ जाता है। रीना अगर पहले की तरह शराव में डूवी रहती, तो उसे खुशी होती, लेकिन अव तो वह शराव को हाथ भी नहीं लगाती। पिलाने की कोशिश करो तो सिर हिलाकर मना कर देती है। वस, एकटक उसके चेहरे की तरफ देखती रहती है।

उस दिन रीना ने वहुत अजीव वात कही थी। उसने कहा था, "तुम तो इतने वड़े हो! तुम्हारी ऐसी हालत क्यों है?"

विपुलानंद एक परिचित डॉक्टर ले आया था।

रीना ने कहा, "डॉक्टर साहव, मुझे कुछ नहीं हुआ। मुझसे ज्यादा तो ये वीमार हैं—इन्हें ही देख लीजिए।"

इन दिनों रीना की पार्टी, मीटिंग, शूटिंग—सव वंद हो गयी हैं। अव कौन आता? कौन वुलाता? हां, दूसरे महीने, वह दो-दो वार, तीन-चार दिनों के लिए कहीं वाहर गयी थी। जाते समय भी उसने किसी से कुछ नहीं कहा। खैर, अव तो वह किसी से वात ही नहीं करती। विपुलानंद का ख्याल था, वह भी वेटे की तलाश में जाती है। उसने उस कभी रोका भी नहीं। डॉक्टर ने उसकी किसी भी इच्छा में वाधा देने को मना किया है। लेकिन फिक्र तो होती ही है! जव भी वह कहीं जाती है, उसके लौटने तक वह वेतरह परेशान रहता है।

विपुलानंद ने उम्मीद नहीं छोड़ी थी। वैसे उम्मीद का दमन थामे हुए, अव उसका आत्मविश्वास, आश्चर्यजनक रूप से कमजोर पड़ता जा रहा है। कभी-कभार दफ्तर भी जाता है। उसे देखकर लोग पहले की तरह ही सहम जाते हैं। लेकिन अव उसे परेशानी होती है। उसे लगता है, लोग उसे प्यार नहीं करते, वरना यूं आतंकित नहीं होते। सम्मान और प्यार में कहीं वहुत वड़ा फर्क है, विपुलानंद क्या यह पहले जानता था!

आम लोगों की तरह, शिल्पपति विपुलानंद वागची भी, कुछेक नामी-गिरामी ज्योतिषियों की शरण में गया। उनके निर्देशानुसार, चोरी-चोरी पूजा वगैरह भी करायी। ऐसे में उसे आसमान में रहनेवाले तानाशाह हुक्मरान की भी याद आयी

है। उसे प्रार्थना करना नहीं आता, [illegible] ... [illegible] है, कहीं कोई शक्ति जरूर है, [illegible] ... [illegible], तब उस शक्ति के चरणों में झुककर [illegible] ... [illegible] असीम शांति मिले! हाँ, आजकल [illegible] ... [illegible] प्रार्थना में डूबा रहता है। [illegible] ... [illegible] दीन-हीन, अनाथ बच्चों के चेहरे भी [illegible] ... [illegible] की तलाश में, कई दिन [illegible] ... [illegible] धालयों के दीन-हीन, [illegible] चेहरे भी दिखाई [illegible] ... [illegible] उनके लिए भी [illegible] ... [illegible] राहत भी मिलती है। कभी-कभी [illegible] ... [illegible] ऐसी शांति उतर आये, तो [illegible] ... [illegible] वह दस मिनट भी बैठ नहीं [illegible] ... [illegible] झटका देकर उठा देता है!

विपुलानंद अपना [illegible] ... [illegible] था, जो छंटाई [illegible] ... [illegible] कर गजा को [illegible] ... [illegible] उसका नाम है—[illegible] ... [illegible]

[illegible]

विपुलानंद ने लंबी उसांस भरकर कहा, "मुझसे गलती हो गयी, साहू ! उस दिन मेरा दिमाग ठिकाने नहीं था···।" अचानक उसका गला रुंध आया, "आज तक मेरे बेटे का पता नहीं, साहू ! तुम लोग···उसके बारे में क्या सचमुच नहीं जानते ?"

अशुभ मूर्ति-सा निरंजन साहू उसकी तरफ किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा देखता रहा। पता नहीं, वह क्या जानना चाहता था ! अचानक उसने झुककर विपुलानंद का पैर पकड़ लिया, "हुजूर···हम कुछ नहीं जानते ! देखिए, ये रहे मेरे बच्चे···इन्हें मैं भरपेट खिला-पहना भी नहीं सकता, लेकिन फिर भी ये मेरे कलेजे के टुकड़े हैं। हम लोग चाहे जितने भी शैतान हों, खुद बाप होकर किसी के बेटे का नुक-सान नहीं कर सकते, हुजूर ! हम लोग इतने पत्थर-दिल नहीं हैं ! बहुत देर हो गयी है सरकार, लेकिन फिर भी हम वचन देते हैं--आज से हमारा एक-एक आदमी आपके बेटे की खोज में शहर का चप्पा-चप्पा छान मारेगा···"

फिर वही शांति की लहर जिसे विपुलानंद ने पहले कभी अनुभव नहीं किया। उसने गरदन घुमाकर उन नन्हें-नन्हें बच्चों पर एक नजर डाली। उससे कुछ बोला भी नहीं गया, उसने निरंजन साहू के कंधे थपथपाये और चल पड़ा।

उसी दिन उसने अपने सेक्रेटरी को बुलाकर निर्देश दिया, "निरंजन साहू और उसके जितने साथी बरखास्त किये गये थे, उनके घर खबर भेजकर उन्हें आने को कहो, आज ही। जरूरत होगी तो जितने दिन उनको कोई काम नहीं दिया जाता, उन्हें बैठाकर तनखाह दी जाएगी। पिछले जितने महीने वे बेकार रहे, आज उन महीनों की भी तनखाह देने का इंतजाम किया जाए। उन्हें खबर भेज दी जाए, कोई नौकरी से बरखास्त नहीं हुआ।"

सेक्रेटरी की विस्मित दृष्टि से बचने के लिए ही वह निर्देश देकर झटपट कमरे से बाहर निकल गया।

दस

उसके बाद···

उसके बाद, शायद वह सुबह आयी थी···उसकी तमाम जिंदगी के तमाम दिनों से अलग-थलग !

खैर, नारायणी भी इस स्थिति के लिए प्रस्तुत थी। काफी दिनों पहले से ही उसने अपने आपको हर तरह के अंजाम के लिए तैयार कर लिया था। लेकिन

उस सुबह विपुलानंद को देखते ही वह इतनी बुरी तरह चौंक क्यों गयी ?

हां, वह बुरी तरह सकपका गयी···उसके बाद ही निस्पंद काठ हो आयी।

विपुलानंद को कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी। उसका चेहरा देखकर ही नारायणी को जो समझना था, उसने समझ लिया। पिछले तीन महीनों से उसकी रोयी-रोयी आंखों की जगह आज उसकी खामोश जलती हुई निगाहें देखते हुए उसे जो समझना था, समझ लिया।

विपुलानंद के हाथ में तीन पन्नों का लंबा टेलिग्राम था। कलकत्ते के बाहर से आया था। पुलिस या जासूस विभाग से वह तार किसी ने कलकत्ता भेजा था। वहां से आदमी भी भेजा गया था। लेकिन विपुलानंद ने उस तार या आदमी के बारे में उसे कुछ नहीं बताया। तार का मजमून भी नहीं बताया। बस वह स्तब्ध और जलती हुई निगाहों से अपनी बीवी की तरफ देखता रहा। हां, वह रीना को नहीं, नारायणी को देख रहा था !

नारायणी इतने में ही सारा कुछ समझ गयी।

लेकिन थोड़ी देर बाद विपुलानंद ने जुबान भी खोली। उसकी जुबान से निकला हुआ एक-एक शब्द, मानो सोने में धधकती हुई आग का एक-एक गोला हो।

उसने कहा, "लगता है, मेरा बेटा मिल गया। मैं जा रहा हूं। लौटकर तुम्हारी भी बात सुनूंगा।"

वह जैसे आया था, वैसे ही चला गया।

नारायणी को मालूम है, वह कहां गया है। प्लेन सुबह-सुबह ही जाता है। अब तक वह भी जाने कितनी बार इसी प्लेन से आती-जाती रही है।

नारायणी ने सिर उठाकर देखा। उद्‌भ्रांत-सा गब्बू कमरे में आ खड़ा हुआ। उसके आने का उसे पता ही नहीं चला। उसने भी आवाज नहीं दी। सिर्फ एकटक उसे देख रहा था। पत्थर की मूर्ति में जड़ी एक जोड़ी काली आंखें मानो कोयले के टुकड़े की तरह धधक रही हों।

"पानी साहब को राजा भइया की खबर लग गयी ?"

नारायणी ने कोई जवाब नहीं दिया। उसे लगा, अगर वह चाहे तो इस वक्त भी वह ठहाके लगा सकती है। लेकिन अगर वह हंस पड़ी, तो गब्बू को भी पक्का यकीन हो जाएगा कि वह पागल हो गयी है।

गब्बू ने ही दुबारा कहा, "अब तुम यहां क्यों बैठी हो ? तुम क्या सोचती हो, साहब इसके बाद भी हम लोगों को माफ कर देंगे ? मेरे तो वे सिर्फ चमड़ी ही उधेड़ेंगे या हद से हद जेल भेज देंगे। अपने लिए मुझे फिक्र नहीं। लेकिन तुम अभी तक क्यों बैठी हो ?"

नारायणी ने उसकी तरफ स्थिर निगाहों से देखते हुए कहा, "तुम यहां से चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मैं इंतजार करूंगी। उस दराज में रुपये पड़े हैं, ले लो।"

कुछेक पल गब्बू विभ्रांत-सा खड़ा रहा। धीरे-धीरे वह नारायणी के करीब आ खड़ा हुआ। अचानक उसने उसके पैरों को कसकर जकड़ लिया, "दीदीमणि, चलो, हम लोग यहां से चले जाएं। बस, एक बार मेरी बात मान लो। यह मैं अपने लिए नहीं कह रहा, दीदीमणि! साहब तुम्हें कभी माफ नहीं करेंगे। वे जरूर बदला लेंगे। अमीर आदमी की प्रतिहिंसा से मुझे बहुत डर लगता है, दीदीमणि! चलो, हम यहां से भाग चलें।"

नारायणी ने बेहद धीर-गंभीर आवाज में फिर वही जवाब दोहराया, "मुझे इंतजार करना होगा। तुम जाओ।"

गब्बू उठ कर खड़ा हो गया। थोड़ी देर नारायणी को एकटक देखता रहा। उसने फिर कोई जिद नहीं की, शिथिल कदमों से बाहर चला गया।

नारायणी ने भी उसे आवाज देकर वापस नहीं बुलाया। उसे मालूम है, बुलाना बेकार होगा। उसे पता है, गब्बू उसे इस जानलेवा संकट में छोड़कर नहीं जाएगा। ना, हुक्म देने या डराने-धमकाने पर भी नहीं जाएगा। नारायणी को नहीं मालूम, ऐसे अंध-भक्त को वह कौन-सा नाम दे!

गब्बू का अंदाज गलत नहीं था।

जबरदस्त प्रतिहिंसा की आग में जलते हुए एक झुंड पुलिस और उच्चाधिकारियों को लेकर, बंगाल की सरहद के पार किसी सुदूर पहाड़ पर बसे हुए किसी प्रतिष्ठान की सुख-शांति भंग करने के लिए वह कहर बनकर टूट पड़ा था। अगर उसका वश चलता, तो वह उस जगह को तहस-नहस करके धूल में मिला देता और उस आदमी के हाथ में हथकड़ियां पहनाकर, सरे-बाजार खींच लाता।

...जिसका नाम है—नंदलाल!

लेकिन अहाते के अंदर कदम रखते ही वह ईषत अचकचा गया। खूबसूरत-सा बाग...उसके बाद साफ-सुथरा, चमचमाता हुआ दालान। बगीचे में नन्हें-नन्हें बच्चे हंसते-खिलखिलाते भाग-दौड़ का खेल खेल रहे थे। आबोहवा में अजब-सी शुचिता का स्पर्श। नन्हें-नन्हें बच्चे मानो खुशी के देवदूत हों!

मकान के बरामदे में ही कुछेक नौजवान भी बैठे हुए थे। लाल कंकरीट-वाली पगडंडी पर चलते हुए, वे लोग मकान की तरफ बढ़े। इतनी सारी पुलिस देखकर बच्चों का खेल रुक गया। ऐसी घटना उनके लिए मानो अजूबा थी। बरामदे में लड़के भी उठ खड़े हुए।

मकान के करीब आते ही जाने किधर से राजा दौड़ता हुआ आ निकला।

हां राजा'''सपना नही, सचमुच वह राजा ही था ! अपनी नन्ही-नन्ही बाहें फैला कर वह बापी से लिपट गया। उसने खुशी मे उमड़कर पूछा, "बापी, तुम आ गये ! मा कहां है ? पिछली बार मा सिर्फ एक ही दिन रुकी'''लेकिन उसने वादा किया था कि वह जल्दी ही आयेगी।"

विपुलानंद की निगाहें धुधला आयी। बेटे का स्पर्श, उसमें अजीब-सी सिहरन भर गया। उसने बेटे को गोद में उठाकर सीने से लगा लिया। कुछेक पल बाप-बेटे इसी मुद्रा मे खड़े रहे। उसके बाद उसने धीरे से उसे नीचे उतार दिया। उसने देखा, कलकत्ते की अगाध दौलत, ऐशोआराम में जो जादू नही हुआ था, वह यहां कुछेक महीने में ही हो गया था। बेटे के सावले चेहरे-मोहरे पर अजीब-सी चमक भर गयी थी, मानों वह पहलेवाला राजा न हो !

विपुलानद ने अस्फुट आवाज में पूछा, "तू कैसा है, बच्चे ?"

"खू-ब अच्छा हू, बापी ! यहा कित्ते सारे बच्चे हैं ! कित्ते सारे खेल है ! सब मुझे ब-हो-त प्यार करते हैं ! और नद मामू तो सबसे ज्यादा मेरे को प्यार करते हैं।"

विपुलानद को स्थान-काल भी भूल गया था। अचानक वह आत्मस्थ हो आया। वह बेटे का हाथ थामे हुए, पुलिसवालों के साथ बरामदे की तरफ बढा।

इतनी देर बाद बेटे की भी नजर पुलिस पर पडी। वह भी मन ही मन अच-कचा गया।

अंदर से एक उजला-शुभ्र, सौम्य व्यक्ति बाहर निकल आया। बेहद हसमुख और कौतुकभरा चेहरा। मानो वह पहली ही नजर में सारा मामला समझ गया। लोगों की अभ्यर्थना में उसने हाथ जोड़ दिये, "आइए ! आइए ! एकदम से पल्टन समेत हाजिर ? आप मुझे झमेले मे फसाये बिना नही मानेंगे, साहब ! आइए, बैठिए !" उसने आखिरी वाक्य विपुलानंद को सबोधित करते हुए कहा, "आप ही मिस्टर विपुलानंद है न ?"

विपुलानद ने जाने सिर भी हिलाया या नही। उसकी आखो से क्षमाशून्य धधकती हुई आग झर रही थी।

"मैं नदलाल हू—आपकी पत्नी का नद'दा !" उसने होंठो पर हसी बिखेरते हुए कहा, "नारायणी से मैंने बार-बार कहा—मैं ठहरा निर्विकारी जीव, कोने में पडा हूं। क्यों मुझे झमेले मे डालती है ? लेकिन उसने मेरी एक न सुनी। अब देखता हू, आप पुलिस की पलटन लिये-दिये हाजिर हैं !"

वहा ऐसा कोई व्यक्ति नही था, जो मीठी-मीठी बातों मे अपना फर्ज भूल जाए। पुलिस अफसर ने अपनी जाच-पड़ताल शुरू कर दी। लेकिन लबी-लबी जिरह और रजिस्टर देखने के बाद जो पता चला, विपुलानंद दुबारा स्तब्ध रह गया। ना, इन लोगों ने ऐसा कोई सुराग नही रखा, जो इन्हें मुसीबत में फसा दे।

रजिस्टर में दर्ज था—वेटे को यहां भेजने से पहले, लेडी वागची ने खुद यहां आकर दस्तखत किया था और वेटे को यहां भरती कराने का इंतजाम कर गयी थीं। इससे पहले, अपने नंद'दा को कई-कई पत्र भी लिखे। उसकी एकमात्र विनती थी—"एक नन्हें सुकुमार शिशु को मौत के मुंह से वचा लो, नंद'दा! वह शिशु मेरा सगा वेटा है। मैं उसे वचाने में असफल सावित हुई हूं। यह मौत कैसी खौफनाक होती है, तुम्हें नहीं मालूम!…" ऐसी ही ढेर-ढेर वातें लिखी हैं उस खत में। यहां भी वह कई वार आ चुकी हैं। दान-खाते की भी जांच की गयी। प्रतिष्ठान को वढ़ाने के लिए, नारायणी अव तक ढाई लाख रुपये दे चुकी हैं, अभी और भी देने का वादा किया है।

अमेरिका जाने से पहले, उसने नंद'दा को एक खत लिखा था—"नंद'दा! तुम जरूर-जरूर से आकर वेटे को ले जाना। गव्वू उसे ले जाकर तुम्हें सौंप देगा।"

अभी पिछले महीने ही वह एक दिन के लिए अपने वेटे से मिलने आयी थी। सव वच्चों के साथ उसने तसवीर भी उतरवायी। पुलिस ने वह तसवीर भी देखी।

विपुलानंद सव देखते-सुनते हुए स्तव्ध हो आया।

विपुलानंद ने वीवी के खतों को दुवारा-तिवारा पढ़ा। हर खत में अपने नंद'दा के आगे अपने वेटे की निःसीम भयावह परिणति की तसवीर। हर वार उसे वचा लेने की करुण विनती।

ट्रेन!

विपुलानंद ने जानवूझकर प्लेन के वजाय ट्रेन की टिकट खरीदी। उसे वक्त चाहिए। उसे वदला लेना है। वीवी से उसे ऐसा प्रतिशोध लेना है कि [illegible] जन्म-भर याद रखे। सच, वह ऐसा जवरदस्त वदला लेगा कि देखनेवाले [illegible] उठें। लेकिन वह प्रतिशोध कैसा हो, किस रूप में हो—वह तय नहीं कर प[illegible] था। इस वक्त वह विलकुल ब्लैंक हो गया था, कुछ भी सोच नहीं पा रहा [illegible]। लेकिन सोच-समझकर पहले से ही तय कर लेना वेहद जरूरी है। शायद इसके लिए कुछ वक्त की जरूरत है।

…नंदलाल ने ही पूछा था, "वेटे को ले जाएंगे न?"

जाने क्या सोचकर विपुलानंद ने सिर हिलाकर मना कर दिया। उसने अस्फुट आवाज में कहा, "नहीं, अभी यहीं रहने दें। मैं वाद में आपको खवर दूंगा।"

वेटे को साथ ले जाने पर, शायद वह आसानी से वदला न ले सके। वैसे उसे अभी नहीं मालूम कि वह क्या करेगा, लेकिन कुछ न कुछ करेगा जरूर।

…आने से पहले, नंदलाल ने उसके कानों में फुसफुसाकर कहा था, "आप

नाराज न हों, तो एकबात कहूं! ···इसके बाद मुमकिन है, आप अपनी पत्नी से इस मामले में हिसाब-किताब करें···लेकिन नारायणी को अगर आपने सच ही नहीं पहचाना है, तो आप की सारी दौलत, आप पर भगवान के इतने आशीष—सब झूठ और बेकार हैं।"

ख़ैर, यह आदमी तो बोलेगा ही, लेकिन विपुलानंद इन बहकावों में नहीं आनेवाला। वह कभी माफ नहीं करेगा। लेकिन अब वह क्या करे ?

ना, उसके सोचने-विचारने की सारी शक्ति ही मानो जवाब दे गयी। इन तीन महीनों की दहशत, परेशानी, थकान के बोझ से, उसकी सारी नसें मानो एकबारगी शिथिल हो आयी हों।

विपुलानंद गहरी नींद सो गया।

गहरी नींद में डूबी आंखों के आगे, निर्वाक पत्थर की मूरत बनी नारायणी आ खड़ी हुई।

विपुलानंद ने पूछा, "तुम्हें अपनी कैफियत में कुछ कहना है ?"

नारायणी ने कहा, "मेरी कैफियत के बारे में तो तुम पता लगा ही आये हो।"

विपुलानंद ने कहा, "मेरे बेटे को तुमने यूं दे डाला, किस हक़ से ?"

"जिंदा रहने के हक़ से। बचने का हक़ आख़िर सबको होता है न ?"

"तुम उसे किसके हाथों से बचाना चहती थीं ?"

"तुम्हारे हाथों से। मौत के हाथों से।"

विपुलानंद ने कहा, "तुम उसे इस तरह बचाना चाहती हो, यह तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ?"

"तुमसे कहती तो तुम यकीन नहीं करते। रुकावट बनते। मौत जैसे खौफनाक डाह ने तुम्हारे होशो-हवास छीन लिये थे। तुम उसी अंधे मोह में डूबते जा रहे थे।"

"लेकिन अपने इस रवैये से तुमने मुझे जो तकलीफें दीं, जिस मौत के मुंह में धकेल दिया, उसका क्या होगा ? मुझ पर तुम्हें जरा भी तरस नहीं आया ?"

"तरस आया था। तुम्हारी मूरत देख-देखकर मैं पागल हुई जा रही थी।··· लेकिन तुम पर तरस खाने के बजाय किसी शिशु को बचाने की जिम्मेदारी कहीं ज्यादा बड़ी लगी। तुम पर तरस खाने बैठती तो यह कोशिश धरी रह जाती।"

"लेकिन अब ? अब क्या करोगी तुम ?"

क्रूर उल्लास के पलों में अचानक उसकी नींद टूट गयी। वह हड़बड़ाकर जाग गया। वह पसीने में तर-ब-तर हो गया था। घनी रात के अंधेरे सागर को चीरती

हुई ट्रेन गरजती-लरजती, तेज-तेज रफ्तार में भागी जा रही थी।

लेकिन सपने में देखे-सुने वे प्रश्न ज्यों के त्यों अनुत्तरित रह गये। नारायणी के वजाय खुद अपने आप से सवाल किया—"अव क्या करोगे ?" हां, विपुलानंद अव क्या करे ?

ट्रेन सुवह्-सवेरे अपनी मंजिल पर आकर रुक गयी। विपुलानंद ट्रेन से नीचे उतरा। वह टैक्सी लेकर घर भी आ गया। सीढ़ियों पर कदम रखते ही अचानक वह ठिठक गया।

उसे देखते ही दो-चार नौकर दौड़े आये। साहव का थका-थका, उड़ा-उड़ा चेहरा। लेकिन विपुलानंद के होठों पर हंसी तिर आयी। वह क्या करे—मानो उसे अपने इस सवाल का जवाव भी मिल गया।

सीढ़ी के इस तरफ निश्चल काठ वना गव्वू खड़ा था। विपुलानंद की निगाह उसके चेहरे पर ठहर गयी। वह विलकुल तैयार था। किसी भी निर्मम सजा के लिए वह प्रस्तुत था।

लेकिन उसे किंचित हैरानी में डालते हुए विपुलानंद सीढ़ियां चढ़ने लगा।

नारायणी भी वेटे के कमरे के सामने मूर्ति वनी खड़ी थी। ना, वह कुछ देख या सोच नहीं रही थी; सिर्फ खड़ी थी। गव्वू की तरह शायद वह भी प्रस्तुत हो चुकी थी।

धीरे-धीरे वह घूमकर खड़ी हो गयी। जिसे आना था, वह आ पहुंचा है···

हां, वही आया है। विपुलानंद सीढ़ियां पार करके गैलरी में आ खड़ा हुआ।

निर्वाक, निष्पलक दृष्टि-विनिमय। विपुलानंद उसे तौल रहा था। नारायणी भी उसे परख रही थी। दोनों एक-दूसरे की निगाहों में डूव गये। धीरे-धीरे एक-एक करके ढेर सारे पल गुजर गये। ऐसे ही, एक-दूसरे की निगाहों में खोये-खोये शायद समूची जिंदगी गुजर सकती है।

"नारायणी ! इधर आओ !"

नारायणी के अंग-अंग में अचानक विजली कौंध गयी। वहुत···वहुत सालों पहले, उसके मुंह से, अपना यह नाम सुनने का, उसे वेहद लोभ हुआ करता था। लेकिन···वह तो जमाने पुरानी वात है।

नारायणी की आंखों के आगे अचानक सारा कुछ एकवारगी धुंधला हो आया। हवा में हाथ-पैर मारती, किसी कठपुतली की तरह, उसने करीव पहुंचने की कोशिश की। हां, वह उसका हुक्म वजा लाने की अपने भरसक जी-तोड़ कोशिश कर रही थी। वह उसके विलकुल करीव आ खड़ी हुई। एक वार फिर उसे भरनजर देखने की तीखी चाह उमड़ आयी।

कुछेक पलों के लिए विपुलानंद चुपचाप उसके चेहरे की तरफ···स्थिर-अपलक निगाहों से देखता रहा। अचानक उसने वेहद कोमल आवाज में कहा,

"बच्चे को वही छोड़ आया। वहा वह वाकई बहुत मजे मे है।"

अपनी आखो की भरपूर ताकत से, नारायणी नि.शब्द उसका चेहरा पढ़ने की कोशिश कर रही थी।

थोड़ा ठहरकर विपुलानंद ने दुबारा कहा, "नारायणी, अगर तुम मुझे माफ कर सको, तो एक बार फिर मैं तुम्हारे बेटे को अपने पास रखकर देखू। मुमकिन है, इस बार वह यहा भी जी जाए!"

नारायणी के तन-बदन मे आवेग की सिहरन दौड़ गयी। वह काप रही थी। आंखों में उमड़ते हुए आसुओं में सारा-कुछ धुधला गया। वह बेसुध-सी उसके और करीब आ खड़ी हुई, अपनी दोनों हथेलियों से उसका चेहरा, उसका सीना, उसकी बाहें छू-छूकर महसूस करती रही। लेकिन अब उससे खड़ा भी नही रहा जा रहा। उसे थामे-थामे वह धीरे-धीरे जमीन पर ही बैठ गयी। अपनी दोनों बांहों मे उसके पाव समेटकर उसने अपना आसूभरा चेहरा छुपा लिया।

विपुलानद उसी तरह खड़ा रहा। उसके सामने भी सारा कुछ एकबारगी धुधला हो आया। उसकी आखें भर आयी। शायद, वह भी रो रहा था···

ना, विपुलानंद रो नही रहा था ··हंस रहा था! हां, आज वह सचमुच बदला लेने मे सफल हो गया था···!

□ □